विषय-सूची

ाक्कथन 9

अध्याय-1

इस्लामी व्यवस्था

स्लामी व्यवस्था 13

स्लामी अर्थ-व्यवस्था 23

- सम्पत्ति की हैसियत 25

नोपार्जन (वैध एवं अवैध) 36

- धनोपार्जन का महत्त्व 36
- श्रम और मज़दूरी 39
- व्यापार और क्रय-विक्रय 40
- क्रय-विक्रय के कुछ सिद्धान्त और नियम 44
- अनियंत्रित अर्थतंत्र की रोक-थाम 53
- साझा व्यापार 61
- मुज़ारबत 63
- वकालत 64
- नीलाम की विधि से क्रय-विक्रय 66
- कृषि 67

- फलों का क्रय-विक्रय 6
- बंजर भूमि को आबाद करना 7
- सार्वजनिक संसाधन 7
- खनिज पदार्थ 7
- ख़ुम्स 7
- फ़य 7
- ग़स्ब (अनाधिकार क़ब्ज़ा) 7
- ब्याज 7
- रिश्वत 8
- जुआ 8
- शराब का क्रय-विक्रय 9
- हराम की कमाई 9
- संदिग्ध चीज़ों से परहेज़ 9
- वेश्यावृत्ति 9
- शुफ़्आ 9
- लाभदायक वस्तुओं (सम्पत्ति) की सुरक्षा 10
- तसूईर (मूल्य-निर्धारण) 10
- चरागाह 10
- ज़मान 10
- समझौता एंव संधि 10

- हवाला 107
- झाड़-फूँक का पारिश्रमिक 108
- सम्पत्ति-अधिकार की सुरक्षा 110
- लुक़्ता (पड़ी हुई चीज़ का उठाना) 111

धन का उपभोग और वितरण 114

- इन्फ़ाक़ (भले कामों में ख़र्च करने) का महत्व 114
- अवैध ख़र्च 116
- माल को बरबाद करना 118
- सन्तुलित और मध्यम मार्ग 123
- जमाख़ोरी 125
- ज़कात 126
- सदक़ाए-फ़ित्र 138
- आम सदक़ात (सामान्य दान) 139
- सहयोग एवं सहानुभूति 141
- माँगनेवाले का हक़ 143
- इजारा 143
- हद्‌या (उपहार) 145
- आरीयत (उधार) 148
- हिबा (अनुदान) 150
- वक़्फ़ (धर्मार्थ दान) 154

- क़र्ज़ 15
- अमानत 16
- हज्र 16
- तावान (जुर्माना) 16
- अकाल 17
- विरासत का क़ानून 17
- विरासत 18
- वसीयत 18

अध्याय - 2

राजनीति और शासन

राजनीति और शासन 193

- इस्लामी शासन : विशिष्ट विशेषताएँ 200
- सकारात्मक एवं सैद्धान्तिक राज्य 204
- इस्लामी शासन के उद्देश्य 206

इस्लामी राज्य के मौलिक तत्त्व 210

- जगत् और जीवन के प्रति धारणा 210
- अल्लाह की सम्प्रभुता 211
- रसूल का आज्ञापालन 213
- ख़िलाफ़त (प्रतिनिधित्व) 217

इमारत (राज्याध्यक्षता) 220

- इमारत की इच्छा 220
- अमीर (राज्याध्यक्ष) का चुनाव 221
- सर्वोत्तम नेतृत्त्व 225
- निकृष्टतम नेतृत्त्व 228
- अमीर का दायित्त्व 230
- सामूहिक व्यवस्था 233
- अमीर का सम्मान 237
- एकता 239
- शूराइयत (विचार-विमर्श प्रणाली) 240

शासन-व्यवस्था 242

- बैअत (वचन बद्धता) 242
- शासन के अधिकार और कर्त्तव्य 243

नागरिकता 249

- अहले-ज़िम्मा या ग़ैर-मुस्लिमों के अधिकार 256

न्याय-व्यवस्था 263

- न्यायाधीश का पद 263
- क़सम (सौगन्ध) 270
- गवाही 273
- सिफ़ारिश 277

- रिश्वत 277
- सुलह (समझौता) 278

क़ानूनसाज़ी और इजतिहाद 280

- आवश्यकता और निहित हित का लिहाज़ 284
- वैध चीज़ें 290
- आलोचना का अधिकार 293
- निरस्तीकरण का अधिकार 295
- अच्छी चीज़ों का संरक्षण 296
- दण्ड-विधान 298

अध्याय - 3

धर्म की स्थापना

- धर्म की स्थापना 322
- धर्म का संस्थापन 331
- जिहाद (धर्मयुद्ध) 334
- युद्ध के नियम 338
- क़ैदी 340
- क्षमादान 341

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही मेहरबान, रहम करनेवाला है।"

प्राक्कथन

पाठकों की सेवा में 'हदीस सौरभ, भाग-4' प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। यह ख़ुदा की कृपा और उसकी विशिष्ट अनुकम्पा है कि उसने अपने 'दीन' (धर्म) की सेवा का यह सुअवसर प्रदान किया। इसपर हम उसका जितना भी आभार प्रकट करें कम है।

इस पुस्तक के भाग-1 से 4 तक में धारणा, उपासना, नैतिकता, और सामाजिक शिक्षाओं से सम्बन्धित हदीसों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। चौथे भाग में हमें इस्लामी अर्थव्यवस्था और इस्लामी राजनीति से सम्बन्धित हदीसों का संकलन प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। इसके अध्ययन से इसका भली-भाँति अनुमान किया जा सकता है कि वास्तव में इस्लाम एक पूर्ण धर्म और समस्त मानव-जीवन के लिए एक संग्राहक जीवन-व्यवस्था है और इस्लाम की अन्य शिक्षाओं की तरह अर्थ और राजनीति से सम्बन्धित उसकी शिक्षाएँ और आदेश भी न्याय पर आधारित हैं। काश, मानवता इन शिक्षाओं से लाभान्वित हो सकती!

अल्लाह की कृपा हुई तो 'हदीस सौरभ', भाग-5, में हम इस्लामी आह्वान और उसके सिद्धान्त एवं आधार से सम्बन्धित हदीसों का संकलन प्रस्तुत करने की कोशिश करेंगे। अल्लाह से प्रार्थना है कि वह इस सेवा को, जैसी कुछ बन पड़ी है, स्वीकृति प्रदान करे और इससे अधिक से अधिक लोग लाभान्वित हो सकें।

विनीत

मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

अध्याय - 1

इस्लामी व्यवस्था

इस्लामी व्यवस्था

मानव-जीवन में जीविका ही सब कुछ नहीं है, फिर भी इसके महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता। क़ुरआन ने माल और धन को मानव के अस्तित्व एवं स्थायित्व का साधन बताया है। अतएव कहा गया है—

> "अपने माल (धन-सम्पत्ति), जिसे अल्लाह ने तुम्हारी स्थिरता का साधन बनाया है, नासमझ लोगों को न दो।"
>
> (क़ुरआन, 4:5)

धन-सम्पत्ति से हमारे कितने ही काम चलते हैं और कितने ही अच्छे और विकास के कार्य इसके द्वारा सम्पन्न होते हैं। इसी लिए माल को ख़ैर या भलाई भी कहा गया है। प्रामाणिक (Authentic) हदीस में आया है—

> "अच्छे आदमी के लिए अच्छा धन उत्तम वस्तु है।"
>
> (हदीस : अहमद)

अर्थ-व्यवस्था के विषय में साधारणतया चार पहलुओं से विचार किया जाता है :

1. धनोपार्जन (Production of Wealth)
2. धन का वितरण (Distribution of Wealth)
3. धन का विनिमय (Exchange of Wealth)
4. धन का उपभोग (Consumption of Wealth)

अर्थ-व्यवस्था में इन सारे ही पहलुओं से न्याय का ध्यान रखना आवश्यक है। इसके साथ यह भी ज़रूरी है कि मनुष्य की जीविका उसके जीवन के दूसरे क्षेत्रों से असम्बद्ध होकर न रहे, बल्कि उसके और मानव के नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक आदि सारे ही विभागों के मध्य सामंजस्य पाया जाता हो। जीवन के किसी विभाग से उसका टकराव न पाया जाता हो। किन्तु हम देखते हैं कि यह विशेषता न पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था में पाई जाती है और न ही साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था में इसका कहीं पता चलता है।

ग़ैर-इस्लामी अर्थ-व्यवस्था की सबसे बड़ी ख़राबी यह है कि उसमें भौतिकवादी दृष्टिकोण ही क्रियाशील दिखाई देता है। प्रत्येक मामले में न्याय को ध्यान में रखा जाए, किसी के साथ भी अन्याय न हो, इसकी चिन्ता बहुत कम होती है। जो व्यक्ति जहाँ है वह केवल अपने हक़ों और अधिकारों की सुरक्षा के प्रयास में लगा रहता है, बल्कि उसकी इच्छा यह होती है कि किसी प्रकार से दूसरों के हिस्सों पर भी अधिक से अधिक उसका क़ब्ज़ा हो जाए। वह यह सोचता ही नहीं कि समाज में किसी प्रकार का असन्तोष उत्पन्न न हो, समाज किसी आर्थिक संकट में न पड़े। कम से कम प्रत्येक व्यक्ति की मौलिक आवश्यकताएँ पूरी हों। निर्धन और धनवान के मध्य असाधारण अन्तर न आने पाए। ऐसा न हो कि किसी व्यक्ति के लिए तो शरीर और प्राण के सम्बन्ध को बनाए रखना ही कठिन हो रहा हो और किसी को मात्र अपने धन में और अधिक अभिवृद्धि की चिन्ता लगी हुई हो। सम्पन्न होने के बावुजूद लूट-खसोट के सिवा उसे और कुछ न आता हो। त्याग, दानशीलता और समाज की आर्थिक प्रगति जैसी बातों का उसे भूले से भी ख़याल न आता हो।

इस्लाम ने अर्थ-व्यवस्था को स्वतन्त्र रूप से कोई अलग विभाग घोषित नहीं किया है, बल्कि उसने इस विभाग का सम्बन्ध अपने दूसरे

आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक विभागों से स्थापित किया है। जिस प्रकार मानव-शरीर के किसी अंग में कोई पीड़ा होती है तो उससे उसका पूरा शरीर प्रभावित होता है, ठीक उसी प्रकार सामाजिक, आर्थिक या जीवन के किसी विभाग में अगर कोई ख़राबी पैदा होती है तो उससे जीवन के दूसरे विभाग भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। इस्लामी विचारधारा का ठीक और दुरुस्त होना इस पर नेर्भर करता है कि उसके समस्त विभाग ठीक तौर पर सुदृढ़ हों। उनके मध्य पारस्परिक सामंजस्य और अनुकूलता (Co-ordination) भी स्थापित रहे। एक व्यक्ति यदि देखने में इस्लाम के नैतिक सिद्धान्तों का आदर करता हुआ दिखाई देता हो लेकिन आर्थिक मामले में वह यदि इस्लामी सिद्धान्तों की परवाह नहीं करता तो इस्लामी दृष्टिकोण से उसे कदापि सुशील और चरित्रवान नहीं कहा जा सकता। इस्लाम चाहता है के समाज में परस्पर सहानुभूति की भावना क्रियान्वित हो और ईर्ष्या एवं दुश्मनी के स्थान पर लोगों के मध्य दोस्ती की भावना काम कर रही हो।

इस्लाम की दृष्टि में जगत् और जगत् में पाई जानेवाली समस्त चीज़ों का वास्तविक स्वामी अल्लाह है और स्वयं मनुष्य भी उसी की मिल्कियत है। क़ुरआन में आया है—

> "आकाशों और धरती और जो कुछ उनके मध्य है सब पर बादशाही अल्लाह ही की है और जाना भी उसी की ओर है।" (क़ुरआन, 5:18)

अल्लाह ने जगत् को मानव के लिए उपयुक्त और अनुकूल बनाया और उसने इनसान को यह अधिकार दिया है कि वह जगत् और उसमें पाई जानेवाली चीज़ों से लाभ उठाए। अलबत्ता इस सिलसिले में अल्लाह द्वारा निर्धारित नियमों और क़ानूनों का ध्यान रखना आवश्यक है। क़ुरआन में है—

"क्या तुमने देखा नहीं कि अल्लाह ने जो कुछ आकाशों में और जो कुछ धरती में है सब को तुम्हारे काम में लगा रखा है, और उसने तुमपर अपनी प्रकट और अप्रकट अनुकम्पाएँ पूर्ण कर दी हैं।" (क़ुरआन, 31:20)

"वही है जिसने तुम्हारे लिए वह सब कुछ पैदा किया जो धरती में है।" (क़ुरआन, 2:29)

एक अन्य स्थान पर कहा—

"और धरती में हमने तुम्हें सत्ता और अधिकार प्रदान कर रखा है और उसमें तुम्हारे लिए जीवन-साधन उपलब्ध किए हैं।" (क़ुरआन, 7:10)

ज्ञात हुआ कि जगत् की सारी चीज़ें और शक्तियाँ इनसान के लिए पैदा की गई हैं और ईश्वर ने जिन संसाधनों की व्यवस्था की है, वे किसी वर्ग विशेष के लिए नहीं, बल्कि सारे ही इनसानों के लिए पैदा किए हैं। उनसे लाभान्वित होने के लिए किसी विशेष वर्ण और वंश की कोई शर्त नहीं रखी है। अलबत्ता इनसान के लिए यह आवश्यक है कि इस सम्बन्ध में वह अल्लाह के द्वारा निर्धारित नियमों और क़ानूनों का ध्यान रखे। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा है, "वैध वह है जिसे अल्लाह ने अपनी किताब में वैध किया और अवैध वह है जिसको अल्लाह ने अपनी किताब में अवैध कर दिया और जिन चीज़ों में कुछ नहीं कहा, (अर्थात् जिनका वर्णन नहीं किया) वे क्षम्य हैं।"

फिर वैध और अवैध करने के आदेश भी अकारण ही नहीं दिए गए हैं, बल्कि वे इस सिद्धान्त पर निर्भर करते हैं—

"वह (पैग़म्बर अल्लाह के आदेश से) लोगों के लिए पवित्र चीज़ों को वैध और अपवित्र चीज़ों को अवैध ठहराता है।"

(क़ुरआन, 7:157)

इसका तद्धिक स्पष्टीकरण नबी (सल्ल॰) की इस हदीस से होता है—

"इस्लाम में न तो क्षति वैध है और न एक-दूसरे को हानि पहुँचाना वैध है।"

कोई चीज़ यदि इनसान के लिए हानिकारक है तो वह अवैध है और यदि कोई चीज़ लाभदायक है तो वह अवैध नहीं बल्कि वैध ठहराई जाएगी।

इस्लाम ने जीवन के दूसरे विभागों की तरह आर्थिक मामले में भी इसका पूरा ध्यान रखा है कि किसी व्यक्ति पर अत्याचार न हो और न वह किसी पर अत्याचार करे। इसी लिए उसने उन सभी रास्तों को बन्द कर देना चाहा है जिनके द्वारा अत्याचार और अन्याय को फलने-फूलने का अवसर मिलता है। उसने धनोपार्जन के अवैध तरीक़ों पर पाबन्दी लगा दी और आदेश दिया कि अवैध तरीक़ों से धन अर्जित करने से बचा जाए। क़ुरआन में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—

"ऐ ईमान लानेवालो, आपस में एक-दूसरे के माल ग़लत तरीक़े से न खाओ, यह और बात है कि तुम्हारी आपस की सहमति से कोई सौदा हो।" (क़ुरआन, 4:29)

इस सिलसिले में इस्लाम में चोरी, विश्वासघात, वेश्यावृत्ति (Prostitution), शराब, जुआ और ब्याज आदि का निषेध किया गया है। धन की पूजा और धन के लोभ की निन्दा करते हुए कृपणता और जमाख़ोरी (Hoarding) करने से रोका गया है। और अपव्यय करनेवालों को शैतान का भाई कहा गया है। प्रत्येक मामले में मध्यमार्ग अपनाने की प्रेरणा दी गई है। इस्लाम ने ऐसे मामलों को अवैध ठहराया है जिससे झगड़े के द्वार खुलते हों। उदाहरणार्थ मूल्य और माल निश्चित न हो या ख़रीदार ने माल को देखा न हो और यह यक़ीन न किया जा

सकता हो कि जो माल उसे दिया जाएगा अनिवार्यतः वह उससे राज़
होगा। इसी सिद्धान्त के अन्तर्गत उन मामलों का भी निषेध किया गय
है जिनमें क़ीमत और माल में से किसी एक के सौंपने का अधिका
मामला करनेवाले के हाथ में न हो। उदाहरणार्थ क़ीमत ख़रीदार व
अधिकार में न हो या बेचनेवाले के हाथ में चीज़ न हो। नबी (सल्ल॰) न
कहा है कि "जो चीज़ तुम्हारे हाथ में न हो उसकी बिक्री न करो।'
विवाद पैदा होने की आशंका को देखते हुए नबी (सल्ल॰) ने कहा है
"जो कोई गेहूँ ख़रीदे तो उस समय तक न बेचे जब तक कि उसक
अपने क़ब्ज़े में नहीं कर लेता।" क्रय-विक्रय के मामलों में ऐसे तरीक़
को भी अपनाने से रोक दिया गया है जिनसे लोगों के बीच ईर्ष्या औ
रुकावट उत्पन्न होने की सम्भावना और आशंका पाई जाती हो औ
ऐसा न हो कि कुछ लोग आगे बढ़कर दूसरे लोगों को रोज़ी कमाने स
वंचित कर दें। इसी लिए कहा गया है—

> "आबादी से निकलकर बंजारों को रास्ते में जाकर न पकड़ो। एक व्यक्ति दूसरे के सौदे में हस्तक्षेप करके सौदा न करे। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की बोली पर बोली न दे, और दूसरों को ख़रीदारी से रोक देने के उद्देश्य से बोली न बढ़ाई जाए। और नगरवाला ग्रामीण की ओर से सौदे का मुख़्तार न बने।"

लाभ कमाने और अनाज की क़ीमतें बढ़ाने के उद्देश्य से उसे रोवे
रखना वैध नहीं। यह जनसामान्य के लिए हानिकारक और दुखदायी है
इससे नागरिक व्यवस्था में बिगाड़ उत्पन्न होता है। इसी लिए पैग़म्ब
(सल्ल॰) ने कहा है, "जमाख़ोरी करनेवालों पर धिक्कार है।"

अपने माल और आजीविका की उन्नति के लिए प्रयास करना वैध
है, बल्कि समाज के स्थायित्व के लिए यह आवश्यक भी है। एक स्थान
से चलकर दूसरे स्थान पर व्यापार करना, लोगों के माल को कोशिश

करके विक्रय करा देना, उत्तम चीज़ें तैयार करना, अपनी योग्यता और कुशलता के द्वारा कोई लाभदायक और हितकर चीज़ का आविष्कार करना, ऐसे समस्त कार्य इस्लाम की दृष्टि में प्रशंसनीय हैं जिनसे लोगों की आर्थिक स्थिति के बेहतर होने की आशा की जा सकती हो। अलबत्ता इस सम्बन्ध में इस बात का ख़याल रखना आवश्यक है कि संसाधन ऐसे अपनाए जाएँ जिनकी मूलात्मा सहयोग हो। ऐसे तरीक़ों का अपनाना निषिद्ध होगा जिनसे समाज का कोई वर्ग अत्यन्त कठिनाई में पड़ता हो या जिनसे जन-समान्य के जीवन में तंगी पैदा होती हो।

कोई बड़ा कारोबार अकेले नहीं किया जा सकता। इसके लिए आवश्यक है कि दूसरे व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त हो। इसी लिए साझेदारी, 'मुज़ारिबत' और 'मुज़ारिआ' आदि को इस्लाम ने वैध ठहराया है। दो व्यक्ति मिलकर कोई व्यापार करते हैं, एक की पूँजी है और दूसरे की मेहनत। समझौते के अनुसार वे लाभ परस्पर बाँट लेते हैं। पारिभाषिक शब्दों में उसे 'मुज़ारिबत' कहते हैं। 'मुज़ारिआ' का तरीक़ा कृषि में अपनाया जाता है। एक व्यक्ति भूमि और बीज जुटाता है और दूसरा खेती करने में अपनी मेहनत लगाता है। इस प्रकार जो अनाज पैदा हो उसमें दोनों साझी हों, यह मुज़ारिअत है। आर्थिक सहयोग और साझेदारी के ऐसे सारे ही तरीक़े वैध हैं। बस शर्त यह है कि दोनों पक्षों के बीच जो शर्तें तय हों उनकी पूरी पाबन्दी की जाए। अलबत्ता समझौते और शर्तों में इसका ध्यान रखना ज़रूरी है कि वे ऐसी न हों जिनमें हराम को हलाल या हलाल को हराम ठहरा दिया गया हो।

कमाई के अवैध तरीक़ों को त्यागने के पश्चात् मनुष्य को इसका पूरा अधिकार प्राप्त है कि वह आजीविकोपार्जन के लिए वैध तरीक़े अपनाए। खेती या व्यापार आदि के माध्यम से धन कमाने का उसे पूर्ण अधिकार है।

धन कहाँ ख़र्च हो? ख़र्च करने के सही तरीक़े क्या हैं? इस सम्बन्ध में सही मार्गदर्शन हमें इस्लाम ही के द्वारा प्राप्त होता है। भौतिकवादी प्रवृत्ति के लोग तो धन को केवल अपने आप पर ख़र्च करना जानते हैं। या फिर ऐसे लोग अपने धन को और अधिक बढ़ाने के ध्येय से उसे कारोबार आदि में लगाते हैं। इसके विपरीत इस्लामी दृष्टिकोण से अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं पर उचित सीमा के अन्दर ख़र्च करने के अतिरिक्त ख़र्च के बहुत-से मद हैं जो अपने आप पर ख़र्च करने की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। उदाहरणार्थ सत्य के प्रचार एवं प्रसार के लिए माल ख़र्च करना, नातेदारों, अनाथों, दीन-दुखियों और मुसाफ़िरों तथा ज़रूरतमन्दों की ज़रूरतें पूरी करने में या ग़ुलामी से लोगों को आज़ाद करने या ऋण के बोझ से दबे हुए लोगों को ऋण से मुक्त कराने आदि में माल ख़र्च करना। इस प्रकार का ख़र्च करना हमारे ईमान की अपेक्षा है। इसी प्रकार इस्लाम हमें आदेश देता है कि हम नातेदार पड़ोसी, अपरिचित पड़ोसी और साथ उठने-बैठनेवालों के साथ सद्व्यवहार करने और अभाव-ग्रस्त लोगों की सहायता करने में भी अपना माल ख़र्च करें जो अल्लाह के मार्ग में ऐसे घिर गए हों कि धरती में अपनी रोज़ी कमाने के लिए दौड़-भाग नहीं कर सकते।[1]

---

1. 1998 ई॰ में अर्थशास्त्र में नोबल पुरस्कार प्राप्त करनेवाले प्रोफ़ेसर अमृत्य सेन अपने अध्ययन, खोज और अनुभवों से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निजी लाभो के चतुर्दिक घूमते रहने के बदले अर्थ-व्यवस्था का केन्द्र-बिन्दु सामाजिक कल्याण होना चाहिए। अर्थ-व्यवस्था के विषय में आवश्यक है कि उसमें परोपकार और जनसेवा की भावना काम कर रही हो। पूँजी और बाज़ार पर आधारित आज के अर्थ-तंत्र में नैतिकता और मानवीय मूल्यों की उपेक्षा कर दी गई है। इसकी शिकायत रस्किन ने भी आज से एक सदी पूर्व 'Unto the Last' में की थी। प्रो. सेन की दृष्टि में अर्थशास्त्र को 'कल्याणकारी अर्थशास्त्र (Welfare Economics) होना चाहिए। जब तक आपस के सामाजिक सम्बन्धों और परस्पर एक-दूसरे के अधिकारों के मूल्यों को महत्व नहीं दिया जाता किसी देश की आर्थिक समस्याओं

ख़र्च का एक महत्वपूर्ण मद आर्थिक प्रायश्चित्ति भी हैं। अपने गुनाहों और कोताहियों के निवारण के लिए इस्लाम में आर्थिक प्रायश्चित्त का नियम रखा गया है। उदाहरणार्थ, जो व्यक्ति क़सम खाकर क़सम तोड़ दे तो उसे दस मुहताजों को खाना खिलाना होगा या उनको कपड़ा देना होगा या फिर एक ग़ुलाम आज़ाद करना होगा और जो ऐसा न कर सके तो वह तीन दिन के रोज़े रखे। (क़ुरआन, 5:89)

फिर ज़कात को इस्लाम के पाँच अरकान (स्तम्भों)— ईमान, नमाज़, ज़कात, रोज़ा और हज— में से तीसरा रुक्न (स्तम्भ) क़रार दिया गया है और बताया गया है कि ज़कात हमेशा ही इस्लाम का रुक्न रही है। ज़कात के अतिरिक्त मीरास (मृतक द्वारा छोड़ी गई सम्पत्ति) के बँटवारे के द्वारा भी इस्लाम माल को एक जगह रखने के बदले उसे आदमी के नातेदारों में फैला देता है। विरासत का क़ानून निर्धारित करने के साथ इस्लाम ने आदमी को अपने माल के सम्बन्ध में वसीयत करने का भी अधिकार दे रखा है। वह जिनको इसका पात्र समझता हो उन्हें अपने उस माल में से जिसे छोड़कर वह दुनिया से जा रहा है, हिस्सा देने की वसीयत कर सकता है। वह इसका भी अधिकार रखता है कि जनहित के कामों के लिए भी वसीयत कर दे। अलबत्ता उसका दो तिहाई (2/3) माल अनिवार्यतः मीरास के क़ानून के तहत वितरित होगा। उसे बस एक तिहाई (1/3) माल तक की वसीयत करने का अधिकार दिया गया है।

का समाधान नहीं हो सकता। देश के केवल पूँजीपति वर्ग की ख़ुशहाली को देश और राष्ट्र की खुशहाली नहीं कहा जा सकता। वह अर्थ-व्यवस्था त्रुटिपूर्ण और ज़ुल्म पर आधारित है जिसमें ग़रीबों, मुहताजों, बेरोज़गारों और अभावग्रस्त लोगों को बिल्कुल अनदेखा कर दिया गया हो। एक चौंका देनेवाली सच्चाई यह है कि 1944 ई. का बंगाल का आकाल, जिसमें 30 लाख लोगों की मृत्यु हुई थी, अनाज की कमी के कारण नहीं बल्कि उन लोगों की अयोग्यता के कारण पड़ा था जो सरकार की ओर से अनाज के वितरण के काम पर नियुक्त थे।

इसके अतिरिक्त सामान्य सदक़ा और ख़ैरात या दान करने पर भी इस्लाम लोगों को उभारता है। सदक़ों के द्वारा ग़रीबों और ज़रूरतमन्दो के साथ उपकार और सहानुभूति का प्रदर्शन होता है। मुहताज ही नही जो खाते-पीते लोग हैं उनके साथ भी भाईचारे और सहानुभूति का प्रदर्शन उपहार और तोहफ़े के द्वारा होता है। पैग़म्बर (सल्ल०) ने दान और सदक़ा पर ही नहीं, उपहार भेजने पर भी उभारा है ताकि समाज के हर वर्ग के साथ भाईचारे और प्रेम का सम्बन्ध सुदृढ़ हो सके।

ख़र्च का एक महत्त्वपूर्ण ज़रीआ वक़्फ़ है, अर्थात् कोई माल या जायदाद ज़रूरतमन्दों के लिए इस प्रकार प्रदान कर दीया जाए कि उसका मूल हमेशा शेष रहे और उसके लाभों से ज़रूरतमन्दों की ज़रूरत पूरी होती रहे।

इस्लामी अर्थ-व्यवस्था

(1) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "यह माल हरा-भरा और चित्तआकर्षक अवश्य है और मुसलमान का माल तो क्या ही अच्छा है! जो उसे हक़ के साथ हासिल करे फिर उसे ईश्वरीय मार्ग में, अनाथों, दीन-हीनों और मुसाफ़िरों पर ख़र्च करता रहे। इसके विपरीत जो व्यक्ति उसे हक़ के साथ हासिल नहीं करता (अवैध रूप से प्राप्त करता है) वह उस खानेवाले व्यक्ति की तरह है जिसकी भूख कभी नहीं मिटती और वह माल उसके विरुद्ध क़ियामत के दिन गवाही देगा।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इस कथन से भली-भाँति यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस्लामी अर्थव्यवस्था का मूल विशिष्ट गुण क्या है। इसमें सन्देह नहीं कि माल और धन का मिलना ईश्वर का एक बड़ा अनुग्रह है। यह मधुर भी है और आनन्दप्रद भी। लेकिन फिर भी मानव-जीवन में माल अपने-आप में लक्ष्य नहीं है। वास्तव में माल उस व्यक्ति के लिए एक सुखद पदार्थ है जो धन प्राप्त करने में वैध और उचित तरीक़े अपनाता है और उसके ख़र्च करने में भी इसका ध्यान रखता है कि वह ग़लत कामों में खर्च न हो। माल कहाँ ख़र्च करना चाहिए और कहाँ नहीं, इसे न केवल यह कि वह जानता है बल्कि उसे व्यवहार में भी लाता है। फिर एक मोमिन और मुस्लिम व्यक्ति से ही यह आशा की जा सकती है कि वह धनोपार्जन में वैध और अवैध तरीक़ों के मध्य अन्तर करेगा। वह माल प्राप्त करने के लिए ऐसे तरीक़े कदापि नहीं अपनाएगा जो ज़ुल्म और अन्याय पर आधारित होंगे। इसी प्रकार माल के ख़र्च करने में भी वह स्वार्थपरता से काम नहीं लेगा। इसलिए कि वह जानता है कि

अल्लाह किसी को माल इसलिए नहीं देता कि वह उसे मात्र अपने ऊप
और विलासिता के कामों में ख़र्च करे, बल्कि आदमी की अपन
व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अतिरिक्त माल के ख़र्च के मद और भ
हैं। उदाहरणस्वरूप धार्मिक कार्यों, अनाथों, दीन-दुखियों, ज़रूरतमन्द
और मुसाफ़िरों की आवश्यकताओं की पूर्ति आदि माल ख़र्च करने वे
प्रमुख मद हैं।

यहाँ यह बात ध्यान में रहे कि किसी राष्ट्र या देश में यवि
आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं तो वे मूलतः इसलिए नहीं उत्पन्न
होतीं कि दुनिया में खाद्यान्न और संसाधनों की कमी है या जनसंख्य
का आधिक्य इसका मूल कारण है, बल्कि इसका मूल कारण यह है वि
खाद्यान्न और जीवन की आवश्यक सामग्रियों में ज़रूरतमन्दों और ग़रीब
का हक़ स्वीकार नहीं किया जाता। विज्ञान और तकनीक की असाधारण
उन्नति के बावुजूद मानव-समाज के एक भाग के लिए सम्पन्नता औ
दूसरे बड़े भाग के लिए भूख और दारिद्र को वैध रखा गया है। इस
अर्थ-व्यवस्था को अमानवीय और अकल्याणकारी अर्थव्यवस्था ही कह
जाएगा। जनसामान्य और उनकी समस्याओं का न अध्ययन किया जात
है और न इस सम्बन्ध में मानव-मूल्यों और नैतिक अपेक्षाओं का ध्यान
रखा जाता है, जिससे कि जनसामान्य की आर्थिक समस्याओं वे
समाधान की राह निकल सके। इस्लाम ने धनवान और सम्पन्न लोगों वे
माल में निर्धनों, दीन-दुखियों और ज़रूरतमन्दों का हक़ रखा है और सब
ही के लिए विकास के अवसर उपलब्ध कराने पर उभारा है। इसवे
विपरीत जो लोग धन और पूँजी ही को जीवन में सब कुछ समझते है
उनका लोभ और लालच समाप्त नहीं होता। वे अधिक से अधिव
धन-दौलत प्राप्त करने के प्रयास में लगे रहते हैं और इस सिलसिले में वे
वैध-अवैध का कोई अन्तर नहीं करते। वैध हो या अवैध, जिस प्रका
भी सम्भव हो उन्हें तो सिर्फ़ अपनी दौलत में वृद्धि करने की ही चिन्त
लगी रहती है। ऐसे लोग न हक़दारों और निर्धनों का हक़ पहचानते है

और न उन्हें दूसरों की तकलीफ़ और आवश्यकताओं का एहसास होता है। ऐसे लोगों के प्रलोभन का कभी अन्त नहीं होता। वे वास्तविक शान्ति और सन्तोष के आनन्द से अनभिज्ञ ही रहते हैं। उनकी उपमा बिल्कुल उस व्यक्ति से दी जा सकती है जो निरन्तर खाता रहता है, लेकिन तृप्त नहीं होता। खाने के बावुजूद उसकी भूख है कि कभी मिटने का नाम नहीं लेती। या फिर उसकी उपमा उस व्यक्ति से दी जा सकती है जो प्यास का रोगी है, जिसकी प्यास कभी नहीं बुझती। वह जितना पानी पीता है उतनी ही अधिक उसकी प्यास बढ़ती चली जाती है।

सम्पत्ति की हैसियत

(1) हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मेरे पास सन्देश भेजा कि "अपने हथियारों और अपने कपड़ों को इकट्ठा कर लो और मेरे पास आ जाओ।" हज़रत अम्र-बिन-आस कहते हैं कि मैं नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुआ। आप (सल्ल०) उस समय वुज़ू कर रहे थे। कहा, "ऐ अम्र! मैंने तुम्हें इसलिए बुला भेजा है कि मैं तुम्हें एक दिशा में रवाना करूँ। अल्लाह तुम्हें सलामत रखे और तुम्हें माले-ग़नीमत (विजय में प्राप्त धन) प्रदान करे और कुछ माल मैं भी तुम्हें दूँ।" मैंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी हिजरत माल और दौलत के लिए न थी, वह तो मात्र अल्लाह और उसके रसूल के लिए थी। आप (सल्ल०) ने कहा "अच्छा माल अच्छे व्यक्ति के लिए अच्छी चीज़ है।" (शरहुस्सुन्नह, अहमद)

व्याख्या : एक अन्य रिवायत के अनुसार हज़रत अम्र-बिन-आस (रज़ि०) ने सन् 5 हिजरी में इस्लाम स्वीकार किया और हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि०) के साथ हिजरत करके मदीना पहुँचे। बाद में नबी (सल्ल०) ने उन्हें ओमान का हाकिम (अधिकारी) नियुक्त किया था। अधिक सम्भावना यह है कि यह रिवायत उसी अवसर से सम्बन्ध रखती

हो जब अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) उन्हें गवर्नर और हाकिम बनाकर ओमान भेज रहे थे।

यह हदीस बताती है कि माल और दौलत के बारे में इस्लाम का दृष्टिकोण क्या है। इस्लाम की दृष्टि में माल कोई घृणित चीज़ नहीं है, बल्कि वह ईश्वर का एक बड़ा अनुग्रह है। शर्त यह है कि माल अच्छा हो, अर्थात् वह हराम और नाजाइज़ साधनों से प्राप्त किया हुआ न हो और वह उस व्यक्ति के हाथ में हो जो अच्छा और नेक व्यक्ति हो। क्योंकि माल को ठीक तरह से वही ख़र्च कर सकता है। बुरे व्यक्ति के हाथ में पहुँचकर माल बरबाद ही होगा। वह उसे ग़लत कामों में ख़र्च करके अपना परलोक बिगाड़ेगा। दूसरों को उसके माल से कोई लाभ पहुँचे, इसकी आशा उससे नहीं की जा सकती।

अच्छा माल अच्छे व्यक्ति के लिए अच्छी चीज़ है। यह कोई बुरी चीज़ नहीं है। नेक व्यक्ति यदि मालदार है तो वह इस स्थिति में होता है कि वह नेकी और भलाई के उन कामों को आसानी से कर सके जिनका करना धन के बिना सम्भव नहीं होता।

शरहुस्सुन्नह् की एक रिवायत में अन्तिम अंश इस प्रकार है— "नेक व्यक्ति के लिए अच्छा माल अच्छी चीज़ है।"

धन को ईश्वर ने मनुष्य के अस्तित्व और स्थायित्व का साधन बनाया है। यह ईश्वरीय उपहार है, इसके महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता। क़ुरआन में है—

> "और अपने माल जिसे अल्लाह ने तुम्हारे जीवन-यापन का साधन बनाया है, बे समझ लोगों को न दो।"
>
> (क़ुरआन, 4:5)

(2) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "यह माल हरा-भरा और चित्ताकर्षक है।

जो व्यक्ति उसे वैध तरीक़े से प्राप्त करे और वैध कामों में ख़र्च करे तो वह अत्योत्तम सहायक है। और जो व्यक्ति इसे अवैध तरीक़े से प्राप्त करे तो वह उस व्यक्ति की तरह होता है जो खाता रहता है किन्तु पेट नहीं भरता और वह माल क़ियामत के दिन उसके विरुद्ध साक्षी होगा।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस में बताया गया है कि माल आदमी के लिए सुखकर भी है और वह उसके लिए दुखद भी बन सकता है। यह आदमी की उस नीति पर निर्भर करता है जो वह माल-दौलत के सम्बन्ध में अपनाता हैं। जो लोग धन कमाने के लिए अवैध और ग़लत तरीक़े नहीं अपनाते बल्कि हमेशा उसके लिए वैध और ठीक तरीक़ा ही अपनाते हैं और माल को वैध मदों ही में ख़र्च करते हैं, माल से जहाँ वे अपनी निजी ज़रूरतें पूरी करते हैं, वहीं वे उसे अपने नातेदारों, दीन-दुखियों, निर्धनों पर और धार्मिक कार्यों में भी ख़र्च करते हैं और भलाई के कामों में माल ख़र्च करने को वे अपने लिए सौभाग्य समझते हैं, उनके लिए उनका माल कष्टदायक नहीं, बल्कि सर्वोत्तम सहायक सिद्ध होता है। माल से उनकी आर्थिक स्थिति भी ठीक रहती है और उसके द्वारा वे ईश-प्रसन्नता भी प्राप्त करते हैं।

इसके विपरीत कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जिनके यहाँ धन-सम्पत्ति जीवन-लक्ष्य की हैसियत रखती है। उनके यहाँ धन कमाने में वैध-अवैध का कोई अन्तर नहीं होता। बस धन मिलना चाहिए चाहे वह जिस प्रकार भी मिले। इसके लिए वे दूसरों के हक़ भी मार सकते हैं और ब्याज का करोबार भी चला सकते हैं। वे न ज़रूरतमन्दों और दीन-दुखियों के हक़ को पहचानते हैं और न उनका धन धर्म के किसी काम आता है। ऐसे लोग धन को समेटने में लगे रहते हैं। धन-प्राप्ति का उनका यह लोभ कभी समाप्त नहीं होता। नबी (सल्ल॰) कहते हैं, ऐसे लोग उस व्यक्ति के सदृश होते हैं जो खाता है किन्तु उसकी भूख

मिटती नहीं। वह कभी तृप्त नहीं होता। वह भूखा का भूखा ही रहता है। यह दशा तो उसकी इस वर्तमान जीवन की है, रहा पारलौकिक जीवन तो वहाँ भी वह यातना-ग्रस्त रहेगा। वह धन जिसकी चाहत में उसका जीवन बीता इस बात का स्पष्ट प्रमाण सिद्ध होगा कि वह अल्लाह का अवज्ञाकारी रहा है। उसने अवैध साधनों से धन प्राप्त किया और फिर उसे ईश्वर के प्रति विद्रोह और अप्रिय कार्यों में ख़र्च किया। उसे न कभी ईश्वर की याद आई और न हक़दारों के हक़ उसे याद आए। जब धनार्जन में वैध और अवैध तरीक़ों में भेद न कर सका तो उससे इसकी आशा भी नहीं की जा सकती थी कि धन का उसके यहाँ कोई वैध उपयोग भी हो सकता है।

(3) हज़रत मुसअब-बिन-सअद (रज़ि॰) बयान करते हैं कि (मेरे पिता) हज़रत सअद (रज़ि॰) ने समझा कि उन्हें अपने से निम्न स्तर के लोगों पर श्रेष्ठता प्राप्त है। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "तुम्हें (ईश्वरीय) सहायता और आजीविका केवल तुम्हारे कमज़ोरों (निर्धनों) और असहाय लोगों के कारण मिलती है।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : हज़रत सअद (रज़ि॰) को वीरता और दानशीलता में विशिष्ठ स्थान प्राप्त था। उन्हें यह ख़याल हुआ कि कमज़ोरों और निर्धनों की अपेक्षा उन्हें श्रेष्ठता प्राप्त है। नबी (सल्ल॰) ने इस ख़याल के सुधार के उद्देश्य से वह बात कही जिसका इस हदीस में बयान हुआ है। आप (सल्ल॰) के कथन का अर्थ यह है कि मुसलमानों के लिए सोचने का यह अन्दाज़ ठीक नहीं है। उनके दिलों में तो ऐसे लोगों के लिए आदर और सम्मान का भाव होना चाहिए जो देखने में उनकी अपेक्षा निम्न दिखाई देते हैं। टूटे हुए दिलवालों और निर्धनों पर ईश्वर की विशेष दृष्टि होती है। जिनके दिलों में निष्ठा और ईमान की दौलत होती है ऐसे लोगों की प्रार्थनाएँ ईश्वर के यहाँ शीघ्र स्वीकृत होती हैं।

शत्रुओं के मुक़ाबिले में यदि विजय प्राप्त होती है या धन हाथ आता है या कारोबार और व्यापार में लाभ होता है तो इसमें उन निर्धनों और असहायों की प्रार्थनाएँ भी सम्मिलित होती हैं जो बाह्य रूप में कमज़ोर और निम्नतर नज़र आते हैं।

(4) नबी (सल्ल०) के सहाबा में से एक व्यक्ति से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "ऐसे व्यक्ति के लिए धनवान होना कोई बुरी चीज़ नहीं जो प्रतापवान ईश्वर का डर रखे और ईश-परायण व्यक्ति के लिए स्वास्थ्य धन से उत्तम है और हार्दिक प्रसन्नता ईश्वर की अनुकम्पाओं में से एक अनुकम्पा है।"

(हदीस : इब्ने-माजा, अहमद)

व्याख्या : धन ईश्वर प्रदत्त एक सुखद वस्तु है यदि इसके साथ ईशपरायणता भी हो। आदमी यदि ईश्वर से डरता है और धन-दौलत को उसकी सही जगह ख़र्च करे तो धन के द्वारा वह ईश-प्रसन्नता और जन्नत के ऊँचे दरजों को प्राप्त कर सकता है। हज़रत उसमान (रज़ि०) सम्पन्न व्यक्ति थे। उन्होंने विभिन्न अवसरों पर अपना धन अल्लाह के मार्ग में ख़र्च किया। इसपर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ओर से उन्हें बड़ी-बड़ी शुभ-सूचनाएँ मिलीं। लेकिन साधारणतया लोग धन पाकर बहक जाते हैं और धन का सदुपयोग न करके वे उच्च पद प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं जिसे वे सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकते थे।

स्वास्थ्य, हार्दिक आनन्द और ख़ुशी— ये सब ईश्वर की प्रदान की हुई सुखद वस्तुएँ हैं। किसी को यदि ये वस्तुएँ प्राप्त हैं तो उसे ईश्वर का आभारी और शुक्रगुज़ार होना चाहिए कि उसने उसको ऐसी सुखद वस्तुएँ प्रदान की हैं, जिनसे कितने ही लोग वंचित हैं। यह एक तथ्य है कि स्वास्थ्य का दर्जा धन से बढ़ा हुआ है। लेकिन शर्त यही है कि इसके साथ ईशपरायणता (तक़वा) भी हो, अर्थात् मनुष्य ईश्वर से डरता हो। यदि ईशपरायणता न हो तो स्वास्थ्य किस काम का। ऐसा व्यक्ति

तो अपनी शक्ति और ऊर्जा ग़लत राहों में ही नष्ट करेगा और इसके परिणाम स्वरूप ईश्वर का प्रकोप ही उसके हिस्से में आ सकेगा।

(5) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना, "जो व्यक्ति अपने माल की रक्षा करते हुए मारा जाए वह शहीद है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इससे भली-भाँति अनुमान किया जा सकता है कि इस्लाम ने धन-दौलत को कितना महत्व दिया है। यह अलग बात है कि मानव-जीवन में धन के सिवा कुछ और भी चीज़ें हैं जो धन-दौलत से अधिक महत्व रखती हैं, किन्तु धन की उपेक्षा नहीं की जा सकती। धन संसार में मनुष्य के अस्तित्व के शेष रहने का साधन है। अपने धन की रक्षा में यदि कोई व्यक्ति मारा जाता है तो उसकी मृत्यु शहीद की मौत होगी। उसके सम्बन्ध में यह नहीं कहा जाएगा कि उसने दुनिया के लिए जान दी। इस्लाम में धर्म और संसारिकता के मध्य इस प्रकार का भेद नहीं पाया जाता। जिसने अपने धन की रक्षा करने में अपनी जान दी, जो ईश्वर की दी हुई थी, उसने उचित मार्ग में जान दी।

(6) हज़रत आमिर-बिन-सअद-बिन-मालिक से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "तुम अपनी सन्तान को सम्पन्न छोड़ जाओ तो यह इससे उत्तम है कि तुम उन्हें निर्धन छोड़कर जाओ कि वे लोगों से माँगते फिरें।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात धार्मिक दृष्टि से यह कोई ग़लत बात नहीं है कि आदमी इस बात की चिन्ता करे कि उसके पीछे उसकी सन्तान की आर्थिक स्थिति अच्छी हो। ऐसा न हो कि वह दरिद्र हो और लोगों के सामने हाथ फैलाने पर विवश हो।

नबी (सल्ल॰) के इस कथन का एक परिप्रेक्ष्य भी है जिससे इस हदीस को समझने में सुविधा होगी। हज़रत सअद-बिन-अबी-वक़्क़ास (रज़ि॰) की मिज़ाजपुर्सी के लिए नबी (सल्ल॰) गए। उन्होंने नबी (सल्ल॰)

से कहा कि मैं अपने सारे माल की वसीयत कर जाऊँ (कि वह अल्लाह की राह में ख़र्च किया जाए) तो आप (सल्ल॰) ने कहा, "नहीं!" फिर उन्होंने आधे माल की वसीयत की इच्छा व्यक्त की। फिर आप (सल्ल॰) ने कहा, "नहीं"। उन्होनें तिहाई माल के लिए अनुमति चाही तो आप (सल्ल॰) ने कहा, "तिहाई में कोई दोष तो नहीं किन्तु यह भी अधिक है। तुम अपने वारिसों को धनवान छोड़ जाओ यह इससे उत्तम है कि उनको निर्धन छोड़कर जाओ कि लोगों के सामने हाथ फैलाते फिरें। तुम जो भी पुण्यार्थ ख़र्च करोगे वह सदक़ा (दान) है। यहाँ तक कि जो निवाला तुम अपनी पत्नी के मुँह में उठाकर दोगे उसकी गणना भी सदक़े में होगी।" तात्पर्य यह है कि अपनी सन्तान के लिए यदि धन तुम छोड़ोगे तो ऐसा नहीं है कि उसकी गणना नेकी में न होगी। अपनी पत्नी को जो खिलाते-पिलाते हो वह भी तुम्हारे नेक कामों में गिना जाता है। मोमिन को नेकी का लोभी होना चाहिए, किन्तु उसे यह भी जानना चाहिए कि इस्लाम में नेकी के भाव में बड़ी व्यापकता पाई जाती है। उसका कोई एक विशिष्ट रूप नहीं है। मोमिन का प्रत्येक कार्य नेकी होता है। वह अपनी संतान के लिए अच्छी भावना से जो भलाई करेगा उसकी गणना भी उसकी नेकियों ही में होगी।

(7) हज़रत हकीम इब्ने-हिज़ाम (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "यह धन हरित और मधुर है। अतः जो व्यक्ति इसे आत्मा की पवित्रता के साथ लेगा उसके लिए इसमें बरकत होगी और जो कोई इसे कृपण-मन के साथ लेगा, उसके लिए इसमें बरकत न होगी। और वह उस व्यक्ति की तरह है जो खाता है किन्तु पेट नहीं भरता। और ऊपरवाला हाथ नीचेवाले हाथ से उत्तम है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : धन एक ईश्वरीय अनुग्रह और हृदयाकर्षक चीज़ है। उसे प्राप्त करना बुरा नहीं, लेकिन आवश्यक है कि उसके साथ आत्मा

की पवित्रता (एक रिवायत के अनुसार मन की दानशीलता) हो। धन प्राप्त करना ही नहीं, आदमी को अच्छे और नेक कामों में ख़र्च करना भी आता हो। यह बात अगर है तो धन में बरकत होगी, धन उसके लिए भलाई का कारण होगा। लेकिन धन प्राप्त करनेवाला यदि कृपण है तो वह धनवान होकर भी दरिद्र ही रहेगा। उसका लोभ कभी समाप्त होने का नहीं। ऊपरवाला हाथ अर्थात् देनेवाला हाथ नीचेवाले हाथ (लेनेवाले हाथ) से उत्तम है। यह कहकर नबी (सल्ल॰) ने इस बात पर उभारा है कि आदमी का हौसला यह होना चाहिए कि वह देनेवाला बनने की कोशिश करे, न कि वह लेनेवाला मुहताज बनकर रहे।

(8) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "आदमी के लिए यही गुनाह बहुत है कि अपनी रोज़ी विनष्ट करे या जिन लोगों की रोज़ी उसके ज़िम्मे है उनको तबाह करे।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् गुनाहगार होने के लिए यही काफ़ी है कि आदमी माल को बरबाद करे और अनावश्यक और फ़ुज़ूल कामों में ख़र्च करे। जिनकी देखभाल और पालन-पोषण उसके ज़िम्मे है उनकी उसे कोई चिन्ता न हो, बल्कि अपना धन वह कहीं और ख़र्च करता हो। इस प्रकार वह धन भी बरबाद करेगा और उन्हें भी तबाह हाल करके छोड़ेगा जिनके पालन-पोषण का भार उसपर है। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति अपने ज़रूरतमन्द बूढ़े माँ-बाप या अपने बच्चों पर धन ख़र्च न करके वह धन कहीं और ख़र्च करता है तो उसके गुनाहगार होने में क्या सन्देह हो सकता है।

(9) "हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति हलाल और वैध तरीक़े से दुनिया (अर्थात धन-सपत्ति) इस उद्देश्य से प्राप्त करे कि वह किसी के आगे हाथ फैलाने से बच सके और अपने परिवार की

आवश्यकताएँ पूरी कर सके और अपने पड़ोसी का भी हित कर सके तो वह क़ियामत के दिन प्रतापवान ईश्वर से इस अवस्था में मिलेगा कि उसका चेहरा पूर्णिमा के चाँद के सदृश होगा। इसके विपरीत जो व्यक्ति चाहे वैध तरीक़े से ही दुनिया इस उद्देश्य से प्राप्त करने की कोशिश करे ताकि उसके धन में अभिवृद्धि हो, वह लोगों के सामने इसपर गर्व करे और उसे प्रसिद्धि प्राप्त हो तो वह क़ियामत के दिन ईश्वर से इस दशा में मिलेगा कि अल्लाह उस पर अत्यन्त क्रुद्ध होगा।" (हदीस : बैहक़ी, शोबुल-ईमान)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि धन की चाहत और उसे प्राप्त करने की चिन्ता कोई इस्लाम विरुद्ध बात नहीं है। किन्तु इसके लिए आवश्यक है कि धन के प्राप्त करने के संसाधन वैध हों। मनुष्य के लिए धन स्वयं अपने-आप में कोई लक्ष्य न हो, बल्कि वह अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा और परिजनों के भरण-पोषण के लिए धन कमाता हो और इसके पीछे उसका उद्देश्य यह हो कि वह दूसरों के भी काम आ सके। उदाहरणार्थ अपने पड़ोसियों को उपकृत कर सके तो ऐसा व्यक्ति इस शान के साथ अपने प्रभु से मिलेगा कि उसका मुख चन्द्र के सदृश प्रकाशमान होगा। लेकिन इसके विपरीत अगर उसके सामने कोई उच्च उद्देश्य नहीं है, वह धन को बढ़ाता ही जाता है और धनार्जन से उसका उद्देश्य यह होता है कि उसके पास धन की अभिवृद्धि हो, वह अपने धन पर गर्व कर सके और संसार में उसे प्रसिद्धि और नामवरी हो तो उसके हिस्से में ईश-प्रकोप ही आएगा। और यदि कहीं उसका धन अवैध मार्गों से एकत्र हुआ है तब तो और अधिक यह उसकी लिए मुसीबत होगा।

(10) हज़रत ज़ुबैर-बिन-नुफ़ैर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "मेरी ओर यह वह्य (प्रकाशना) नहीं की गई है कि मैं धन एकत्र करूँ और व्यापारी बनूँ, बल्कि मेरी ओर यह प्रकाशना की गई है कि अपने रब की प्रशंसा करो और

सजदा करनेवालों में सम्मिलित हो और अपने रब की इबादत औ
बन्दगी करते रहो, यहाँ तक कि जो निश्चयात्मक और विश्वसनी
है वह तुम्हारे समक्ष आ जाए।" (हदीस : शरहुस्सुन्नह)

व्याख्या : इस हदीस में क़ुरआन (15 : 98, 99) के हवाले वे
साथ यह बात व्यक्त की गई है कि मानव-जीवन में मौलिक औ
शाश्वत मूल्य रखनेवाली चीज़ कौन-सी है। धन-दौलत का महत्त्व अपनी
जगह पर है, व्यापार में भी कोई बुराई नहीं, लेकिन इसको कभी नहीं
भूलना चाहिए कि जीवन का लक्ष्य एवं उद्देश्य भौतिक और ऐन्द्रिव
सुख नहीं हो सकता। जीवन का वास्तविक अभिप्राय और उद्देश्य है
ईश्वर की पहचान और उससे सम्पर्क स्थापित करना। हमें ईश्वर के गुणों
और उसके सौन्दर्य और परिपूर्णता का आभास हो। यही चीज़ है जो
सुसंस्कृत मन और मस्तिष्क के लिए शान्ति और अपार सुख का कारण
हो सकती है। जीवन की मूल निधि यही है कि हमारा जीवन ईश्वर की
अवज्ञा में नहीं बल्कि उसकी आज्ञाकारिता और बन्दगी में व्यतीत हो
और जीवन के अन्तिम क्षणों तक हम इसपर क़ायम रहें। यह बात अगर
हासिल नहीं हो सकी तो चाहे दुनिया की सारी दौलत एवं सम्पत्ति
सिमटकर हमारे पास एकत्र हो जाए इसका कोई मूल्य नहीं होता
धन-सम्पत्ति के बावुजूद हम जीवन में असफल ही रहेंगे और घाटा ही
हमारे हिस्से में आएगा।

(11) हज़रत मिक़दाम-बिन-मादीकरिब (रज़ि॰) कहते हैं कि मैंने अल्लाह
के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना है कि एक ऐसा समय
लोगों पर आएगा कि जिसमें दीनार और दिरहम के सिवा कोई
चीज़ लाभदायक न होगी। (हदीस : मुस्नद अहमद)

व्याख्या : अर्थात् धन-सम्पत्ति के प्राप्त करने में कोई हरज नहीं
है। एक ऐसा समय आएगा कि धन का महत्त्व बहुत अधिक बढ़
जाएगा। अपने दीन व ईमान की सुरक्षा और प्रतिष्ठित जीवन व्यतीत

करने के लिए धन अपरिहार्य हो जाएगा। उस समय धनहीन और सताए हुए लोगों के लिए इस बात का भय होगा कि वे अपनी प्रतिष्ठा ही को नहीं बल्कि कहीं वे अपने दीन और ईमान ही को न बेच खाएँ।

(12) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने उमर (रज़ि॰) को यह कहते हुए सुना है कि नबी (सल्ल॰) मुझे कुछ देते तो मैं कहता कि आप इसे उस व्यक्ति को दीजिए जो मुझसे अधिक ज़रूरतमन्द हो, यहाँ तक कि एक बार आप (सल्ल॰) ने मुझे कुछ माल दिया तो मैंने कहा कि यह आप उसको दे दें जो मुझसे अधिक ज़रूरतमन्द हो। इसपर नबी (सल्ल॰) ने कहा, "इसे लेकर मालदार हो और फिर इसको सदक़ा (दान) कर दो। यदि यह माल तुम्हारे पास इस तरह आए कि न तो तुम उसकी प्रतीक्षा में हो और न तुम माँगनेवाले हो तो उसको ले लो, और जो न आए तो उसके पीछे अपने मन को न लगाओ।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् माल मिल रहा हो तो उसकी क़द्र करनी चाहिए अलबत्ता तुम्हें माल का लोभी नहीं होना चाहिए और न उसकी प्रतीक्षा में रहना चाहिए कि कोई तुम्हें माल ला कर देगा। यदि बिना माँगे और बिना लोभ-लालच के माल मिल रहा है तो उसे ले लेना चाहिए। यदि तुम्हें उसकी आवश्यकता नहीं है तो उससे तुम दूसरों की आवश्यकताएँ पूरी कर सकते हो, जो माल तुम्हें न मिले तो फिर ऐसे माल के लोभ में नहीं पड़ना चाहिए।

धनोपार्जन

(वैध एवं अवैध)

धनोपार्जन का महत्व

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "अल्लाह पाक है, पाक चीज़ों को ही वह स्वीकार करता है, और अल्लाह ने ईमानवालों को भी इसी बात का आदेश दिया जिसका आदेश उसने रसूलों को दिया है। अतः उसका कथन है : ऐ रसूलो! उत्तम पवित्र चीज़ें खाओ और अच्छा कर्म करो (क़ुरआन, 23:51) और कहा : ऐ ईमान लानेवालो, पाक और उत्तम चीज़ें खाओ जो हमने तुम्हें प्रदान की हैं। (क़ुरआन, 2:172) (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि धर्म यह नहीं है कि आदमी खाना-पीना त्याग दे, बल्कि धर्म वास्तव में यह है कि आदमी खाए किन्तु विशुद्ध और उत्तम चीज़ें खाए। हराम की कमाई से दूर रहे। और खा-पीकर धरती में बिगाड़ पैदा न करे बल्कि वह सुचरित्र और सुशील बनकर रहे। रसूलों के अतिरिक्त ईमानवालों को भी यही शिक्षा दी गई है कि वे अल्लाह की दी हुई विशुद्ध और उत्तम आजीविका में से खाएँ। अपने मुँह में हराम कमाई का कोई निवाला न ले जाएँ। खाने-पीने में वैध और अवैध, पवित्र और अपवित्र में अन्तर करनेवाले से इस बात की आशा की जाएगी कि जीवन के अन्य मामलों में भी उसे अच्छे और बुरे की परख होगी। वह जीवन में वही कर्म करेगा जो अच्छे होंगे, बुरे कर्मों से वह हमेशा दूर रहेगा।

(2) हज़रत आइशा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "जो कुछ तुम खाते हो उसमें सबसे पाक और बेहतर वह है जो तुम्हें अपनी कमाई से प्राप्त हुई हो, और तुम्हारी सन्तान भी तुम्हारी कमाई है।" (हदीस : तिरमिज़ी, नसई)

व्याख्या : अर्थात् अपनी औलद की कामई खाने में तुम्हारे लिए कोई लज्जा की बात नहीं है। औलाद की कमाई तुम्हारी अपनी कमाई है।

(3) हज़रत राफ़ेअ-बिन-खुदीज (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से पूछा गया कि कौन-सी कमाई सबसे उत्तम है? आप (सल्ल॰) ने कहा, "मनुष्य का अपने हाथ से काम करके कमाना और प्रत्येक ईमानदारी का सौदा।" (हदीस : अहमद)

व्याख्या : इस्लाम न तो मुफ़्तख़ोरी को पसन्द करता है और न इसको वैध ठहराता है कि आदमी आजीविका प्राप्त करने के लिए ऐसे संसाधन अपनाए जिनकी गणना धोखाधड़ी, अन्याय एवं अत्याचार और शोषण (Exploitation) के कामों में होती है। आजीविका के लिए आदमी को परिश्रम करना चाहिए। इसके लिए वह व्यापार भी कर सकता है। शर्त यह है कि अपने व्यापार में वह शरीअत के आदेशों का पूरा ध्यान रखे।

(4) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति माँगने के लिए हाथ फैलाने से बचने के लिए, अपने परिजनों की आवश्यकता पूरी करने के लिए और अपने पड़ोसी के साथ उपकार करने के उददेश्य से वैध तरीक़े से दुनिया प्राप्त करे तो वह क़ियामत के दिन सर्वोच्च ईश्वर से इस हाल में मिलेगा कि उसका चेहरा पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह चमकता होगा। इसके विपरीत जो व्यक्ति अपने धन में अभिवृद्धि के लिए लोगों के समक्ष गर्व करने और दिखावे के लिए

वैध तरीक़े से ही दुनिया प्राप्त करे तो वह (क़ियामत के दिन) सर्वोच्च अल्लाह से इस दशा में मिलेगा कि वह उसपर अत्यन्त क्रुद्ध होगा।" (हदीस : बैहक़ी—शोबुल-ईमान)

व्याख्या : इस्लामी दृष्टिकोण से धन की प्राप्ति का उद्देश्य केवल यही नहीं है कि उससे हम अपनी निजी आवश्यकताएँ पूरी करें और अपने घलवारों पर ख़र्च करें बल्कि दौलत की प्राप्ति का उद्देश्य इसके अतिरिक्त यह भी है कि हमारी दौलत दूसरों के काम आए। उदाहरणार्थ जैसा कि इस हदीस में कहा गया है कि हम अपने पड़ोसी पर उपकार करें।

जिसने धन वैध तरीक़े से प्राप्त किया किन्तु उद्देश्य उसका ठीक न था, इसका परिणाम यह होगा कि ईश्वर उसपर अत्यन्त क्रुद्ध होगा और यदि ग़लत उद्देश्यों के लिए वह धन अवैध और हराम तरीक़े से हासिल करता तो उसका परिणाम क्या होगा यह आदमी ख़ुद सोच सकता है।

(5) हज़रत मिक़दाम (रज़ि॰) अल्लाह के रसूल से रिवायत करते हैं कि आप (सल्ल॰) ने कहा, "उस व्यक्ति से अच्छा खाना किसी ने नहीं खाया जो अपने हाथ से काम करके खाए। अल्लाह के नबी दाऊद (अलै॰) अपने हाथ से काम करके खाते थे।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् सर्वोत्तम आजीविका वह है जो आदमी के अपने परिश्रम से प्राप्त हो। अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत दाऊद (अलै॰) का तरीक़ा भी यही रहा है कि वे अपने हाथ से परिश्रम करके खाते थे।

(6) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "तुममें से कोई लकड़ियाँ एकत्र करके अपनी पीठ पर गट्ठा लादकर लाए यह उससे अच्छा है कि वह किसी से माँगे, फिर वह उसको दे या उसे न दे।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इस्लाम आत्मसम्मान को बड़ा महत्त्व देता है। इसी लिए नबी (सल्ल॰) की शिक्षा यह है कि लोगों के सामने अपनी ज़रूरतें रखने और याचक बनकर उनके सामने जाने का अपमान सहन करने से अच्छा यह है कि आदमी लकड़ियों का गट्ठर अपनी पीठ पर लादकर लाए और बेचकर अपनी आवश्यकताएँ पूरी करे।

(7) हज़रत सौबान (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति मुझे इस बात का वचन दे कि वह लोगों से माँगेगा नहीं तो मैं उसके लिए जन्नत का वचन देता हूँ।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अपनी समस्त आशाएँ एक ईश्वर से ही सम्बद्ध हों। आदमी के सोचने का ढंग यह हो कि उससे लोगों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचे किन्तु वह स्वयं लोगों से कोई अपेक्षा न रखता हो। वह लोगों का सहारा न तलाश करे। ऐसे व्यक्ति को जो हार्दिक परितोष और शान्ति प्राप्त होगी, उसका तो सामान्य व्यक्ति अनुमान भी नहीं कर सकता। फिर उसकी यह नीति इस्लाम के स्वभाव के इतना अधिक अनुकूल है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) उसके लिए जन्नत का वचन देते हैं।

श्रम और मज़दूरी

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा कि सर्वोच्च अल्लाह का क़थन है कि "तीन व्यक्ति ऐसे हैं कि क़ियामत के दिन उनके विरुद्ध मैं मुक़द्दमा खड़ा करूँगा— एक वह व्यक्ति जिसने मेरा हवाला देकर कोई समझौता किया फिर उसे तोड़ दिया। दूसरा वह जिसने किसी स्वतंत्र आदमी को बेच दिया और उसकी क़ीमत खाई और तीसरा वह जिसने किसी मज़दूर को काम पर लगाया, उससे पूरा काम लिया और उसको उसकी मज़दूरी न दी।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : ये तीनों ही काम अत्यन्त अन्यायपूर्ण हैं। एक यह वि सन्धि भंग करना। समझौता और सन्धि यदि ईश्वर के नाम से की ग हो, फिर तो उसका तोड़ना और भी घोर अपराध होगा। दूसरे किस आज़ाद व्यक्ति का अपहरण करके उसे किसी के हाथ बेच देना औ उसकी क़ीमत खाना अत्यन्त लज्जाजनक कार्य है। तीसरे किसी मज़दू से काम तो पूरा लेना और उसको मज़दूरी और उजरत से वंचित रखना यह और इस प्रकार के अन्य कर्म अत्यन्त अन्यायपूर्ण हैं। इस प्रकार क ज़ुल्म करनेवाले के विरुद्ध ईश्वर स्वयं मुद्दई (वादी) होगा और उन्हे उनके ज़ुल्म का मज़ा चखाएगा।

(2) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "मज़दूर को उसकी मज़दूरी उसका पसीन सूखने से पहले दे दो।" (हदीस : इब्ने-माजा)

व्याख्या : मज़दूर को मज़दूरी देने में टाल-मटोल से काम लेन खुला हुआ अन्याय है। मज़दूर को मज़दूरी देने में यथा सम्भव विलम्ब बिल्कुल नहीं होना चाहिए। कोशिश यह होनी चाहिए कि मज़दूर को मज़दूरी तुरन्त दे दी जाए।

यहाँ यह बात भी सामने रहे कि मज़दूर से काम लेने से पहले उसकी मज़दूरी तय कर लेनी चाहिए। हदीस में है, "अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने मज़दूर की मज़दूरी उसपर स्पष्ट किए बिना उसे मज़दूर रखने से मना किया है।" (हदीस : मुस्नद अहमद)

व्यापार और क्रय-विक्रय

(1) हज़रत क़ैस-बिन-अबी-ग़रज़ा (रज़ि॰) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "ऐ व्यापारी जन! क्रय-विक्रय में व्यर्थ बातें औ क़सम खाने की स्थितियाँ आती हैं। अतः क्रय-विक्रय (व्यापार) के साथ दान और सद्क़ा को मिलाए रखो।"

(हदीस : अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने-माजा

व्याख्या : आजीविकोपार्जन के लिए व्यापार और व्यवसाय करने की इस्लाम अनुमति देता है। क्योंकि इस कारोबार में असावधानी की आशंकाएँ भी पाई जाती हैं। आदमी कारोबार में व्यर्थ बातें भी करता है और अपने ग्राहकों को सन्तुष्ट करने के लिए क़समें भी खाने लगता है जो कोई अच्छी बात नहीं है। इससे आदमी को बचना चाहिए। व्यापार के साथ सद्क़ा और ख़ैरात भी करते रहना चाहिए ताकि यदि कुछ अनुचित बातें हो गई हों तो यह सद्क़ा उसका प्रायश्चित बन सके। और ईश्वर की अप्रसन्नता और उसके क्रोध से आदमी बच सके।

(2) हज़रत उबैद-बिन-रिफ़ाआ अपने पिता (हज़रत रिफ़ाआ-बिन-राफ़ेअ रज़ि॰) के माध्यम से उल्लेख करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "क़ियामत के दिन व्यापारी अवज्ञाकारियों के साथ एकत्र किए जाएँगे, सिवाय उन व्यापारियों के जो ईश्वर से डरते थे और जिन्होंने पूरा हक़ अदा किया और सच्चाई पर क़ायम रहे।"

(हदीस : तिरमिज़ी, इब्ने-माजा, दारमी)

व्याख्या : व्यापारी अवज्ञाकारियों और उल्लघनकारियों के साथ इसलिए एकत्र किए जाएँगे क्योंकि व्यापार में अधिकतर लोग झूठ बोलने और धोखा देने से नहीं बचते। अलबत्ता ऐसे व्यापारी इसके अपवाद हैं, व्यापार में जिनकी नीति नेकी और ईशपरायणता के विरुद्ध नहीं होती। प्रत्येक दशा में जो सच्चाई पर क़ायम रहते हैं। न झूठ बोलते हैं और न किसी प्रकार का धोखा देते हैं।

(3) हज़रत अबू-क़तादा (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "क्रय-विक्रय में अधिक क़समें खाने से बचो क्योंकि इससे व्यापार में वृद्धि तो (क्षणिक रूप से) होती है, किन्तु फिर बरकत समाप्त हो जाती है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् आरम्भ में लोग क़समों के कारण विश्वास करके ख़रीदारी की ओर झुकते हैं और इससे व्यापारी को लाभ भी होता है।

किन्तु परिणामस्वरूप इससे बरकत जाती रहती है। आदमी पर विश्वास नहीं रह जाता। लोगों को लेन-देन में झिझक होने लगती है। कभी माल भी बरबाद हो जाता है जिससे व्यापार को भारी क्षति पहुँचती है।

(4) हज़रत उक़बा-बिन-आमिर (रज़ि॰) कहते हैं कि मैंने नबी (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना कि मुसलमान मुसलमान का भाई है, किसी मुसलमान व्यक्ति के लिए यह वैध नहीं कि वह अपने भाई के हाथ कोई चीज़ बेचे और वह त्रुटिपूर्ण हो, यह और बात है कि वह त्रुटि को साफ़-साफ़ उससे बयान कर दे।"

(हदीस : इब्ने-माजा)

व्याख्या : अर्थात् चीज़ में यदि कोई त्रुटि या ख़राबी है तो ख़रीदार को उसे त्रुटि से अवगत कराना आवश्यक है। यदि ख़रीदार से त्रुटि को छिपाकर सामान बेच दिया जाता है तो यह अपने भाई को धोखा देना है जो किसी प्रकार भी वैध नहीं हो सकता। यहाँ यह बात स्पष्ट रहे कि इस्लाम की नज़र में किसी भी प्राणी को धोखा देना पाप है।

(5) हज़रत मिक़दाम-बिन-मादीकरिब (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "अपना अनाज नाप लिया करो, तुम्हारे लिए बरकत दी जाएगी।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अनाज को नाप-तौल कर रखनेवाला व्यावहारिक रूप में इसका सुबूत देता है कि वह अनाज के मूल्य और महत्व को जानता है। इसलिए वह उसे ग़लत तरीक़े पर ख़र्च भी नहीं कर सकता। इससे बरकत होती है। इसके अतिरिक्त पैमानों (मापों) में बरकत की दुआ भी नबी (सल्ल॰) ने की है। (हदीस : बुख़ारी)

(6) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने नापने और तौलनेवालों से कहा, "तुम्हारे हाथ में दो कार्य ऐसे हैं (अर्थात् नापने और तौलने के कार्य) जिनके कारण तुमसे पहले की क़ौमें विनष्ट हो चुकी हैं।" (हदीस : तिरमिज़ी)

व्याख्या : अर्थात् पहले ऐसी क़ौमें और जातियाँ गुज़री हैं जिनके लोग नाप-तौल को ठीक नहीं रखते थे। जब कुछ लेते तो पूरा-पूरा नाप-तौलकर लेते, लेकिन जब किसी को देते तो नाप-तौल में कमी कर देते थे। जब यह बुराई बहुत बढ़ गई तो अल्लाह का अज़ाब (यातना) उनपर उतरा और वे क़ौमें विनष्ट होकर रह गईं। ऐसी क़ौमों में सर्वप्रथम हज़रत शुऐब (अलै॰) की क़ौम का नाम लिया जाता है। इस हदीस में लोगों को सतर्क किया जा रहा है कि वे नाप-तौल में कमी करने से बचें क्योंकि यह चीज़ अल्लाह के प्रकोप का कारण बन सकती है।

(7) हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) के समय में एक बार अनाज मँहगा हो गया तो लोगों ने कहा कि, ऐ अल्लाह के रसूल! हमारे लिए भाव निश्चित कर दीजिए। आप (सल्ल॰) ने कहा, "अल्लाह ही मूल्य और भाव निश्चित करनेवाला, वही तंगी पैदा करनेवाला और वही कुशादगी पैदा करनेवाला है, और मैं तो इस बात की आशा और इच्छा रखता हूँ कि मैं अपने रब से इस दशा में मिलूँ कि मुझपर तुममें से किसी के ख़ून (का बदला) और माल की माँग न हो।"

(हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, इब्ने-माजा, दारमी)

व्याख्या : "अल्लाह ही मूल्य और दर निर्धारित करता है।" अर्थात् चीज़ों का मँहगी या सस्ती होना अल्लाह ही के हाथ में है। कभी लोग तंगी में पड़ जाते हैं और कभी अल्लाह रोज़ी में कुशादगी पैदा कर देता है। स्थितियों के अंतर्गत चीज़ें मँहगी होती हैं और स्थितियों ही के कारण वे सस्ती होती हैं। उदाहरणार्थ, अगर किसी चीज़ की पैदावार बढ़ जाए तो अनिवार्यतः उसका प्रभाव उसके मूल्य और दर पर पड़ेगा। उसका भाव गिर जाएगा। इसके विपरीत उत्पादन की कमी से चीज़ों के मूल्य बढ़ जाते हैं। इस प्रकार लोगों की माँग (Demand) भी चीज़ों के

मूल्य को प्रभावित करती है। जिस चीज़ की माँग अधिक होगी उसका मूल्य बढ़ जाएगा।

कृत्रिम रूप से चीज़ों को सस्ती करने की कोशिश ग़लत और अर्थशास्त्र सिद्धान्त के विरुद्ध है। इसलिए सरकार की ओर से बलपूर्वक मूल्य निर्धारित करना ठीक न होगा। यह एक अन्याय का रूप हो सकता है। इसका बुरा परिणाम भी सामने आ सकता है कि कारोबार बन्द हो जाए और जनसामान्य मुसीबत में पड़ कर रहें। चीज़ों के भाव के उतार-चढ़ाव के पीछे कुछ आर्थिक कारक कार्य करते हैं, उनकी उपेक्षा करना ठीक न होगा। अलबत्ता सरकार के लिए यह आवश्यक है कि वह व्यापारियों पर निगाह रखे कि वे अनियंत्रित अर्थतंत्र का तरीक़ा न अपनाएँ। अल्लाह के सृष्टिजन के साथ उनका मामला सहानुभूति, शुभ-चिन्ता और न्याय पर आधारित हो। इस सम्बन्ध में कुछ बातों का उल्लेख आगे आ रहा है।

(8) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) कहते हैं कि एक व्यक्ति ने नबी (सल्ल॰) से कहा कि मैं क्रय-विक्रय के मामले में धोखा खा जाता हूँ। आप (सल्ल॰) ने कहा, "तुम जब क्रय-विक्रय का मामला करो तो कह दिया करो कि धोखा नहीं।" अतः वह इसी प्रकार कह दिया करता था। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् यह कह दिया करो कि कोई ऐसी चीज़ न अपनाना जिससे मैं धोखा खा जाऊँ और मुझे हानि पहुँचे। इस्लाम में इसकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है कि किसी भी व्यक्ति के साथ धोखा या फ़रेब किया जाए। इसलिए यदि तुम ईश्वर से डरते हो तो मुझे किसी प्रकार का धोखा कदापि न देना।

क्रय-विक्रय के कुछ सिद्धान्त और नियम

(1) हज़रत जाबिर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "अल्लाह उस व्यक्ति के साथ दयालुता का

व्यवहार करेगा जो उस समय नर्मी और सुशीलता से काम ले जब वह माल बेचे और जब वह ख़रीदे और जब वह क़र्ज की वुसूली करे।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अच्छे समाज के लिए आवश्यक है कि लोग परस्पर एक-दूसरे के साथ सहानुभूति रखते हों और एक-दूसरे के हितैषी हों। प्रत्येक मामले में सहयोग की भावना उनके अन्दर पाई जाती हो। और यह उसी रूप में सम्भव है जबकि लोग परस्पर एक-दूसरे को अपना भाई समझकर मामला करें। किसी को पराया न समझें। फिर प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि ख़ुदा उसपर मेहरबान हो। उसके साथ ख़ुदा का मामला सख़्ती का न हो। फिर जीवन में यही नर्मी और उदारता की नीति उसे भी अपनानी चाहिए। वह किसी दशा में भी नर्मी और सुशीलता से काम लेना न छोड़े।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "कोई व्यक्ति अपने मुसलमान भाई के सौदे पर सौदा न करे।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इसलिए कि यह भ्रातृत्व की भावना के विपरीत है। भाई को भाई का हितैषी होना चाहिए, न कि कुछ और।

(3) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "कोई व्यक्ति अपने भाई के सौदे पर सौदा न करे और न कोई अपने भाई के निकाह के पैग़ाम पर अपने निकाह का पैग़ाम भेजे। यह और बात है कि उसे इस बात की अनुमति दे दी जाए।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मतलब यह है कि किसी से उसका क्रय-विक्रय का मामला हो रहा हो या उसने कहीं निकाह का पैग़ाम भेजा हो तो फिर उसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हाँ, अगर दोनों पक्ष मामले से अलग

हो जाएँ तो इस स्थिति में दूसरा व्यक्ति उससे क्रय-विक्रय का मामला कर सकता है या निकाह का पैग़ाम भेज सकता है।

(4) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "बेचनेवाला और ख़रीदनेवाला दोनों में से प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे पर उस समय तक अधिकार प्राप्त है (कि चाहे तो क्रय-विक्रय के मामले को बाक़ी रखें और चाहें तो रद्द कर दें) जब तक कि वे एक-दूसरे से अलग न हों, सिवाय इसके कि उनका सौदा 'ख़ियार' की शर्त पर हो।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् ख़रीदारी में अगर ख़रीदार ने यह शर्त कर ली है कि एक या दो-तीन दिन तक मुझे यह अधिकार रहेगा कि मैं चाहूँगा तो ख़रीदी हुई चीज़ रखूँगा, अन्यथा वापस कर दूँगा। इस रूप में क्रय-विक्रय में एक-दूसरे से अलग होने के बाद भी मामला रद्द कर देने का अधिकार बाक़ी रहता है। दूसरी स्थिति में यह अधिकार बाक़ी नहीं रहता।

इमाम शाफ़िई (रह॰) और कुछ दूसरे इमामों के मतानुसार शर्त और अनुबन्ध के बिना भी दोनों पक्षों को उस समय तक मामले को रद्द करने का अधिकार बाक़ी रहता है जब तक वे उस स्थान पर उपस्थित हैं जहाँ सौदा तय हुआ है। इसे 'ख़ियारे-मजलिस' कहते हैं। मजलिस से अलग होने के बाद यह अधिकार बाक़ी न रहेगा। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) और कुछ दूसरे इमाम 'ख़ियारे-मजलिस' की शर्त को नहीं मानते। उनकी दृष्टि में "एक-दूसरे से जुदा होने" का अर्थ मजलिस (स्थान) से अलग होना नहीं है बल्कि इससे अभिप्रेत व्यापारिक मामले की बात-चीत की पूर्णता अर्थात् क्रय-विक्रय के मामले का बिल्कुल तय हो जाना और लेन-देन का पूरा हो जाना है। अब यदि पहले से मामले को रद्द करने की शर्त नहीं लगाई गई है तो अब किसी भी पक्ष को

एकतरफ़ा मामला रद्द करने का अधिकार न होगा। अलबत्ता परस्पर सहमति से मामले को रद्द कर सकते हैं। इमाम शाफ़िई (रह॰) के मतानुसार "जब वे एक-दूसरे से अलग न हों" का अर्थ 'ख़ियारे-मजलिस' है। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) के मतानुसार अलग होने से अभिप्रेत स्थान से अलग होना नहीं है बल्कि मामला करके अलग होना है। उनके मतानुसार जब तक बात बिल्कुल तय न हो जाए और बातचीत बिल्कुल पूरी न हो जाए उस समय तक प्रत्येक पक्ष को मामले को रद्द करने का अधिकार प्राप्त होगा। इसके बाद किसी को यह अधिकार प्राप्त न रहेगा। विलग होने से वे मामले से विलग होना समझते हैं जैसा कि क़ुरआन में यह शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, "यदि दोनों (पति-पत्नी) विलग हो जाएँ तो अल्लाह अपनी समाई से प्रत्येक को स्वावलम्बी कर देगा।" (क़ुरआन, 4:130)

स्पष्ट है इस आयत में विलग होने का अर्थ स्थान से विलग होना नहीं है, बल्कि पति-पत्नी के बीच वह जुदाई है जो तलाक़ के द्वारा होती है।

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने एक सौदे में दो सौदे करने से मना किया है।

(हदीस : मालिक, तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : एक सौदे में दो सौदे, उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति किसी से इस तरह का मामला करे कि मैं अपनी अमुक चीज़ तुम्हारे हाथ दस हज़ार रुपये में बेचता हूँ, लेकिन शर्त यह है कि तुम अपनी अमुक चीज़ मेरे हाथ पाँच हज़ार रुपये में बेच दो। सौदे का यह मामला वैध न होगा। प्रत्येक सौदा अलग-अलग होना चाहिए। एक सौदे में दो सौदे का एक रूप यह भी है कि एक व्यक्ति दूसरे से यह कहे कि यह चीज़ अगर नक़द लेते हो तो उदाहरणार्थ एक सौ रुपये में ले सकते हो और अगर उधार लेते हो तो एक सौ पच्चीस रुपये देने होंगे। और सौदे का मामला हो जाए और यह यक़ीन न हो कि सौदा किस पर हुआ है, नक़द पर या

उधार पर। इस प्रकार सौदे में सौदे का मामला करना वैध न होगा। मामले में संदिग्धता नहीं होनी चाहिए। और लेन-देन में किसी प्रकार का दबाव और जब्र न हो ताकि न तो किसी को दुख पहुँचे और न किसी को हानि उठानी पड़े।

(6) हज़रत अम्र-बिन-शुऐब (रह०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "क़र्ज़ और क्रय-विक्रय को एक-दूसरे से सम्बद्ध करना वैध नहीं, और न यह वैध है कि सौदे में दो शर्तें की जाएँ, और न यह दुरुस्त है कि उस चीज़ से लाभ उठाया जाए जो अपने क़ब्ज़े में नहीं आई और न यह वैध है कि उस चीज़ को बेचा जाए जो तुम्हारे पास नहीं है।"

(हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : यहाँ व्यापार का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त बयान किया गया है जिसका सारांश यह है कि आदमी के लिए उस चीज़ का बेचना वैध है जो उसके पास है और उसी चीज़ से उसे लाभ प्राप्त करने का अधिकार पहुँचता है जो उसके क़ब्ज़े में हो। दूसरी स्थिति में तरह-तरह की ख़राबियों और बुराइयों के पैदा होने की सम्भावनाएँ होती हैं जिससे इनकार नहीं किया जा सकता।

(7) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि०) और हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक व्यक्ति को ख़ैबर का अधिकारी नियुक्त किया। वह जनीब खजूरें (एक उत्तम प्रकार की खजूरें) लाया। आप (सल्ल०) ने कहा, "क्या ख़ैबर की सब खजूरें ऐसी ही हैं?" उसने कहा कि अल्लाह की क़सम, नहीं; ऐ अल्लाह के रसूल! इसे हम दो साअ खजूरें देकर एक साअ या तीन साअ के बदले दो साअ ख़रीदते हैं। आप (सल्ल०) ने कहा, "ऐसा न करो! बल्कि साधारण खजूरों को सिक्कों के बदले बेच दो और फिर सिक्कों से जनीब ख़जूरें खरीद लो।"

(हदीस : नसई)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि साधारण खजूर अगर त्तम खजूर जनीब से बदलते तो एक साअ में दुगुने का अन्तर होता था ौर दो साअ खजूर जनीब सिर्फ़ ड्योढ़े पर अर्थात् तीन साअ के बदले मिल सकती थी। अर्थात् एक साअ से दूसरे साअ तक बदलने की दर स्पष्ट अन्तर था। मूल्य निर्धारित न रहा। नबी (सल्ल०) ने इस ख़राबी । बचने का उपाय यह बताया कि खजूर का यह क्रय-विक्रय सिक्कों के ारा किया जाए। इस प्रकार हानि की सम्भावना शेष नहीं रहेगी और क निश्चत अन्तर से यह सौदा हो सकेगा।

साअ एक वज़न का नाम है जो दो किलो से अधिक का वजन ोता है।

8) हज़रत फ़ज़ाला-बिन-उबैद (रज़ि०) से उल्लिखित है, वे कहते हैं कि मैंने ख़ैबर के दिन एक हार बारह दीनार में ख़रीदा जिसमें सोना था और नगीना भी। मैंने (ख़रीदने के बाद) नगीना अलग किया तो सोना बारह दीनार से अधिक निकला, उसकी चर्चा मैंने नबी (सल्ल०) से की तो आप (सल्ल०) ने कहा, "जब तक सोने को अलग न कर लिया जाए उस समय तक बेचा न जाए।"

(हदीस : नसई)

व्याख्या : इस सिलसिले की अन्य रिवायतों के अध्ययन से मालूम ोता है कि ख़ैबर की विजय के अवसर पर नबी (सल्ल०) को सूचना ेली कि मुजाहिदीन ग़नीमत के माल को बड़ी बेदर्दी से बेच रहे हैं। वे क औक़िया की चीज़ दो-तीन दीनारों के बदले बेच रहे हैं तो आप सल्ल०) ने लोगों को इस कार्यनीति से रोका और कहा कि कम से कम तना मूल्य तो वुसूल होना चाहिए जितने का वह सोना या चाँदी है। म से कम दोनों पक्षों में सोने और चाँदी का वज़न तो बराबर हो। ज़रत फ़ज़ाला (रज़ि०) ने सोने का एक जड़ाऊ हार बारह दीनार में ले ्रया था। उसमें नगीना जड़ा था। नगीना अलग करके तौला तो सिर्फ़

सोना ही बारह दीनार से अधिक वज़न का था। नबी (सल्ल.) के कथ
का मतलब यह है कि आगे से ऐसी स्थिति में सोने को अलग कर
बेचा जाए ताकि दोनों पक्षों में से किसी को हानि न उठानी पड़े।

(9) हज़रत उबादा-बिन-सामित (रज़ि.) से उल्लिखित है कि अल्लाह वे रसूल (सल्ल.) ने कहा, "सोने का सोने के साथ, चाँदी का चाँद के साथ, गेहूँ का गहूँ के साथ, जौ का जौ के साथ, खजूर क खजूर के साथ, नमक का नमक के साथ विनिमय हो तो य विनिमय बराबर-बराबर और हाथ के हाथ होना चाहिए और यां वस्तुएँ भिन्न हों तो फिर अनुमति है जिस तरह चाहो क्रय-विक्र करो, अलबत्ता लेन-देन का हाथ के हाथ होना आवश्यक है।"

(हदीस : मुस्लिम

व्याख्या : इस हदीस में जिन चीज़ों का उल्लेख किया गया है व उदाहरणस्वरूप किया गया है। अतः सहाबा, ताबिईन और इमामों ने इ छह चीज़ों के साथ दूसरी चीज़ों को भी लिया है जो गुणों में समानत रखती हों। अर्थात् जो नापी जानेवाली, तौली जानेवाली और खा जानेवाली हैं और जो ज़ख़ीरे (भंडार) के रूप में रखी जा सकती हैं उदाहरणार्थ सभी प्रकार के अनाज, तेल और शहद आदि।

वस्तु यदि भिन्न है तो तौल या नाप में कमी-बेशी वैध है, बश कि मामला उधार का न हो। उदाहरणार्थ सोने का क्रय-विक्रय यदि चाँद के साथ हो तो वज़न में कमी बेशी वैध है। दोनों का वज़न बराबर हे यह ज़रूरी नहीं है। इसी प्रकार यदि गेहूँ का क्रय-विक्रय खजूर के सा हो तो लेन-देन में दोनों का वज़न बराबर होना ज़रूरी नहीं है। लेकि इसके लिए यह ज़रूरी है कि कोई एक उधार न हो। जैसा कि नब (सल्ल.) का कथन है, "जब ये चीज़ें भिन्न हों तो जिस तरह चाहो बेच जबकि लेन-देन हाथ के हाथ हो।" (हदीस : मुस्लिम)

यहाँ यह बात समझ लेने की है कि अगर लेन-देन ऐसी दो चीज़ों के बीच होता है जो न तो जिंस में एक हैं और न ऐसा ही है कि दोनों ही नापी या तौली जाती हों तो ऐसी चीज़ों में लेन-देन उधार भी हो सकता है और इसमें बराबर-बराबर की शर्त भी बाक़ी नहीं रहती। उदाहरणार्थ गेहूँ को रुपये से ख़रीदते हैं तो उधार लेन-देन भी जाइज़ है और चीज़ के बराबर-बराबर होने की जगह उसमें कमी-बेशी भी की जा सकती है।

जिन चीज़ों में उधार का मामला करना जाइज़ नहीं है वह ऐसी स्थिति में अवैध है जबकि उद्देश्य चीज़ों में विनिमय का हो। जैसे कोई नए गेहूँ से पुराने गेहूँ को बदलना चाहता है तो यह विनिमय उधार वैध न होगा। लेकिन जहाँ उद्देश्य विनिमय न हो बल्कि एक चीज़ अपने पास नहीं है, उधार लेने का उद्देश्य काम निकालना है कि जब अपने पास वह चीज़ होगी तो उतनी वापस कर देंगे जितनी उधार ली गई है। उदाहरणार्थ अपने पास आटा नहीं है, पड़ोसी से एक किलो आटा उधार ले लिया। यह वैध है क्योंकि यहाँ वास्तव में उद्देश्य विनिमय नहीं है। अगर अपने पास होता तो उधार लेते ही क्यों?

(10) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति किसी मुसलमान के साथ 'इक़ाला' का मामला कर ले (अर्थात् उसकी बिक्री की हुई या ख़रीदी हुई चीज़ की वापसी पर राज़ी हो जाए) तो अल्लाह क़ियामत के दिन उसकी ग़लती और गुनाह को क्षमा कर देगा।"

(हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : लेन-देन पूरा हो जाने के बाद कभी एक पक्ष अपने हित के कारण मामले को रद्द करना चाहता है। उदाहरण स्वरूप बेची हुई चीज़ वापस लेना चाहता है या ख़रीदी हुई चीज़ को वह वापस करना चाहता है। स्पष्ट है क़ानून के आधार पर दूसरे पक्ष को मामला रद्द

करने पर बाध्य नहीं किया जा सकता। लेकिन नबी (सल्ल॰) प्रेरणा देते हैं कि अगर दूसरा पक्ष उत्सर्ग से काम ले और अपने भाई का ख़्याल करते हुए मामले को रद्द करके उसकी चीज़ उसे वापस कर दे या अपनी चीज़ वापस ले ले तो यह एक बड़ी नेकी है। अल्लाह भी क़ियामत के दिन उसपर कृपा करेगा और उसकी ग़लतियों को क्षमा कर देगा।

(11) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) मदीना आए तो उस समय वहाँ के लोग फलों में एक साल, दो साल और तीन साल के लिए 'बैअ सलम' किया करते थे। आप (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति बैअ सलम करे तो उसे चाहिए कि निश्चित पैमाने, निश्चित वज़न और निश्चित अवधि के साथ बैअ सलम करे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् अग्रिम क़ीमत देकर कहते कि एक वर्ष दो वर्ष या तीन वर्ष के बाद फल पहुँचा देना।

इस हदीस से मालूम हुआ कि बैअ सलम जिसे सलफ़ भी कहा जाता है, कुछ शर्तों के साथ वैध है। बैअ सलम में ख़रीदी जानेवाली चीज़ की क़ीमत पहले अदा की जाती है, चीज़ बाद में ली जाती है उदाहरण स्वरूप एक व्यक्ति दो सौ रुपये में सोलह किलो गेहूँ ख़रीदता है और वह रुपये अदा कर देता है और दूसरे पक्ष से यह तय कर लेता है कि इतनी अवधि के पश्चात् अमुक प्रकार का गेहूँ तुमसे ले लूँगा यह बैअ सलम है। यह बैअ शरीअत की दृष्टि से वैध है शर्त यह है कि इसकी सभी शर्तें स्पष्ट हों और वे पूरी की जाएँ। कोई चीज़ अस्पष्ट या संदिग्ध न रहे ताकि मतभेद की कोई सम्भावना शेष न रहे।

यह भी वैध है कि बेची जानेवाली चीज़ मौजूद हो, उसे ख़रीदी जाए और क़ीमत उधार रखी जाए। जैसा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने हज़रत जाबिर (रज़ि॰) से उधार क़ीमत पर ऊँट ख़रीदा था।

(12) हज़रत आइशा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति ने किसी से गुलाम ख़रीदा और वह उसके पास जितना खुदा ने चाहा रहा। फिर उसे मालूम हुआ कि ग़ुलाम में एक ऐब है। वह इस मामले को लेकर नबी (सल्ल॰) के पास फ़ैसले के लिए पहुँचा। आप (सल्ल॰) ने (उस ऐब के कारण) ग़ुलाम को वापस करने का आदेश दे दिया। इसपर विपक्षी ने कहा कि ऐ अल्लाह रसूल, इसने मेरे ग़ुलाम से काम लिया है, (अतः मुझे इसका बदला मिलना चाहिए)। आप (सल्ल॰) ने कहा, "लाभ का अधिकारी वही है जो हानि का ज़िम्मेदार है।"

(हदीस : अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने-माजा)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि ख़रीदी हुई चीज़ में यदि कोई त्रुटि निकल आए जिससे ख़रीदार को अवगत न कराया गया हो तो ख़रीदार मामले को रद्द कर सकता है। इसे "ख़ियारे-ऐब" कहते हैं। नबी (सल्ल॰) के कथन "लाभ का अधिकारी वही है जो हानि का ज़िम्मेदार है" में एक ऐसा मौलिक सिद्धान्त बयान हुआ है जिससे फ़ुक़हा (इस्लामी क़ानूनविदों) ने सैकड़ों मसलों में शरीअत का आदेश निर्धारित किया है। इस हदीस का आशय यह है कि यदि ख़ुदा न करे ग़ुलाम ख़रीदार के यहाँ मर जाता या किसी दुर्घटना में उसका कोई अंग बेकार हो जाता तो यह हानि ख़रीदार ही सहन करता। इसलिए उन दिनों में ख़रीदार ने ग़ुलाम से जो लाभ उठाया है, वह उसका हक़ था। अतः बदले का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता।

अनियंत्रित अर्थतंत्र की रोकथाम

(1) हज़रत हकीम-बिन-हिज़ाम (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने मुझे इससे रोका कि जो चीज़ मेरे पास मौजूद न हो मैं उसके सौदे का मामला किसी से करूँ। (हदीस : तिरमिज़ी)

व्याख्या : अर्थात् जो चीज़ अपने पास मौजूद न हो और न वह अपने अधिकार में हो उसकी बिक्री सही न होगी। क्योंकि इस प्रकार दोनों पक्षों को दुखद स्थिति का सामना करना पड़ सकता है। सम्भव है वह चीज़ उपलब्ध न हो।

यदि चीज़ तो अपने पास है लेकिन उसपर अपना अधिकार न हो तो मालिक की अनुमति के बिना उसकी बिक्री नहीं करनी चाहिए। यदि बिक्री कर दी तो यह बिक्री मालिक की अनुमति प्राप्त होने पर वैध होगी। यदि वह अनुमति दे देता है तो इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰), इमाम मालिक (रह॰) और इमाम अहमद (रह॰) की दृष्टि में यह बिक्री वैध हो जाएगी। दूसरी स्थिति में यह बिक्री निरस्त ठहरेगी। इमाम शाफ़िई की दृष्टि में यह बिक्री सिरे से सही न होगी चाहे मालिक मंज़ूरी दे या न दे।

(2) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) के समय में लोग सवारों से अनाज ख़रीदते थे, तो नबी (सल्ल॰) किसी को उनके पास भेजते कि वह उन्हें उस जगह अनाज बेचने से रोके जहाँ उसे ख़रीदा है। यहाँ तक कि अनाज स्थानान्तरित होकर वहाँ पहुँच जाए, जहाँ अनाज बिकता है। (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : आशय यह है कि यदि कोई व्यक्ति चल वस्तुओं में से कोई चीज़ ख़रीदता है तो जब तक वह उस चीज़ को अपने अधिकार में न ले ले उसे बेचना वैध न होगा। अधिकार में लेने का अर्थ यह है कि उसे दूसरी जगह स्थानान्तरित कर दिया जाए। इमाम मालिक (रह॰) की दृष्टि में अधिकार से पहले अनाज का बेचना वैध नहीं है, शेष चीज़ों को बेच सकते हैं। इमाम शाफ़िई (रह॰) और इमाम मुहम्मद (रह॰) की दृष्टि में अधिकार से पहले दूसरे के हाथ बेचना वैध नहीं है चाहे वह चल बस्तुओं में से हो जैसे अनाज आदि या अचल अर्थात् भूमि या मकान।

3) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने उस अनाज को बेचने से रोका जिसको ख़रीदा है जब तक कि उसको अपने अधिकार में न ले ले। (हदीस : बुख़ारी)

4) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "तुम सामान लानेवालों से जाकर न मिलो (और उस समय तक उनसे कोई मामला न करो) जब तक वह बाज़ार में पहुँचकर अपना माल न उतारे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मना करने का कारण यह है कि इससे शहरवालों को ानि पहुँचने का भय रहता है। इससे एक बड़ी ख़राबी यह भी पैदा ोती है कि सारा अनाज या माल चालाक लोगों के क़ब्ज़े में आ जाता ; फिर वे अधिक-से-अधिक मूल्यों पर आम उपभोक्ताओं के हाथों बेचते ; और अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। माल अगर बाज़ार में आकर बिके तो वह उचित दर पर बिक सकेगा और आम उपभोक्ता उचित दर पर अपनी ज़रूरतें पूरी कर सकेंगे।

5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "तुम आगे बढ़कर ग़ल्ला आदि लानेवाले क़ाफ़िले से न मिलो। जो जाकर मिला और कुछ सामान ख़रीद लिया फिर माल का मालिक बाज़ार में आया तो उसे अधिकार प्राप्त होगा (कि वह चाहे तो मामले को रद्द कर दे)।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : व्यापारी जो बाहर से माल लाकर बेचता है उसे यह ालूम हो जाए कि ख़रीदार ने स्पष्टतः धोखा दिया है और वास्तविक र की तुलना में उससे सस्ते दामों पर माल ले लिया है तो इस स्थिति ें वह बिक्री को रद्द करके अपना माल वापस ले सकता है।

6) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "ग़ल्ला आदि लानेवाले क़ाफ़िले से माल ख़रीदने

के लिए आगे जाकर न मिलो, और तुममें से कोई व्यक्ति किर्स
के सौदे पर सौदा न करे और (दिखावे का ख़रीदार बनकर सौं
की) क़ीमत बढ़ाने का काम न करो। और कोई नगरवासी किर्स
ग्रामीण का माल अपने पास रखकर बेचने का काम न करे। औ
ऊँटनी और बकरी के थनों में दूध एकत्र न करो। और यदि को
उसे ख़रीद लेता है तो दूहने के बाद अधिकार है चाहे तो उरे
अपने पास रखे चाहे तो वापस कर दे और एक साअ (लगभग
4 किलो) खजूर दे दे।" (हदीस : बुख़ारी, मुसलिम)

व्याख्या : यह एक महत्त्वपूर्ण आदेश है कि कोई व्यक्ति किसी वे
सौदे पर सौदा न करे। उदाहरणार्थ अगर कोई व्यक्ति किसी दुकानदा
से कोई चीज़ ख़रीदे तो दूसरे व्यापारी के लिए यह बात वैध न होगी वि
वह हस्तक्षेप करके ग्राहक से यह कहे कि ख़रीदी हुई चीज़ वापस कर दे
मैं कम क़ीमत पर तुझे यह चीज़ देता हूँ। इसी प्रकार उसके लिए यह
भी वैध नहीं है कि बेचनेवाले से कहे कि यह बिक्री रद्द कर दे, मैं यह
चीज़ इससे अधिक मूल्य पर ख़रीद लूँगा। यह तरीक़ा अत्यन्त स्वार्थपरत
का है। इससे परस्पर शत्रुता और दुश्मनी पैदा होगी और बुराई औ
बिगाड़ पैदा होगा।

हदीस के मूल शब्द हैं, "व ला तनाजशू" नजश का अर्थ है प्रेरित
करना, और धोखा देना। जैसे — दो आदमियों के मध्य क्रय-विक्रय क
मामला हो रहा है, तीसरा आदमी आकर बिकनेवाली चीज़ की प्रशंस
करने लगे या उसकी अधिक क़ीमत लगा दे जब कि उसका उद्देश्य स्वर
माल ख़रीदने का न हो, बल्कि अस्ल ख़रीदार को प्रेरित करना और उरे
धोखा देना हो।

देहात या नगर से दूर रहनेवाला जो सामान अनाज आदि बेचने वे
उद्देश्य से नगर में ले आए तो नगर के किसी व्यक्ति के लिए वैध नर्ह
कि वह उससे यह कहे कि वह सामान मेरे पास रख दे, मैं इसे अपन

पास रोककर आज के बाद अधिक मूल्य पर जब इसके दाम चढ़ जाएँगे तब बेचूँगा। इसमें कई बुराइयाँ हैं। उदाहरणस्वरूप इससे सामानों की कृत्रिम रूप से कमी हो जाएगी। आम ज़रूरतमन्दों को परेशानी का सामना करना पड़ेगा। चीज़ें मँहगी हो जाएँगी। इसके विपरीत अगर बाहर से माल लानेवालों का माल शीघ्र बिक जाए और हाथों हाथ उन्हें अपने माल की क़ीमत मिल जाए तो वे बाज़ार में दूसरा माल ला सकेंगे। उनके व्यापार में उन्नति होगी और लोग भी परेशानी से बच सकेंगे।

इस हदीस में नबी (सल्ल॰) यह आदेश भी देते हैं कि जिस जानवर को बेचना है उसका दो-एक वक़्त दूध दूहना बन्द न करो कि थन दूध से ख़ूब भर जाए और ग्राहक समझे कि यह जानवर बहुत दूध देनेवाला है और अधिक क़ीमत पर वह उसे ख़रीदने के लिए तैयार हो जाए।

अब यदि ख़रीदार को धोखा दिया गया है तो वह इस सौदे को रद्द कर सकता है। इस रूप में वह एक साअ खजूर जानवर के मालिक को दे दे। मुस्लिम की एक रिवायत में है : यदि उसको वापस करे तो उसके साथ एक साअ अनाज दे दे, लेकिन गेहूँ न दे। इससे मालूम हुआ कि खजूर के बदले गेहूँ के अतिरिक्त कोई ग़ल्ला भी एक साअ दिया जा सकता है। यह आदेश इसलिए है कि जानवर के मालिक का दिल न टूटे और मामला भली प्रकार ख़त्म हो जाए।

(7) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने एक सौदे में दूसरे सौद के मामले को अवैध ठहराया है। (हदीस : मालिक, तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : अर्थात् हर सौदा अलग-अलग होना चाहिए। सन्दिग्ध मामला दुखद सिद्ध होता है। इसमें दूसरे का माल अवैध रूप से खाने की सम्भावना भी रहती है। एक सौदे में दो सौदे के कई रूप हो सकते हैं। उदाहरणस्वरूप एक व्यक्ति कहता है कि चीज़ अगर नक़द लेते हो

तो सौ रुपये में दे दूँगा, लेकिन उधार लेते हो तो एक सौ पच्चीस रुपये देने होंगे। इसी पर यह सौदा तय हो जाए और यह निश्चित न करें कि कौन-सा सौदा पक्का हुआ, नक़द या उधार।

एक सौदे में दो सौदे (डबल सौदा) का एक रूप यह भी है कि एक व्यक्ति दूसरे से कहे कि मैं तेरे हाथ अपना यह मकान बेचता हूँ शर्त यह है कि तू अपनी अमुक चीज़ मेरे हाथ बेच दे।

इसका एक रूप यह भी है कि एक व्यक्ति उदहरणार्थ 10 दीनार के बदले दो विविध प्रकार की चीज़ों में से एक बेचता है और सौदे का मामला हो जाता है जबकि इसका निश्चय नहीं किया गया कि ख़रीदार ने उन दो में से कौन-सी चीज़ ख़रीदी है।

(8) हज़रत अम्र-बिन-शुऐब अपने पिता से और वे अपने पिता से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "ऋण और सौदा एक-दूसरे से सम्बद्ध करना वैध नहीं। सौदे में दो शर्तें करनी भी वैध नहीं और उस चीज़ से लाभ उठाना भी वैध नहीं जो अभी अपने अधिकार में न आई हो, और उस चीज़ का बेचना वैध नहीं है जो तुम्हारे पास नहीं है।"

(हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : क़र्ज़ और क्रय-विक्रय दो अलग-अलग मामले हैं। उनको एक दूसरे के साथ जोड़ना सही न होगा। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति किसी के हाथ कोई चीज़ इस शर्त के साथ बेचता है कि तुम्हें इतने रुपये मुझे कर्ज़ देने होंगे। इसी प्रकार यह भी जायज़ नहीं है कि कोई व्यक्ति किसी को कुछ रुपये कर्ज़ दे और इसके साथ अपनी कोई चीज़ क़र्ज़दार के हाथ वास्तविक मूल्य से अधिक पर बेचे। क़र्ज़दार यह अधिक मूल्य केवल इसलिए अदा करेगा कि वह बेचनेवाले का क़र्ज़दार है। वास्तव में यह सूदख़ोरों का निकाला हुआ एक बहाना है। इससे बचना ज़रूरी है।

दो शर्तों की बात संयोगतः मालूम होती है। क्रय-विक्रय में एक शर्त भी दुरुस्त नहीं है। उदाहरणार्थ कोई लकड़ी ख़रीद रहा है और वह बेचनेवाले व्यक्ति से यह कहे कि इसे काटकर और उठाकर अमुक स्थान पर पहुँचाना होगा। इसी प्रकार ऐसी शर्त लगानी जिससे क्रय-विक्रय का उद्देश्य ही समाप्त हो जाए, वैध नहीं। उदाहरणस्वरूप बेचनेवाला ख़रीदार से कहे कि तुम इसको आगे मत बेचना, या इसे अमुक व्यक्ति को दान नहीं करोगे, या वह यह शर्त लगाए कि मैं यह चीज़ तुम्हारे हाथ बेच रहा हूँ लेकिन मेरी एक शर्त है कि तुम अपनी अमुक चीज़ मेरे हाथ बेच दो या मुझे अपनी रक़म क़र्ज़ के तौर पर दे दो।

उदाहरणार्थ एक व्यक्ति ने कोई चीज़ ख़रीदी मगर वह चीज़ अभी बेचनेवाले व्यक्ति ही के पास है। इस अवधि में बेचनेवाला उस चीज़ से कोई लाभ उठाता है तो ख़रीदार अपनी ओर इस लाभ को लौटाने की माँग नहीं कर सकता। क्योंकि यदि वह चीज़ किसी प्रकार नष्ट हो जाती तो घाटा बेचनेवाले ही को सहन करना पड़ता। इसलिए उस चीज़ से अगर कोई लाभ प्राप्त हो तो वह भी बेचनेवाले ही को मिलना चाहिए। ख़रीदार का उसपर कोई हक़ न होगा।

(9) हज़रत मअमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिस किसी ने (मँहगा बेचने के उद्देश्य से) अनाज रोका, वह गुनहगार है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मँहगा बेचने के इरादे से किसी ऐसी चीज़ को रोक रखना जिससे मनुष्यों या पशुओं की ख़ुराक की आवश्यकता पूरी होती हो और बाज़ार में उस चीज़ की कमी पैदा कर देना 'एहतिकार' (जख़ीरा करना) है। उदाहरणस्वरूप लोगों को ग़ल्ले की तीव्र आवश्यकता हो और कोई व्यक्ति ग़ल्ला ख़रीदकर इस इरादे से अपने पास रोके रखे, बेचे नहीं कि बज़ार में इस चीज़ का अभाव हो जाए और वह उसे अपने मनमाने दाम पर बेचेगा, यह एहतिकार है। शरीअत ने इसे हराम ठहराया है।

सस्ताई के समय में अगर कोई ग़ल्ला ख़रीदकर रख छोड़ता है या अपनी ज़मीन से पैदा होनेवाले ग़ल्ले को जमा रखता है कि उसे अनुकूल समय पर बेचेगा जब उसे मुनासिब दाम मिलेंगे तो इसे एहतिकार नहीं कहेंगे।

(10) हज़रत अबू-उमामा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिसने अनाज को चालीस दिन तक रोके रखा, फिर वह उसे ख़ैरात भी कर दे तो वह उसके लिए प्रायश्चित नहीं होगा।" (हदीस : रज़ीन)

व्याख्या : लोग व्याकुल हैं और वह चालीस दिन तक अधिक से अधिक क़ीमत पर बेचने के इरादे से अनाज को रोके रखता है। अनाज न तो बाज़ार में लाता है और न लोगों को उससे खाने की ज़रूरत पूरी करने देता है तो अल्लाह की निगाह में वह इतना बड़ा अपराधी होता है कि यदि वह अपने पूरे अनाज को ख़ुदा की राह में ख़ैरात (दान) भी कर दे तो उससे उसकी क्षतिपूर्त सम्भव नहीं।

(11) वासिला-बिन-असक़ा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना कि "जो व्यक्ति किसी त्रुटिपूर्ण चीज़ को बेचे और उसकी त्रुटि से ख़रीदार को अवगत न कराए तो वह सदैव अल्लाह के प्रकोप में रहता है।" या आपने यह कहा, "फ़रिश्ते उसपर हमेशा लानत भेजते रहते हैं।"
(हदीस : इब्ने-माजा)

व्याख्या : ऐबदार चीज़ देकर ख़रीदार को उसने घाटे में डाल दिया। इसलिए वह भी स्थायी रूप से ईश्वरीय प्रकोप का पात्र हो गया या वह इसका पात्र हो गया कि ख़ुदा के फ़रिश्ते अनवरत उसपर लानत भेजते रहें।

(12) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने क्रय-विक्रय में मुलामसा और मुनाबज़ा से रोका है। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : शरीअत ने अपने आदेशों में इसका पूरा ध्यान रखा है कि किसी व्यक्ति को मामलों में धोखा न हो। मुलामसा और मुनाबज़ा से इसी लिए रोका गया है कि इसमें धोखा खाने की सम्भावना रहती है जिसके कारण दोनों पक्षों में से किसी को हानि पहुँच सकती है। मुलामसा यह है कि एक व्यक्ति दूसरे के कपड़े को हाथ लगाए लेकिन उलट-पलटकर ठीक ढंग से न देखे और मामला कर ले। मुनाबज़ा यह है कि दोनों पक्ष अपना-अपना कपड़ा एक-दूसरे की ओर फेंकें और फिर यही उनके बीच सौदा ठहरे, जबकि आवश्यक था कि वे चीज़ को ध्यानपूर्वक देखते और जाँच-परख में असावधानी से काम न लेते।

(13) हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह से रिवायत है कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना जब कि आप (सल्ल॰) मक्का में थे कि "निस्सन्देह अल्लाह और उसके रसूल ने शराब, मुर्दार, सूअर और मूर्तियों के क्रय-विक्रय को अवैध ठहराया है।

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि हराम और गन्दी अपवित्र चीज़ों का व्यापार वैध नहीं है। ऐसी चीज़ें जो व्यक्ति और समाज के लिए घातक हों उनको आय का साधन बनाना शरीअत की दृष्टि से कैसे ठीक हो सकता है! शरीअत तो इसलिए उतरी है कि शील-स्वभाव और सज्जनता तथा पवित्रता की सुरक्षा हो सके। इसी लिए इस्लाम ने वेश्यावृत्ति और उसकी आय को अवैध ठहराया है।

साझा व्यापार

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) के वास्ते से रिवायत करते हैं कि प्रतापवान अल्लाह कहता है, "मैं दो साझेदारों के मध्य तीसरा हूँ जब तक उनमें से कोई अपने दूसरे साझेदार के साथ

विश्वासघात नहीं करता। और जब वह विश्वासघात करता है तो मैं उनके बीच से हट जाता हूँ।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : रज़ीन (रह०) ने इस रिवायत के अन्त में ये शब्द भी उल्लिखित किए है, "और फिर शैतान उनके बीच आ जाता है।"

इस हदीस से व्यापार में साझेदारी के वैध होने का प्रमाण मिलता है। साझेदारी के कारण कारोबार में उन्नति की सम्भावनाएँ पैदा होती हैं। लेकिन शर्त यह है कि साझेदार परस्पर एक-दूसरे के साथ विश्वासघात और बेईमानी से काम न लें। जब तक साझेदार ईमानदारी और अमानतदारी पर क़ायम रहते हैं, अल्लाह का साथ उन्हें प्राप्त रहता है। अल्लाह उनके कारोबार में बरकत देता है और कारोबार को नुक़सान से बचाता है। लेकिन जब साझेदार बेईमानी से काम लेने लगते हैं तो फिर अल्लाह की जगह शैतान बीच में आ जाता है और वह अपना अधिकार जमा लेता है, जिसका परिणाम विनाश और बरबादी के सिवाय कुछ नहीं हो सकता।

जब दो या अधिक व्यक्ति अपना धन इकट्ठा करके उससे संयुक्त रूप में व्यापार करें या उसे किसी उद्योग आदि में लगाएँ तो उसे साझेदारी का मामला कहते हैं। इसके कई रूप हो सकते हैं। उदाहरणार्थ अधिक व्यक्ति संयुक्त पूँजी से व्यापार करते हैं कि मूलधन के अनुपात से हर एक को लाभ मिलेगा और घाटा भी उसी अनुपात से साझेदारों में विभाजित होगा। प्रत्येक को उसमें हस्तक्षेप का अधिकार प्राप्त होगा। इसे पारिभाषिक शब्दों में "शिरकते-इनान" कहते हैं।

दो या दो से अधिक व्यवसायी इस शर्त पर साझेदारी में काम करें कि जो मज़दूरी भी प्राप्त होगी वह निर्धारित अनुपात से आपस में बाँट लेंगे। इसे "शिरकते-आमाल" या "शिरकते-ज़ाए" या "शिरकते-तक़ब्बुल" कहते हैं।

शिरकत (साझेदारी) का एक और रूप यह है कि दो या अधिक व्यक्ति व्यापारियों से माल लाकर उसे बेचते हैं और वे लाभ परस्पर बराबर-बराबर बाँट लेते हैं और अगर नुक़सान होता है तो उसमें सब बराबर के शरीक होते हैं। इसे "शिरकते-वुजूह" कहते हैं।

एक साझेदारी "शिरकते-मुफ़ाविज़ा" भी है। इसमें साझेदार यह तय कर लेते हैं कि वे माल में व्यय और मुफ़ाविज़ा में शरीक रहेंगे। 'शिरकते-मुफ़ाविज़ा' में साझेदार एक-दूसरे के वकील और कफ़ील होते हैं। इसमें हिस्सेदार दूसरे को आर्थिक और शारीरिक साझे के सारे अधिकार सौंप देता है। क्रय-विक्रय और मुज़ारिबा के अधिकारों का वाहक प्रत्येक साझेदार होता है। लाभ और हानि की जो दर वे तय कर लें उसी के अनुकूल लागू होगा।

इस प्रकार साझेदारी के मामले वैध हैं। शर्त यह है कि शरीअत के सिद्धान्त और नियमों की उपेक्षा किसी पहलू से न होने पाए। इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी फ़िक़ह (इस्लामी धर्मविधान) की किताबों से प्राप्त की जा सकती है।

मुज़ारबत

(1) हज़रत सुहैब (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "तीन चीज़ें ऐसी हैं जिनमें बरकत होती है। एक निर्धारित समय के वादे पर माल बेचना, दूसरी मुज़ारबत और तीसरी गेहूँ में जौ मिलाना घर के ख़र्च के लिए, बेचने के लिए नहीं।" (हदीस : इब्ने-माजा)

व्याख्या : अर्थात ख़रीदार को क़ीमत की अदायगी के लिए मुहलत देना। इससे कारोबार में आसानी होती है और कारोबार उन्नति करता है। और किसी के लिए आसानी और सहूलत का ख़याल रखना अपने आप में बड़ी नेकी है।

मूल में शब्द 'मुक़ारज़ा' आया है। इससे तात्पर्य मुज़ारबत है। शब्दकोश में 'ज़रब' का अर्थ होता है मारना और चलना-फिरना। परिभाषा में इससे अभिप्रेत आजीविका की तलाश में हाथ-पैर मारना और दौड़-धूप करना है। क़ुरआन में भी है, "और कुछ दूसरे लोग अल्लाह का अनुग्रह (आजीविका) तलाश करते हुए धरती में चलते-फिरते हैं।" (क़ुरआन, 73:20)

नबी (सल्ल॰) ने स्वयं हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) के रुपये से इस रूप में व्यापार किया है। आम सहाबा भी लोगों को रुपये देकर या उनसे रुपये लेकर व्यापार करते रहे हैं। हज़रत उसमान ग़नी (रज़ि॰) ने मुज़ारबत के आधार पर व्यापार किया है।

कारोबार में अगर घाटा हो जाता है तो यह हानि धन के मालिक या जिस पक्ष की रक़म ख़र्च होती है उसे सहन करनी होगी। काम करनेवाले के लिए उसकी मेहनत और परिश्रम का घाटा कम नहीं है इसलिए उसे और अधिक घाटे में शरीक नहीं किया जाएगा।

वकालत

(1) हज़रत हकीम-बिन-हिज़ाम (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने उन्हें एक दीनार देकर भेजा कि वे आप (सल्ल॰) के लिए क़ुरबानी का जानवर ख़रीद लाएँ। अतएव उन्होंने उससे एक मेंढा (या दुंबा) ख़रीदा और उसे दो दीनार में बेच दिया। फिर वे लौटे और क़ुरबानी का जानवर उन्होंने एक दीनार में ख़रीद लिया और आकर आप (सल्ल॰) की सेवा में क़ुरबानी के जानवर के साथ वह दीनार भी पेश कर दिया जो दूसरा जानवर (अर्थात् पहला ख़रीदा हुआ जानवर) बेचकर बचाया था। आप (सल्ल॰) ने वह दीनार सदक़ा कर दिया और हकीम-बिन-हिज़ाम (रज़ि॰) के लिए दुआ की कि अल्लाह उनके व्यापार में बरकत दे।
(हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद)

व्याख्या : हज़रत हकीम-बिन-हिज़ाम (रज़ि॰) ने क्रय-विक्रय का मामला नबी (सल्ल॰) की ओर से अर्थात् आपके वकील की हैसियत से किया था। इससे मालूम हुआ कि शरीअत में वकालत का विधान है। वकालत का मतलब है अपने अधिकारों और माल के लेन-देन में किसी को अपना प्रतिनिधि बनाना। जो मामला या काम आदमी ख़ुद कर सकता है, जिसमें उसके लिए कोई बुराई न हो, उसमें वह किसी दूसरे को अपना वकील भी बना सकता है। व्यक्तिगत अधिकारों के अतिरिक्त अल्लाह के हक़ों में भी, जिनमें प्रतिनिधित्व हो सकता है, वकालत दुरुस्त है। उदाहरणार्थ ज़कात का वितरण या उस व्यक्ति की ओर से हज या उमरा अदा करना जिसका देहान्त हो गया हो, या वह अपंग और लाचार हो। जिन इबादतों में कोई आदमी किसी दूसरे का नायब (प्रतिनिधि) नहीं बन सकता, उनमें किसी को वकील भी नियुक्त नहीं किया जा सकता। जैसे नमाज़ और रोज़ा में किसी को वकील नियुक्त नहीं कर सकते।

(2) हज़रत उरवा-बिन-अबिल-जाद बारिक़ी से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने उन्हें एक दीनार दिया कि वे आपके लिए एक बकरी ख़रीदकर लाएँ। उन्होंने उससे दो बकरियाँ ख़रीद लीं। फिर उनमें से एक बकरी को एक दीनार में बेच दिया और नबी (सल्ल॰) को (वापस आकर) एक बकरी भी दी और एक दीनार भी। (उनकी इस बुद्धिमानी पर) नबी (सल्ल॰) ने उनके क्रय-विक्रय के मामलों में बरकत की दुआ की। इसका प्रभाव यह हुआ कि वे यदि मिट्टी भी ख़रीद लेते तो उसमें भी उनको लाभ हो जाता। (हदीस : बुख़ारी)

(3) हज़रत जाबिर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने ख़ैबर जाने का इरादा किया तो नबी (सल्ल॰) की सेवा में उपस्थित हुआ। मैंने आप (सल्ल॰) को सलाम किया और कहा कि मैंने ख़ैबर जाने का इरादा किया है। आप (सल्ल॰) ने कहा, "जब तुम वहाँ मेरे वकील

से मिलो तो पन्द्रह वस्क़ ख़जूर उससे ले लेना। अगर वह तुमसे कोई निशानी माँगे तो अपना हाथ उसके हँस (कण्ठ) पर रख देना।''
(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : कुछ रिवायतों में 'अला तरक़ूतिही' की जगह 'अला तर क़ूतिक' आया है, अर्थात् निशानी माँगने पर अपना हाथ अपनी हँसली पर रख देना।

इस हदीस से मालूम हुआ कि कोई किसी व्यक्ति को किसी स्थान पर अपना वकील नियुक्त कर सकता है।

जिस व्यक्ति को नबी (सल्ल॰) ने ख़ैबर में अपना वकील नियुक्त किया था, उसे आप (सल्ल॰) ने यह हिदायत दे रखी होगी कि यदि कोई व्यक्ति मेरी ओर से तुमसे कुछ माँगे तो उससे उसका प्रमाण माँगना कि वह वास्तव में मेरा भेजा हुआ है। यदि वह प्रमाण स्वरूप अपना हाथ हँस (कण्ठ) पर रख दे तो समझ लेना कि वह मेरा भेजा हुआ है। आप (सल्ल॰) ने हज़रत जाबिर (रज़ि॰) को निशानी बता दी ताकि वकील उनको 15 वस्क़ खजूरें दे दे।

नीलाम की विधि से क्रय-विक्रय

(1) हज़रत अनस (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने (बिछाने का) एक टाट और एक प्याला इस तरह बेचा कि अपने कहा, ''यह टाट और प्याला कौन ख़रीदेगा?'' एक व्यक्ति ने कहा कि मैं ये दोनों चीज़ें एक दिरहम में ले सकता हूँ। आप (सल्ल॰) ने कहा, ''कौन एक दिरहम से ज़्यादा दे सकता है?'' एक व्यक्ति ने दो दिरहम आपको पेश कर दिए तो आप (सल्ल॰) ने दोनों चीज़ें उसके हाथ बेच दीं।

(हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : इससे मालूम हुआ कि नीलाम के तरीक़े पर भी क्रय-विक्रय कर सकते हैं। नीलाम की जिस घटना का उल्लेख इस हदीस में किया गया है उसका विवरण हदीस की पुस्तक 'सुनन अबू-दाऊद' और 'सुनन इब्ने-माजा' में मिलता है। एक निर्धन अनसारी ने नबी (सल्ल॰) की सेवा में उपस्थित होकर आपसे सहायता की याचना की। आप (सल्ल॰) ने उनसे पूछा कि तुम्हारे घर में कुछ सामान है? उन्होंने बताया कि एक टाट और एक प्याला है। आप (सल्ल॰) के आदेश से उन्होंने ये दोनों ही चीज़ें सेवा में उपस्थित कर दीं। आप (सल्ल॰) ने उनको नीलाम कर दिया। नीलाम करते समय आप (सल्ल॰) ने "कौन इससे अधिक क़ीमत देगा?" दो-तीन बार कहा तो एक व्यक्ति ने दो दिरहम आप (सल्ल॰) को दिए। आप (सल्ल॰) ने अनसारी सहाबी से कहा कि एक दिरहम से तो खाने-पीने का कुछ सामान घरवालों को दे दो और दूसरे दिरहम से एक कुल्हाड़ी ख़रीदकर ले आओ। जब वह कुल्हाड़ी लेकर आए तो नबी ने अपने मुबारक हाथ से उसमें लकड़ी का दस्ता लगाया और कहा कि यह कुल्हाड़ी लेकर जंगल जाओ और लकड़ियाँ लाकर बेचो। पन्द्रह दिन से पहले मेरे पास न आना। उन्होंने ऐसा ही किया। यहाँ तक कि उस कमाई के परिणाम स्वरूप उनके पास दस दिरहम जमा हो गए। उन्होंने अपने घरवालों के लिए खाने-पीने का सामान और कुछ कपड़ा आदि ख़रीदा। इसके बाद नबी (सल्ल॰) की सेवा में उपस्थित हुए। आप (सल्ल॰) ने कहा कि यह मेहनत करके गुज़ारा करना तुम्हारे लिए इससे बेहतर है कि लोगों के सामने माँगने के लिए हाथ फैलाते फिरो और क़ियामत में तुम्हारे चेहरे पर इसका दाग़ और निशान हो।

कृषि

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो कोई मोमिन व्यक्ति पेड़ या पौधा लगाए

या खेती करे, फिर उसमें पक्षी खाए या इनसान या कोई जानवर खाए तो यह उस व्यक्ति के लिए अनिवार्यतः सदक़ा (दान) होगा।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् खेती करने और पेड़ लगाने से न केवल यह कि आदमी खेती की पैदावार और पेड़ों के फलों से लाभ उठाता और अपनी भोजन सम्बन्धी आवश्यकताएँ पूरी करता है, बल्कि वह अपनी पैदावार का कुछ अंश भलाई के काम में ख़र्च क़रके नेकियाँ भी कमा सकता है। यही नहीं, बल्कि चरनेवाले जानवर, पक्षी और इनसान उसकी पैदावार और फलों में से कुछ खा लेते हैं और इस प्रकार देखने में उसे जो हानि पहुँचती है उसका भी अल्लाह के यहाँ उसे बदला और पुण्य मिलेगा। वह घाटे में नहीं रहेगा।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने ख़ैबर की भूमि वहाँ के यहूदियों ही को सौंप दी कि वे उसमें काम करें और उसमें खेती करें। जो कुछ उसमें पैदा होगा उसका आधा हिस्सा उनका होगा। (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : सहीह मुस्लिम की रिवायत में इसका स्पष्टीकरण भी मिलता है कि खेती करने योग्य भूमि के अलावा ख़ैबर के उद्यान भी अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने वहाँ के यहूदियों को इस शर्त पर सौंप दिए थे कि पैदावार के आधे हिस्से के वे अधिकारी होंगे। मानो यह मामला बटाई का हुआ।

(3) हज़रत अम्र (बिन-दीनार ताबिई) बयान करते हैं कि मैंने ताऊस (ताबिई) से कहा कि आप बटाई पर ज़मीन उठाना छोड़ देते तो अच्छा होता, क्योंकि लोगों का ख़याल है कि नबी (सल्ल॰) ने इससे रोका है। उन्होंने कहा कि ऐ अम्र! मैं लोगों को खेती के लिए ज़मीन भी देता हूँ और इसके अतिरिक्त भी उनकी सहायता करता हूँ। मुझे लोगों में सबसे बड़े आलिम (विद्वान) अर्थात्

अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०) ने बताया था कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इससे (ज़मीन को बटाई या लगान पर उठाने से) रोका नहीं था। अलबत्ता यह कहा था कि "तुममें से कोई अपनी भूमि अपने भाई को खेती के लिए (बिना बदले के) दे दे तो यह उसके लिए इससे बेहतर है कि वह उसपर कोई निश्चित लगान वुसूल करे।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इस रिवायत से मालूम होता है कि सहाबा और ताबिईन के ज़माने में कुछ लोग यह विचार रखते थे कि अपनी ज़मीन को बटाई पर देना वैध नहीं है। किन्तु यह रिवायत बताती है कि नबी (सल्ल०) ने इसे अवैध नहीं ठहराया बल्कि आपका आशय यह था कि अपने किसी भाई को यदि बिना किसी बदले के ज़मीन दे दी जाए तो अच्छा है। हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) के बयान और स्पष्टीकरण की रौशनी में हज़रत ताऊस (रह०) अपनी ज़मीन बटाई पर उठाते थे और खेती के ख़र्चों में वे किसानों की सहायता भी कर दिया करते थे। अलबत्ता अनिश्चित चीज़ पर मुज़ारिअत (बटाई की खेती) से आपने रोका है जैसा कि राफ़ेअ-बिन (रज़ि०) ख़दीज की हदीस है, "हम अनसार के पास खेत ज़्यादा थे और हम ज़मीन किराये पर दे दिया करते थे। इस तरह कि इस प्लाट की आमदनी हमारी होगी और अमुक भू-भाग की आमदनी कृषक की होगी। फिर कभी-कभी उस भू-भाग में आमदनी होती और दूसरे में न होती। अतः नबी (सल्ल०) ने हमें इससे रोक दिया।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

फलों का क्रय-विक्रय

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फलों के सौदे से रोका है, जब तक कि वे तैयार न हो जाएँ। आप (सल्ल०) ने बेचनेवाले को भी रोका और ख़रीदार को भी। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : जब तक फल तैयार न हो जाए न उन्हें बेचनेवाले को बेचना चाहिए और न ही ख़रीदार को ख़रीदना चाहिए। सहीह मुस्लिम की एक रिवायत के शब्द ये हैं, "नबी (सल्ल॰) ने खजूर की फ़स्ल के सौदे से रोका जब तक कि उनमें लाली न आ जाए और खेत की बालों के सौदे से भी रोका जब तक कि उनपर सफ़ेदी न आ जाए और तबाही का ख़तरा बाक़ी न रहे।"

अरब में जहाँ कहीं खजूर, अंगूर आदि के फलों की पैदावार होती थी, वहाँ के लोग फल तैयार होने से पहले ही, जब कि वे पेड़ ही पर होते, बेच डालते। इसी प्रकार खेत में अनाज भी तैयारी से पहले बेच दिया जाता था। नबी (सल्ल॰) ने इससे रोका, क्योंकि इस तरह बेचने में इस बात का भय रहता है कि खेती या फलों की फ़स्ल पर अचानक कोई आफ़त आ जाए, उदाहरणार्थ आँधी या ओला पड़ने से फल या अनाज नष्ट हो जाए या उनको कोई रोग आदि लग जाए तो ख़रीदार को भरी क्षति उठानी पड़ेगी। इस स्थिति में क़ीमत के अदा करने में विवाद उत्पन्न हो सकता है। नबी (सल्ल॰) ने बिगाड़ों और ख़तरों के आधार पर इस प्रकार के सौदे को रोक दिया।

(2) हज़रत अनस (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फलों की बिक्री से रोका जब तक कि उनपर रौनक़ न आ जाए। कहा गया कि रौनक़ आ जाने से अभिप्राय क्या है? कहा, "मतलब यह है कि सुर्ख़ी आ जाए।" फिर आपने कहा, "बताओ, यदि अल्लाह फल न दे (अर्थात् किसी कारण से फल तैयार होने से पहले ही नष्ट हो जाएँ) तो तुममें से कोई किस चीज़ के बदले में अपने भाई से माल वुसूल करेगा?"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मतलब यह है कि अगर फलों को ऐसी क्षति पहुँचती है कि ख़रीदार कुछ न पा सका तो फिर तुम उससे किस चीज़ की क़ीमत

वुसूल करोगे? इसलिए बाग़ को उस समय बेचना चाहिए जब फल तैयार हो जाएँ और छति पहुँचने की आशंका बाक़ी न रहे। शरीअत के समक्ष वास्तव में हर पक्ष के हित की सुरक्षा है।

(3) हज़रत जाबिर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने (बाग़ों को) कुछ वर्षों के लिए बेचने से रोका और आप (सल्ल॰) ने आकस्मिक आपदा (से पहुँचनेवाली हानि) में छूट देने का आदेश दिया। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् कुछ वर्षों के लिए बाग़ की फ़स्ल का ठेका देना अवैध होगा। किसको मालूम कि इन कुछ वर्षों में फलों की फ़स्ल कैसी रहेगी। इस आशंका से कौन इनकार कर सकता है कि इस अवधि में फ़स्ल पर कोई आकस्मिक आपदा भी आ सकती है। ऐसी स्थिति में स्पष्ट है कि ख़रीदार को भारी हानि का सामना करना पड़ेगा और क़ीमत के अदा करने में कठिनाई पेश आ सकती है जिसके कारण मामला विवाद का रूप धारण कर सकता है। इसलिए इस प्रकार का ठेका देना उचित न होगा।

यदि बाग़ की फ़स्ल बेचने के बाद फलों पर कोई आफ़त आ जाती है तो बाग़ के मालिक का कर्त्तव्य है कि वह क्षति का अनुमान करके निर्धारित क़ीमत में छूट दे और यदि पूरी क़ीमत ले चुका है तो उसमें से वह उचित रक़म अपने पास रखे, शेष क़ीमत ख़रीदार को लौटा दे। व्यापार और कारोबार का मतलब यह कदापि नहीं होता कि लोग एक-दूसरे के साथ त्याग और उत्सर्ग की नीति को एकदम भूल जाएँ।

बंजर भूमि को आबाद करना

(1) हज़रत सईद-बिन-ज़ैद से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा "जो व्यक्ति मृत और बंजर भूमि को ज़िन्दा करे वह उसी की है और ज़ालिम की रग का कोई हक़ नहीं है।"
(हदीस : अहमद, तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, मालिक)

व्याख्या : बुख़ारी की एक रिवायत में है, "जो व्यक्ति ऐसी ज़मीन को आबाद करता है जो किसी की मिल्कियत में नहीं है वह उसका अधिक हक़दार है।" मतलब यह है कि यदि कोई व्यक्ति अपनी मेहनत और श्रम से किसी बंजर ज़मीन को खेती के योग्य बनाता है तो वह भूमि उस व्यक्ति की हो जाएगी, शर्त यह है कि वह पहले से किसी की मिल्कियत में न हो और जनसामान्य का कोई हित और ज़रूरत उससे सम्बद्ध न हो। उदाहरणार्थ लोगों के पशु वहाँ बैठते हों। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह०) की दृष्टि में उस ज़मीन के मालिक होने के लिए एक शर्त यह भी है कि तत्कालीन शासक की अनुमति प्राप्त हो। शासक की अनुमति के बाद ही वह उस ज़मीन का मालिक ठहरेगा। अगर किसी की आबाद की हुई ज़मीन में पानी का स्रोत निकल आया तो उसे इसका अधिकार है कि पहले अपनी ज़मीन की सिंचाई करे, फिर उससे दूसरे लोग लाभ उठाएँगे।

यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे की आबाद की हुई भूमि में पेड़ लगाए या खेती करे तो इससे वह उस ज़मीन का मालिक नहीं बन जाएगा।

(2) हज़रत हसन (बसरी) हज़रत समुरा (रज़ि०) से और वे नबी (सल्ल०) से रिवायत करते हैं कि आप (सल्ल०) ने कहा, "जो व्यक्ति किसी ग़ैर-आबाद ज़मीन पर दीवार खड़ी करके उसे घेर ले, उस ज़मीन का वही मालिक है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : ग़ैर-आबाद ज़मीन को अपनी मिल्कियत में लेने के लिए आवश्यक है कि उसे जीवित अर्थात् आबाद किया जाए। आबाद करने से अभिप्रेत यह है कि उसमें खेती की जाए या पेड़ लगाया जाए। पानी के लिए कुएँ खोदे जाएँ। इस हदीस में है कि अगर किसी व्यक्ति ने ग़ैर-आबाद ज़मीन पर दीवार खींच दी तो वह ज़मीन उसकी हो जाएगी। उसका हक़ दूसरों से बढ़कर होगा। दीवार खींचने का अधिक सम्भावित अर्थ यह है कि यह दीवार रहने के लिए खींची गई हो।

सार्वजनिक संसाधन

(1) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "तीन चीज़ें अर्थात् पानी, घास और आग ऐसी हैं जिनमें सारे ही मुसलमान भागीदार हैं।"

(हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : कुछ चीज़ें अल्लाह ने ऐसी पैदा की हैं जिनको सबके लिए आम रखा है। उदाहरणार्थ हवा, प्रकाश, पानी आदि। इस हदीस में जिन तीन नेमतों का ज़िक्र किया गया है, उससे हर व्यक्ति को लाभ उठाने का हक़ पहुँचता है। उनमें कोई चीज़ किसी की व्यक्तिगत मिल्कियत नहीं और न उनमें किसी को कोई विशिष्टता प्राप्त है। पानी से अभिप्रेत नदी, झील, तालाब और कुएँ का पानी है। कुआँ खुदवाने या हैण्डपम्प आदि लगवाने के लिए यह उचित नहीं है कि वह दूसरे लोगों के लिए पानी इस्तेमाल करने पर पाबन्दी लगा दे। अगर किसी की आबाद की हुई ज़मीन में पानी का स्रोत प्रवाहित हो जाता है तो वह इसका हक़ रखता है कि पहले अपनी भूमि की सिंचाई करे फिर उसके बाद अतिरिक्त पानी से दूसरे लोग लाभ उठाएँ। दूसरों को इससे लाभ उठाने से रोकना सही न होगा।

घास से तात्पर्य वह घास है जो जंगल में प्राकृतिक रूप से उगी हुई हो। उससे सभी लाभ उठाएँगे।

आग लेने से किसी को रोकना अत्यन्त कृपणता की बात है। कुछ धर्म ज्ञाताओं की दृष्टि में चक़माक़ पत्थर के लेने से भी रोकना सही न होगा, शर्त यह है कि वह पड़ी हुई भूमि में पाया जाता हो, जो किसी की मिल्कियत में न हो। चक़माक़ वह पत्थर है जिसके टकराने से आग निकलती है।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "अपनी आवश्यकता से अधिक पानी को न बेचा जाए कि उसके द्वारा घास बेची जाए।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : पानी के आस-पास साधारणतया घास पाई जाती है। लोगों के जानवर उसमें चरेंगे और घास चरने के बाद वे पानी भी अनिवार्यतः पिएँगे। अब यदि पानी का मालिक क़ीमत लिए बिना पानी पीने नहीं देता तो जिन लोगों के जानवर घास चरेंगे वे पानी ख़रीदने पर मजबूर होंगे। इस प्रकार पानी की क़ीमत लेनी वास्तव में घास की क़ीमत लेनी हुई, जो वैध नहीं है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि यह प्रतिबन्ध हराम के दर्जे में नहीं है, किन्तु आत्मा की पवित्रता की अपेक्षा यह है कि उसकी क़ीमत न ली जाए।

खनिज पदार्थ

(1) हज़रत अबयज़-बिन-हम्माल मारिबी (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की सेवा में उपस्थित होकर नमक की वह खान (खदान) माँगी जो मारिब में थी। आप (सल्ल॰) ने वह खान उन्हें जागीर में दे दी। जब वे (अबयज़) वापस हुए तो एक व्यक्ति (अर्थात् अक़रा-बिन-हाबिस तमीमी रज़ि॰) ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! आपने तो उनको बिलकुल तैयार माल दे दिया है। रावी (उल्लेखकर्ता) का बयान है कि फिर आप (सल्ल॰) ने वह खान उनसे वापस ले ली। रावी का बयान है कि उस व्यक्ति (हज़रत अक़रा) ने आप (सल्ल॰) से पूछा कि पीलू के पेड़ों की कौन-सी ज़मीन घेरी जाए। आप (सल्ल॰) ने कहा, "वह ज़मीन जहाँ ऊटों के पाँव न पहुँचें।"

(हदीस : तिरमिज़ी, इब्ने-माजा, दारमी)

व्याख्या : मूल में शब्द 'अल-माउल-इद्दु' (तैयार पानी) प्रयुक्त हुआ है। मतलब यह है कि उसमें नमक बिलकुल तैयार हालत में पाया जाता है। नमक की वह खान आरम्भिक स्थिति में नहीं है जिससे अधिक परिश्रम के पश्चात ही नमक प्राप्त किया जाता है।

जिस खान का उल्लेख इस रिवायत में किया गया है वह मारिब में थी। मारिब यमन के एक नगर का नाम है। यह नगर सनआ से 60 मील पूरब की ओर चार हज़ार फुट की ऊँचाई पर स्थित है। पहली ईसवी शताब्दी तक यहाँ सबा क़ौम का शासन रहा है। यमन की राजधानी होने के कारण यह एक व्यापारिक केन्द्र रह चुका है। हज़रत अबयज़ (रज़ि॰) इसी नगर के रहनेवाले थे। इसी लिए उन्हें मारिबी कहा जाता है।

नबी (सल्ल॰) ने समझा था कि वह खान आरम्भिक स्थिति में है जिससे अधिक परिश्रम के बाद ही लाभ उठाया जा सकता है। लेकिन जब आप (सल्ल॰) को मालूम हुआ कि वह खान आरम्भिक स्थिति में नहीं है, बल्कि उसमें नमक बिल्कुल तैयार हालत में मौजूद है तो आप (सल्ल॰) ने वह खान हज़रत अबयज़ से वापस ले ली। क्योंकि इस स्थिति में उस खान पर सभी लोगों का हक़ होता था। उसे किसी एक व्यक्ति की मिल्कियत में दे देना हरगिज़ मुनासिब न था। इसलिए आपने समस्त लोगों के अधिकारों और हितों को सामने रखते हुए उस खान को अकेले हज़रत अबयज़ (रज़ि॰) की मिल्कियत में रहने नहीं दिया।

इस हदीस से मालूम होता है कि खान किसी एक व्यक्ति की मिल्कियत में नहीं हो सकती, चाहे वह नमक की हो या कोयला, तेल और पेट्रोल आदि की। इसलिए कि खनिज पदार्थों से समस्त लोगों के हित जुड़े होते हैं।

किसी बंजर और ग़ैर-आबाद भूमि को आबाद करके अपने क़ब्ज़े में लिया जा सकता है।

"जहाँ ऊँटों के पाँव न पहुँचें" अर्थात् ऐसी भूमि जो चरागाह से अलग हो। इससे मालूम हुआ कि ऐसी पड़ी हुई भूमि को आबाद करना जाइज़ नहीं है जो जानवरों के चराने के काम आती हो या इस प्रकार की दूसरी आवश्यकताओं के लिए जिसे सार्वजनिक रूप से बस्ती के लोग इस्तेमाल करते हों।

ख़ुम्स

(1) हज़रत अम्र-बिन-अबसा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक बार अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने एक ऊँट को सुतरा ठहराकर हमें नमाज़ पढ़ाई। जब आप (सल्ल॰) ने सलाम फेरा (नमाज़ से निवृत्त हुए) तो उस ऊँट के पहलू से (कुछ) बाल उखाड़े और कहा, "तुम्हारे माले-ग़नीमत में से मेरे लिए ख़ुम्स के अलावा इतना भी हिस्सा नहीं है, और वह (खुम्स) भी तुम्हारी ज़रूरत पर ख़र्च किया जाता है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : जिहाद और युद्ध में शत्रु के जिस माल पर अधिकार प्राप्त होता है उस माल को ग़नीमत कहते हैं। नबी (सल्ल॰) कहते हैं कि ग़नीमत के केवल ख़ुम्स अर्थात् पाँचवें हिस्से का मैं हक़दार हूँ। और उस ख़ुम्स के माल में से भी तुम्हारी भलाई और कल्याण के कामों में ख़र्च किया जाता है। अतएव नबी (सल्ल॰) ख़ुम्स से जहाँ अपने घर का ख़र्च निकालते थे, वहीं उससे जिहाद के लिए घोड़े या हथियार आदि भी ख़रीदे जाते थे। नबी (सल्ल॰) विलासिता का जीवन व्यतीत नहीं करना चाहते थे। यही कारण है कि आपका निधन हुआ तो आपकी ज़िरह (कवच) जौ के बदले गिरवी (बन्धक) रखी हुई थी। ग़नीमत में ख़ुम्स बैतुल-माल (राजकोश) का होता था। शेष चार भाग युद्ध में भाग लेने वाले सैनिकों में वितरित किए जाते थे।

सुतरा उस चीज़ को कहते हैं जिसे नमाज़ पढ़नेवाला अपने सामने रख लेता है।

फ़य

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिस बस्ती में तुम आए और वहाँ ठहरे तो उसमें तुम्हार हिस्सा है और जिस बस्ती के लोगों ने अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) की अवज्ञा की अर्थात् युद्ध किया तो उसका ख़ुम्स (पाँचवाँ भाग) अल्लाह और उसके रसूल का है और शेष (चार भाग) तुम्हारे हैं।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस में फ़य और ग़नीमत के माल के सम्बन्ध में नियम बयान किया गया है। फ़य से तात्पर्य वह सम्पत्ति और माल हैं जिसपर युद्ध के बिना अधिकार प्राप्त हो जाए अर्थात् युद्ध होने से पहले ही लड़नेवाले जिनको छोड़कर भाग जाएँ। फ़य में लश्करवालों का हिस्सा निश्चित नहीं है। फ़य मूलतः बैतुल-माल के लिए है। उसके ख़र्च के सम्बन्ध में क़ुरआन में यह स्पष्टीकरण मौजूद है— "जो कुछ अल्लाह ने अपने रसूल की ओर बस्तीवालों की ओर से पलटाया (अर्थात् फ़य के रूप में प्रदान किया) वह अल्लाह, रसूल, रिश्तेदारों, यतीमों, मिस्कीनों और मुसाफ़िरों के लिए है, ताकि वह तुम्हारे मालदारों ही के बीच भ्रमण न करता रहे।" (क़ुरआन 59:7)

फ़य में लश्करवालों का हिस्सा निश्चित नहीं है, लेकिन अगर वे युद्ध पर उतारू लोगों के अधिक्षेत्र में जाकर ठहरें तो उपहार स्वरूप फ़य में से उन्हें भी दिया जा सकता है। अन्यथा मूलतः बैतुल-माल ही का हिस्सा है। जिस अधिक्षेत्र पर युद्ध के द्वारा विजय प्राप्त की गई हो, इस प्रकार क़ब्ज़े में आनेवाले मालों को ग़नीमत कहते हैं। इसमें ख़ुम्स अर्थात् पाँचवाँ भाग अल्लाह और उसके रसूल (बैतुल-माल) का होगा। शेष चार भाग लश्करवालों में वितरित होंगे।

ग़स्ब (अनाधिकार कब्ज़ा)

(1) हज़रत अबू-उमामा (रज़ि.) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने कहा, "जिस किसी ने अपनी क़सम (झूठी क़सम) के द्वारा किसी मुसलमान व्यक्ति का हक़ छीन लिया, अल्लाह ने उसके लिए जहन्नम की आग अनिवार्य कर दी और जन्नत उसपर हराम कर दी।" (यह सुनकर) एक व्यक्ति ने कहा कि यद्यपि वह कोई साधारण चीज़ हो? आप (सल्ल.) ने कहा, "यद्यपि वह पीलू के पेड़ का एक टुकड़ा (दातुन) ही क्यों न हो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् ऐसा व्यक्ति जिसे अपने भाई के माल के हड़प करने में तनिक भी संकोच न हो और जब इसके लिए झूठी क़सम भी खाए, वह ख़ुदा की रहमत से दूर और उसके प्रकोप का ही पात्र होता है। वह जिस आचरण का प्रदर्शन कर रहा है वह इसका स्पष्ट प्रमाण है कि उसकी निगाह में अमानत और ईमानदारी का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। फिर ऐसे व्यक्ति को तो अल्लाह के अज़ाब ही की प्रतीक्षा करनी चाहिए। क़ुरआन का स्पष्ट आदेश है, "एक-दूसरे के माल ग़लत तरीक़े से न खाओ।" (क़ुरआन, 2:188; 4:29)

एक दूसरी हदीस में है, "जो व्यक्ति किसी की एक बालिश्त (बित्ता) ज़मीन नाजाइज़ तौर से हड़प करता है क़ियामत के दिन उसे सात ज़मीनों का तौक़ पहनाया जाएगा।"

दारक़ुत्नी की एक हदीस है "किसी मुस्लिम व्यक्ति का माल उसकी ख़ुशी के बिना वैध नहीं।" इस्लाम आर्थिक प्रयासों से किसी को रोकता नहीं, किन्तु धन प्राप्त करने का हर वह तरीक़ा उसकी दृष्टि में हराम है जिससे किसी के अधिकार का हनन और उसके साथ अत्याचार होता हो। इस्लाम हलाल (वैध) और पाक रोज़ी पर बल देता है और उसके प्राप्त करने के साधन भी पाक ही हो सकते हैं।

ब्याज

(1) हज़रत जाबिर (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने ब्याज लेने और खानेवाले पर, ब्याज खिलानेवाले और देनेवाले पर, ब्याज सम्बन्धी दस्तावेज़ लिखनेवाले पर और उसके गवाहों पर लानत की है और कहा है, "वे सब गुनाह में बराबर शरीक हैं।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस से ब्याज के बुरा होने और उसकी अवैधता में किसी प्रकार का सन्देह शेष नहीं रहता। ब्याज का कारोबार करनेवाला और इसमें उसके साथ सहयोग करनेवाले सभी लानत और अभिशाप के पात्र और अल्लाह की दयालुता से दूर होते हैं। क़ुरआन में भी कहा गया है : "अल्लाह ने व्यापार को वैध और ब्याज को अवैध ठहराया है।" (क़ुरआन, 2:275)

इस्लाम की मूल शिक्षा यह है कि सम्पूर्ण मानव-जाति एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति रखनेवाले और एक-दूसरे के शुभ चिन्तक हों। ज़रूरतमन्दों और मुहताजों के साथ उनका व्यवहार सहानुभूति और करुणा का हो। दरिद्रों, अनाथों और असहाय लोगों का ख़याल रखने को इस्लाम ने अनिवार्य किया है। इसी लिए सदक़ा, ख़ैरात और अल्लाह के मार्ग में दान आदि के महत्त्व और उत्तमता का सविस्तार वर्णन किया गया है। ब्याज खाना वास्तव में उस क़ौम का तरीक़ा कदापि नहीं हो सकता जो सदक़ा और दान को अल्लाह की प्रसन्नता का साधन समझती हो और जो अपने व्यक्तित्व के निर्माण और अपनी आत्मा के विकास के लिए इनफ़ाक़ (अर्थात नेक कामों में अपना माल ख़र्च करने) को अनिवार्य ठहराती हो।

ब्याज के लिए मूल शब्द 'रिबा' प्रयुक्त हुआ है। रिबा में ब्याज से अधिक विस्तृत अर्थ पाया जाता है। प्रचलित ब्याज एक प्रकार का रिबा है जिसमें ऋण देकर आदमी अवधि और निर्धारित दर के अनुसार ऋणी

से मूलधन से अधिक वुसूल करता है। इस प्रकार ऋण के अदा करने के अवसर पर ऋण देनेवाला अपने दिए हुए मूलधन के अतिरिक्त ब्याज के नाम से जो अधिक धन वुसूल करता है, वह बिना बदले का होता है। इब्नुल-अरबी 'अहकामुल-क़ुरआन' में लिखते हैं– 'रिबा' का अर्थ शब्दकोश की दृष्टि से ज़्यादती और बढ़ोत्तरी है। क़ुरआन की आयत में इससे अभिप्रेत "प्रत्येक वह अधिक माल या धन है जो बिना माली बदले के हासिल किया जाए।" उदाहरणार्थ रुपया ऋण देकर ऋणी से वापसी के समय दिए हुए मूलधन से अधिक ब्याज के नाम से जो धन लिया जाता है, वह बिना किसी बदले के होता है, इसलिए वह रिबा में सम्मिलित है। अज्ञानकाल में अरबवाले इस रिबा से भली-भाँति परिचित थे और इस प्रकार का ब्याज उनके यहाँ प्रचलित था। नबी (सल्ल॰) ने क्रय-विक्रय की उन शक्लों को भी रिबा ठहराया जिनमें बिना मुआवज़ा कोई अधिक चीज़ प्राप्त की जाती हो। हदीस में इसी लिए उस व्यक्ति की सवारी पर सवार होने या उसका उपहार स्वीकार करने से रोका गया है जिसके ज़िम्मे अपना ऋण हो। अलबत्ता इस प्रकार के उपहार आदि के मामले यदि उसके साथ पहले से चले आ रहे हों तो बात दूसरी है।

ब्याज के हराम होने का मूल कारण यह है कि वह सद्क़ा और ज़कात (जिसके दीनी अर्थात् धार्मिक महत्त्व से इनकार संभव नहीं) की मूलात्मा के विरुद्ध है। ब्याज को हराम करनेवाली आयत के प्रसंग और संदर्भ से यह पूर्णतः स्पष्ट है। सूरा-2, अल-बक़रा, में ब्याज को हराम घोषित करनेवाली आयत 275-278 से पूर्व विस्तृत रूप में अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने पर लोगों को उभारा गया है। दीन-दुखियों और असमर्थ लोगों की सहायता को धार्मिक और नैतिक उत्थान का प्रतीक ठहराया गया है और इस प्रकार माल ख़र्च करने को अल्लाह को प्रसन्न करने का साधन और भलाई और बरकत का कारण बताया गया है। और ईमानवालों को विश्वास दिलाया गया है कि उनकी उदारता और दानशीलता का बदला अल्लाह की ओर से मिलकर रहेगा। और वे

ल्लाह के मार्ग में अपना धन ख़र्च करके घाटे में कदापि नहीं रहेंगे। ़ुरआन की सूरा अर्रूम में भी ब्याज या रिबा की निन्दा से पहले कहा ाया है : "अतः रिश्तेदार को उसका हक़ दो, और मुहताज और ुसाफिर को भी, यह उत्तम है उनके लिए जो अल्लाह की प्रसन्नता ाहते हों और वही सफल हैं।" (क़ुरआन, 30:38)

इससे पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि रिबा (ब्याज) और सदक़ा ोनों का अवसर एक ही होता है। अर्थात् ज़रूरतमन्द की ज़रूरत पूरी रनी। व्यापार-सामग्री के क्रय-विक्रय में दोनों पक्षों की स्थिति समान ोती है। दोनों समान रूप से ज़रूरतमन्द होते हैं। दोनों पक्ष मामला रने में स्वतन्त्र होते हैं। इसके विपरीत एक मुहताज व्यक्ति जो ऋण ाँगता है, उसमें और धनी व्यक्ति में जिससे वह ऋण लेना चाहता है रती और आकाश का अन्तर होता है। एक ओर ज़रूरतमन्द जो अपनी ावश्यकता के लिए क़र्ज़ ले रहा है और दूसरी ओर मालदार व्यक्ति जेसे मात्र अपने धन को बढ़ाने की चिन्ता होती है। इसी लिए क़ुरआन ं है, "अल्लाह ने क्रय-विक्रय को हलाल किया है और ब्याज को हराम हराया है।" (क़ुरआन, 2:275)

ज़रूरतमन्द की ज़रूरत पूरी करने के तीन तरीक़े हो सकते हैं। थम, जो कुछ उनको अपनी ज़रूरत पूरी करने के लिए दिया जाए उसे ाफ़ कर दिया जाए और उसका बदला और सवाब अल्लाह से चाहा ाए। यह सदक़ा या ज़कात है। दूसरा तरीक़ा यह है कि ज़रूरतमन्द को ो कुछ दिया जाए वह "क़र्ज़े-हसन" के रूप में दिया जाए। अर्थात् दि उस मुहताज को भविष्य में सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है तो वह ऋण ुका देगा। ज़रूरतमन्दों की मदद कम से कम क़र्ज़े-हसन के ज़रीए से ालदारों पर अनिवार्य है। मुहताज और ज़रूरतमन्द की सहायता का ीसरा तरीक़ा यह है कि ज़रूरतमन्द व्यक्ति को इस शर्त पर बाध्य कैया जाए कि वह जितना क़र्ज़ ले रहा है, वह उस अस्ल क़र्ज़ से

अधिक लौटाएगा। यही तीसरा तरीक़ा है जिसे 'रिबा' या ब्याज कह
जाता है। शरीअत का उद्देश्य यह है कि ग़रीब और असहाय क
सहायता की जाए। उसकी ज़रूरत पूरी की जाए। कोई भूखा न मर
पाए। जिस प्रकार भी सम्भव हो मुहताज की ज़रूरत पूरी की जाए। उ
सदक़ा दिया जाए या क़र्ज़े-हसन के रूप में उसकी मदद की जाए। यह
यह बात भी सामने रहे कि कुछ आत्मसम्मानवाले लोग सदक़ा लेन
पसन्द नहीं करते। ऐसे लोगों की ज़रूरत क़र्ज़े-हसन के द्वारा पूरी क
जाए। लेकिन यदि यह शर्त रखी जाए कि ऋण की वापसी अतिरिक
धन के साथ करनी होगी तो यह हराम है।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसू
(सल्ल॰) ने कहा, ब्याज खाने के सत्तर हिस्से हैं। उनमें सबसे छोट
और साधारण ब्याज ऐसा है जैसे कोई अपनी माँ के साथ सहवार
करे।" (हदीस : इब्ने-माजा, बैहक़ी : शोबुल-ईमान

व्याख्या : एक और हदीस में है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "ब्या
का एक दिरहम भी जिसको आदमी जान-बूझकर खाए, छत्तीस बा
सहवास करने से बढ़कर घोर अपराध और पाप है।"

(हदीस : अहमद, दारक़ुत्नी– अब्दुल्लाह-बिन-हंज़ला से उल्लिखित

ब्याज खानेवाले को क़ुरआन में इस प्रकार चेतावनी दी गई है क
"युद्ध की घोषणा सुन लो, अल्लाह और उसके रसूल की ओर से,'
(क़ुरआन 2:279)। अब जिसके विरुद्ध अल्लाह और उसके रसूल क
ओर से युद्ध की घोषणा हो उसकी बरबादी और दुर्भाग्य में कोई सन्दे
नहीं किया जा सकता।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) की हदीस से मालूम होता है कि ब्या
खाना अपनी माँ के साथ सहवास करने से भी कई गुना अधिक घो
और निकृष्ट पाप है। ब्याज खाना अस्ल में इस्लाम के स्वभाव औ

उसकी मूलात्मा के बिलकुल विरुद्ध है। इस्लाम यह है कि मुहताजों और कमज़ोरों को सहारा दिया जाए। उनकी आवश्यकताओं को पूरा करके ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त की जाए। अब यदि कोई इस्लाम की स्प्रिट और उसकी मूलात्मा की उपेक्षा करके अपने क़र्ज़दार से ब्याज लेता है तो उसे जान लेना चाहिए कि उसकी यह भौतिकवादी मानसिकता अत्यन्त घृणित और अप्रिय है। जिस प्रकार कोई असभ्य यदि वासनात्मक इच्छा की पूर्ति के लिए माँ के साथ सम्भोग करता है तो उसकी नीचता और दुष्टता में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। अपनी माँ के साथ आदमी का जो पवित्र और कोमल सम्बन्ध होता है उसका हनन करना असहनीय अपराध है। ठीक इसी प्रकार मनुष्यों की विवशता और उनकी मुहताजी को अपने लिए लाभ का साधन समझना, उनको सहारा देने के बदले ब्याज लेकर उनका ख़ून चूसना क्रूरता और दुष्टता में इससे कम नहीं, बल्कि बढ़कर है कि कोई व्यक्ति अपनी बढ़ी हुई कामुकता की तृप्ति के लिए अपनी माँ के सतीत्व पर हमला कर बैठे।

यह हदीस इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि इस्लाम का आधार यह है कि मनुष्यों को हम अपना शत्रु न समझें। उनको अपना भाई समझें और उनकी मदद और सहयोग करने से हम कदापि पीछे न हटें। करुणा और लोगों के प्रति सहानुभूति की भावना बहुमूल्य वस्तु है। इससे यदि हमारे हृदय रिक्त हैं तो इसका अर्थ इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कि हमारे हृदय मर चुके हैं, उनमें तनिक भी जीवन नहीं और यह इतनी शोचनीय स्थिति है कि इसकी किसी भी दशा में उपेक्षा नहीं की जा सकती।

(3) हज़रत अनस (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जब तुममें से कोई व्यक्ति किसी को क़र्ज़ दे तो यदि वह क़र्ज़दार व्यक्ति उसे कोई उपहार दे या उसे सवारी के लिए अपना जानवर पेश करे तो न वह उसपर सवार हो और न

उस उपहार को स्वीकार करे सिवाय इसके कि उन दोनों के बीच पहले से इस प्रकार का मामला होता रहा हो।"

(हदीस : इब्ने-माजा, बैहक़ी : शोबुल-ईमान)

व्याख्या : एक दूसरी रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जिसने किसी के लिए सिफ़ारिश की फिर (सिफ़ारिश करानेवाले ने) उसे उपहार दिया और उसने उसे स्वीकार कर लिया तो निश्चय ही वह ब्याज के दरवाज़ों में से एक बड़े दरवाज़े में प्रवेश कर गया।"

(हदीस : अबू-दाऊद, अबू-उमामा से)

इन रिवायतों से अच्छी तरह स्पष्ट होता है कि इस्लाम ने ब्याज को हराम ही नहीं किया है बल्कि उसके खुले-छुपे दरवाज़ों को भी बन्द कर देना चाहा है। ऋण देकर उससे लाभ प्राप्त करना रिबा (ब्याज) है, इसी लिए उस व्यक्ति की सवारी इस्तेमाल करने और उसका उपहार लेने से रोका गया, जिसके ज़िम्मे अपना ऋण हो। किसी की सिफ़ारिश करके उसके उपहार को स्वीकार करने का मतलब यह होता है कि हमने उस नेकी का बदला ले लिया जो बे-बदले की होनी चाहिए थी। ब्याज में भी यही होता है। ऋण देनेवाला उस नेकी (ज़रूरतमन्द को ऋण देने की नेकी) पर लाभ प्राप्त करता है जो नेकी उसे बिना किसी बदले के करनी चाहिए थी। अपने भाई की सहायता करना और उसे परेशानियों से बचा लेना यह तो हमारा कर्त्तव्य और भाई का हमपर हक़ होता है।

(4) हज़रत इब्ने-मसऊद (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "ब्याज (से प्राप्त धन) चाहे कितना ही अधिक हो जाए मगर उसका परिणाम क़िल्लत और कमी है।"

(हदीस : मुसनद, अहमद, इब्ने-माजा, बैहक़ी : शोबुल-ईमान)

व्याख्या : ब्याज से प्रकट रूप में कितना ही लाभ ब्याज खानेवाला प्राप्त करता हो लेकिन इसका परिणाम कभी अच्छा नहीं हो सकता।

क़ुरआन में भी कहा गया है : "अल्लाह ब्याज को घटाता और मिटाता है तथा सदक़ों को बढ़ाता है," (क़ुरआन 2:276)। बरकतों और भलाई व कल्याण का सम्बन्ध सदक़ों से ही है, ब्याज से नहीं। सदक़ा करनेवालों के हिस्से में अल्लाह की प्रसन्नता और आख़िरत का सवाब आता है। ब्याज खानेवालों की नियति अल्लाह का प्रकोप है। ब्याज की अनिष्टता बहुधा संसार में भी प्रकट होती है। बड़े-बड़े पूँजीपतियों को दिवालिया होते देखा गया है। ब्याज खानेवालों को आदर नहीं मिलता। मानवीय प्रतिष्ठा और आदर से वंचित होना उनका भाग्य बन जाता है। समाज में उनकी हैसियत हिंसक पशुओं से भिन्न नहीं होती।

आज की आर्थिक व्यवस्था जो ब्याज पर आधारित है, इसके दुष्परिणाम आपके सामने हैं। यह व्यवस्था किसी विशिष्ट देश और जाति ही के लिए नहीं बल्कि पूरी दुनिया के लिए एक यातना सिद्ध हो रही है। कितने देश और जातियाँ ब्याज की अनिष्टता के कारण आर्थिक तबाही का शिकार नज़र आती हैं। कितने ही देश हैं जिनकी राजनीतिक और राष्ट्रीय नीतियों तक पर ब्याज खानेवाले देश या वर्ग बुरी तरह से प्रभावी हो रहे हैं। ब्याज पर आधारित अर्थ व्यवस्था वास्तव में भौतिकवादिता की अति है। इसी का यह चमत्कार है कि कुछ पूँजीपतियों की पूँजी में बराबर बढ़ोत्तरी होती जा रही है और जनता दरिद्र से दरिद्र होती चली जा रही है। व्यापार पर मूलतः पूँजीपति ही अपने अधिकार जमाए होते हैं। चीज़ों की दर वे निर्धारित करते हैं। वस्तुओं के मूल्य इतने बढ़ते जाते हैं कि सरकारें भी उनपर क़ाबू पाने में नाकाम दिखाई देती हैं। इसका परिणाम इसके सिवा और क्या हो सकता है कि लोगों में असंतोष व्याप्त हो जाए, लूट-मार और डाकाज़नी की घटनाओं में वृद्धि हो। दुनिया की चाहत और धन-लोलुपता के परिणामस्वरूप हर जगह और हर वर्ग में बेईमानी और भ्रष्टाचार का प्रचलन हो जाए। सारांश यह कि धोखाधड़ी और अन्यायपूर्ण नीति

अपनाकर चाहे कितनी ही दौलत जमा कर ली जाए, वह कमी मानवों के कल्याण और भलाई का द्योतक नहीं हुई।

आज की दुनिया नें बैंक एक आवश्यकता बन चुका है। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि ब्याज के बिना बैंक की व्यवस्था कैसे चलाई जा सकती है? लेकिन अर्थशास्त्र के विद्धान यदि चाहें तो बैंकिंग की ऐसी रूपरेखा प्रस्तुत कर सकते हैं जिसमें ब्याज के स्थान पर 'मुज़ारिबत' या 'मुशारिकत' के इस्लामी सिद्धान्तों को अपनाया गया हो। इस्लामी सिद्धान्तों को अपनाकर ब्याजरहित बैंक सरलता से चलाया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप कुछ लोग मिलकर एक संस्था स्थापित करें। संस्था अपने साझेदारों की सम्पत्ति की रक्षा करे और आवश्यकतानुसार उनके लिए ऋण देने की सुविधा भी उपलब्ध कराए। आय को बढ़ाने के लिए संस्था संयुक्त रूप से खेती, व्यापार निर्माण और उद्योग के ऐसे क्षेत्रों में पूँजी लगाए जहाँ से संस्था को लाभ की आशाएँ हों। साल के अन्त में सारे हिसाब कर लिए जाएँ और हिस्सेदारों में लाभांश वितरित कर दिए जाएँ। विभिन्न नगरों में इस संस्था या बैंक की शाख़ाएँ स्थापित की जाएँ ताकि एक स्थान से दूसरे स्थान पर धन के स्थानान्तरण की व्यवस्थाएँ भी की जा सकें।

इसी प्रकार इस्लामी सिद्धान्तों के अन्तर्गत जुआ और ब्याज आदि से मुक्त बीमा पॉलिसी की व्यवस्था भी हो सकती है। बीमा पॉलिसी का मूल उद्देश्य यह होता है कि आकस्मिक दुर्धटनाओं से होनेवाली क्षति को पूरा किया जा सके। इसका एक रूप यह हो सकता है कि कुछ लोग अपनी संयुक्त पूँजी से एक फ़ंड (कोश) की स्थापना करें जिसमें निर्धारित दर से लोग अपनी रक़में जमा करते रहें। अब यदि आग लगने, गाड़ियों के टकराने आदि किसी दुर्घटना से किसी को क्षति पहुँच जाती है तो वह उतनी रक़म ले ले जिससे क्षति की पूर्ति हो सके। और यदि अपनी जमा की हुई रक़म से अधिक लेने की आवश्यकता पड़ती है

ो अतिरिक्त राशि ऋण के रूप में उसे दी जाए जिसकी अदायगी उसके ज़िम्मे होगी।

हिस्सेदारी में एकत्रित पूँजी को मुज़ारिबत के रूप में निर्माण और ौद्योगिक संस्थानों में लाभार्थ लगाया जा सकता है। पॉलिसी के नियम पष्ट रूप से निर्धारित हों। बिना किसी अन्तर के सभी भागीदार उन नेयमों के पाबन्द होंगे। भागीदारी के इस काम का मूल उद्देश्य एक ूसरे के साथ सहयोग और ईश-प्रसन्नता की प्राप्ति हो। निष्ठा और मानदारी के साथ अगर इस पॉलिसी को चलाया जाए तो निश्चय ही समें असफलता का कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

5) हज़रत समुरा-बिन-जुन्दुब (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल ने कहा, "रात मैंने देखा कि दो व्यक्ति मेरे पास आए और वे मुझे एक पवित्र भूभाग की ओर ले गए। फिर वहाँ से हम आगे को चले यहाँ तक कि रक्त की एक नदी पर पहुँचे। उसमें एक व्यक्ति खड़ा था और उस नदी के किनारे एक दूसरा व्यक्ति मौजूद था जिसके सामने बहुत-से पत्थर पड़े हुए थे। नदी में जो व्यक्ति था वह आगे आया लेकिन जब उसने निकलने का इरादा किया तो किनारे पर खड़े व्यक्ति ने उसके मुँह पर पत्थर मारकर उसे वहीं लौटा दिया जहाँ से वह चला था। हर बार जब वह निकलने की कोशिश करता, यह उसके मुँह पर पत्थर मारता और वह अपनी पहली हालत पर लौटने पर विवश हो जाता। मैंने पूछा कि यह कौन है जिसे मैं (ख़ून की) नदी में देख रहा हूँ? उन दोनों में से एक ने कहा कि यह (दुनिया में) ब्याज खाता था।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : यह एक लम्बी हदीस का एक अंश है। नबी (सल्ल॰) को स्वप्न में बरज़ख़-लोक का दर्शन कराया गया। आप (सल्ल॰) को दिखाया गया कि लोगों को उनके अपने अच्छे और बुरे कर्मों का फल

मिलकर रहेगा। मनुष्य के कर्मों के प्रभाव यूँ तो सांसारिक जीवन में ही सामने आने लगते हैं। बरज़ख़-लोक और परलोक में तो मनुष्य अपने अच्छे-बुरे आमाल (कर्मों) के परिणामों को स्पष्ट देखेगा जिसमें सन्देह की कोई गुंजाइश न होगी।

इस स्वप्न से यह स्पष्ट होता है कि हमारा जीवन आख़िरत तक विस्तृत है, मृत्यु पर इसका अन्त नहीं हो जाता। इसलिए बड़ी नादानी होगी कि हम सांसारिक जीवन के सीमित अधिक्षेत्र में प्राप्त होनेवाले लाभ और पहुँचनेवाली हानि को ही लाभ और हानि समझें।

ब्याज खानेवाला लोगों के हक़ को रौंदकर और उनका ख़ून चूसकर ही अपनी दौलत को बढ़ाता है। उसे पता नहीं होता कि वह लोगों का रक्त एकत्र कर रहा है जो बड़ी नदी बन जानेवाला है और वही उसका भाग्य बन जाएगा। इससे निकलना उसके लिए सम्भव न होगा। भौतिक भोजन और खाद्यान्न से नहीं, आदमी के व्यक्तित्व का निर्माण उसके कर्मों से होता है। व्यक्तित्व जैसा होगा, उसे झुठलाया नहीं जा सकेगा। आदमी का परिणाम स्वयं बता रहा होगा कि वह कौन है।

रिश्वत

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने रिश्वत लेनेवाले और रिश्वत देनेवाले दोनों पर लानत की है। (हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : हदीस की पुस्तक बैहक़ी के अध्याय 'शोबुल-ईमान' में 'वराइश' शब्द भी आया है, अर्थात् उस व्यक्ति पर लानत है जो रिश्वत लेने और देनेवाले के बीच माध्यम बनता है। रिश्वत वह माल है जो किसी हाकिम आदि को इस उद्देश्य से दिया जाए कि वह जो नाहक़ है उसे हक़ कर दे या जो हक़ है उसे नाहक़ कर दे। अर्थात् उसे माल या रक़म देकर उससे अपने पक्ष में ग़लत फ़ैसला करा ले। स्पष्ट है कि इस

प्रकार की हरकत ईमानदारी और सत्य-प्रियता के बिल्कुल विपरीत है। इस्लाम इसे कब पसन्द कर सकता है कि कोई रिश्वत के बल पर किसी का हक़ हड़प कर ले। रिश्वत का लेना और देना दोनों ही अत्यन्त घृणित कर्म हैं। इसलिए इस कार्य को करनेवाले अनिवार्यतः फिटकार ही के पात्र होते हैं।

अलबत्ता कुछ परिस्थितियों में आदमी को अपना जाइज़ हक़ प्राप्त करने के लिए कुछ ख़र्च करना पड़ जाता है। यह वह रिश्वत नहीं है जिसके देनेवाले पर नबी (सल्ल॰) ने लानत की है।

जुआ

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति अपने साथी और दोस्त से यह कहे कि आओ हम दोनों जुआ खेलें तो उसे चाहिए कि वह सदक़ा (दान) दे।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : यह एक हदीस का आख़िरी अंश है। इसमें कहा गया है कि "जो व्यक्ति अपने मित्र या साथी से यह कहे कि आओ हम दोनों जुआ खेलें तो उसे चाहिए कि वह सदक़ा दे।" मतलब यह है कि उसने ऐसे गुनाह की ओर बुलाया जो कोई साधारण गुनाह नहीं है। इसलिए उसे तुरन्त अपने गुनाह से तौबा करनी चाहिए और कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) के तौर पर अपने माल से कुछ सदक़ा भी देना चाहिए। माल की चाहत और आकर्षण ही वास्तव में इस बुरे कर्म का प्रेरक होता है। इसलिए ज़रूरी है कि आदमी अपने दिल से माल की मुहब्बत को निकाले और सदक़ा दे।

जुए के लिए आमंत्रित करने पर कफ़्फ़ारा अदा करना ज़रूरी है। तो जो व्यक्ति वास्तव में जुआ खेलता और खिलवाता है वह कितने बड़े गुनाह का काम करता है, उसका अनुमान हर व्यक्ति अच्छी तरह कर

सकता है। इस्लामी दृष्टिकोण से वे समस्त कारोबार अवैध ठहरेंगे जिनमें जुआ सम्मिलित होता है, जैसे लाटरी, सट्टेबाज़ी, रेस और बाज़ी लगाना आदि। इस्लाम किसी ऐसे काम को वैध नहीं समझता जिसमें दोनों पक्षों में से किसी पक्ष के लिए घाटे में पड़ना अनिवार्य होता है। इन बुराइयों में पड़ने से कितने ही लोग तबाह होकर रह जाते हैं, इससे सभी परिचित हैं। यही कारण है कि जुआ आदि को हमेशा बुरा समझा गया है।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने शराब पीने और जुआ खेलने से रोका है और कूबा व ग़ुबैरा से भी रोका है और यह भी कहा है कि, "हर वह चीज़ जो नशा लाए हराम है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : कूबा, नर्द (एक खेल) और शतरंज को कहते हैं (अरबी शब्दकोश—क़ामूस)। ग़ुबैरा एक प्रकार की शराब है, साधारणतया इसे हब्शी तैयार करते थे।

शराब का क्रय-विक्रय

(1) हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को मक्का-विजय के वर्ष जबकि आप मक्का में ही मौजूद थे यह कहते हुए सुना कि "अल्लाह और उसके रसूल ने शराब, मुरदार, सूअर और बुतों के क्रय- विक्रय को अवैध ठहरा दिया है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : शराब, मुरदार और सूअर इनसान के लिए अत्यन्त हानिकारक हैं। शराब का नशा भी अद्भुत होता है। शराबी के लिए मदिरापान एक ज़रूरत बन जाता है जिसके बिना वह रह नहीं सकता। शराब पीने से शराबी को जो सुरूर मिलता है वह क्षणिक होता है। शराब के इस क्षणिक आनन्द के लिए आदमी को जो क़ीमत चुकानी पड़ती है वह कोई साधारण क़ीमत नहीं होती। रुपये-पैसे की बरबादी के

अलावा स्वास्थ्य पर इसके अत्यन्त बुरे प्रभाव पड़ते हैं। शराब पीने से पाचन, रुधिर संचार, स्नायुतंत्र आदि सभी पर बुरे प्रभाव पड़ते हैं। फिर अधिक मात्रा में शराब पीने पर आदमी होश में भी नहीं रहता। बेहोशी और नशे की हालत में लोगों ने जो अश्लील हरकतें की हैं उनसे कौन अपरिचित हो सकता है। जो व्यक्ति नशे में चूर है उसमें और एक पागल में कुछ ज़्यादा अन्तर शेष नहीं रहता। होश और चेतना इनसान के लिए बड़ी नेमत है। वही सुरूर और स्वाद काम का है जो होश के घटने से नहीं बल्कि उसके बढ़ने से प्राप्त होता है। अत्यन्त प्रसन्नता और आत्मिक आनन्द की स्थिति में भी एक तल्लीनता तो होती है लेकिन उसमें और नशे की बेहोशी में धरती और आकाश का अन्तर पाया जाता है।

मुरदार जानवर का मांस भी मानव-स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, बल्कि मनुष्य के स्वभाव और रुचि पर भी उसके अत्यन्त बुरे प्रभाव पड़ते हैं। यही हाल सूअर के मांस का भी है। सूअर एक गन्दा जानवर है। उसका स्वभाव भी अत्यन्त घिनौना होता है। उसका मांस भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ है। फिर उसे अपनी ख़ुराक बनानेवाला वही हरकतें करते हुए दिखाई देता है जो सूअर का स्वभाव है। सूअर खानेवाली जातियाँ जिस बेशर्मी और निर्लज्जता की हरकतें करती दिखाई देती हैं वह कोई ढकी-छुपी चीज़ नहीं है। यूरोपियन जातियाँ जो सूअर का मांस बड़े शौक़ से खाती हैं, नग्नता, स्वच्छन्दता और निर्लज्ज हरकतें उनकी सभ्यता बन चुकी है।

जिस प्रकार मुरदार मांस और सूअर का मांस एक अवित्र भोजन है शरीर के लिए, ठीक उसी प्रकार शिर्क (बहुदेववाद) और बुतपरस्ती भी एक ऐसी मलिनता है जिससे इनसान की आत्मा अपवित्र हो जाती है। वह उच्चता से वंचित होकर पतित हो जाती है। फिर इनसान इस योग्य नहीं रह जाता कि वह अल्लाह के आलोकों का वाहक बन सके और

अल्लाह की महानता का एहसास और उसका प्रेम उसके दिल में स्थान पा सके। वह ईश्वर से दूर, बहुत दूर, हो जाता है। ईश्वर के प्रकोप के सिवा वह किसी और चीज़ के योग्य नहीं रह जाता।

जो चीज़ें हराम और इनसान के लिए हानिकारक हैं उनके व्यापार की अनुमति भी इस्लाम कैसे दे सकता है। शराब और जुआ आदि की ख़राबी से यूँ तो किसी को भी इनकार नहीं है लेकिन धर्मनिरपेक्ष राज्यों में इनके व्यापार आदि पर कोई प्रतिबन्ध नहीं। ईश्वर का भय और आख़िरत की चिन्ता अगर न हो तो किसी के लिए गुनाहों से बचना आसान नहीं होता।

(2) हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिसकी अधिक मात्रा नशा लाती हो, उसकी थोड़ी मात्रा भी अवैध है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : शराब पीनेवाला यह बहाना नहीं कर सकता कि वह तो मात्रा में बस इतनी ही शराब पीता है जिससे नशा न हो। किन्तु हमेशा अपने आपपर उसे नियंत्रण प्राप्त रहेगा इसकी कोई ज़मानत नहीं ले सकता। ऐसी बुरी चीज़ से दूर रहने ही में कुशलता है। जो चीज़ बुरी हो, आदमी को उसके निकट भी नहीं जाना चाहिए। बुरी चीज़ से जब तक घृणा न हो जाए उससे बचना अत्यन्त कठिन होता है।

(3) हज़रत वायल-बिन-हुज्र (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "शराब दवा नहीं है बल्कि वह तो स्वयं रोग है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् रोग से रोग को दूर करने की कोशिश निरर्थक है। यह कहाँ की बुद्धिमानी होगी कि किसी कष्ट से मुक्ति पाने के लिए आदमी एक दूसरी मुसीबत में अपने आपको डाल दे। कुछ लोग किसी ग़म और शोक को दूर करने के लिए शराब पीते या कोई दूसरी नशीली

चीज़ इस्तेमाल करते हैं। इससे ग़म तो दूर होता नहीं, कुछ देर के लिए हम उसे भूल ज़रूर जाते हैं। लेकिन नशा उतरते ही ग़म और अधिक शक्ति के साथ हमारे मन और मस्तिष्क को जकड़ लेता है। हम शराब की मात्रा को बढ़ा तो सकते हैं, नशे की गोलियाँ अधिक से अधिक प्रयोग में ला तो सकते हैं लेकिन इससे ग़म निगाहों से केवल ओझल हो जाता है, वह समाप्त नहीं होता। किसी चीज़ पर क़ाबू पाने के लिए आवश्यक है कि हम समझ पैदा करें और अपने होश को बढ़ाएँ। किसी चीज़ की वास्तविकता को समझ लेने के बाद हम उससे पार हो जाते हैं। उसे दबाने या उसको भुलाने की कोशिश से वह चीज़ मिटती नहीं, यह बात जान लेने की ज़रूरत है।

(4) हज़रत दैलम हमीरी (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से प्रश्न करते हुए कहा कि हम सर्द ज़मीन में रहते हैं और उसमें अत्यन्त परिश्रम का काम करते हैं और हम अपनी शक्ति प्राप्त करने और सर्दी, जो हमारे नगरों में पड़ती है, को दूर करने के उद्देश्य से इस प्रकार की गेहूँ की शराब बना लेते हैं। आप (सल्ल॰) ने कहा, "क्या वह नशा लाती है?" मैंने कहा कि हाँ। आप (सल्ल॰) ने कहा, "उससे बचो।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : शराब और मदिरा से कुछ लाभ भी प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु हानि उसके लाभ की तुलना में कहीं बढ़कर होती है (क़ुरआन, 2:219)। नशे की अनुमति इस्लाम नहीं दे सकता। नशा ख़ुदा की प्रदान की हुई एक बड़ी नेमत की नाक़द्री है। होश और बुद्धि व चिन्तन में सन्तुलन से बढ़कर दूसरी क्या नेमत होगी! इसका नुक़सान कभी भी सहन नहीं किया जा सकता।

(5) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "हर एक नशीली चीज़ शराब है और हर नशीली चीज़ हराम है।" (हदीस : मुसनद अहमद)

(6) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिसने दुनिया में शराब पी फिर उससे तौबा नहीं की, वह आख़िरत में उससे वंचित रहेगा।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : सांसारिक शराब से एक प्रकार का सुरूर प्राप्त होता है, लेकिन उसकी हानियाँ बहुत अधिक हैं। आख़िरत की शराब में लज़्ज़त ही लज़्ज़त होगी, न उससे दिमाग़ ख़राब होगा और न कोई दूसरी ख़राबी पैदा होगी। आख़िरत की इस नेमत के हक़दार मूलतः वे लोग होंगे जिन्होंने आख़िरत को जीवन का मूल उद्देश्य बनाकर जीवन-यापन किया होगा। जीवन की सही नीति यह है कि आदमी उच्चतर एवं बेहतर को कमतर पर प्राथमिकता दे। अब यदि कोई यह नीति नहीं अपनाता तो इसका मतलब यह है कि इस्लाम अभी उसका जीवन बनने में असफल है और यह इनसान के लिए अत्यन्त गम्भीर बात होगी।

हराम की कमाई

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "अल्लाह पाक है और वह पाक चीज़ों को ही क़बूल करता है, और अल्लाह ने मोमिनों को उसी चीज़ का आदेश दिया है जिसका आदेश उसने रसूलों को दिया है। अतएव उसका कथन है : 'ऐ रसूलो! उत्तम पाक चीज़ें खाओ और नेक अमल करो।'[1] और कहा है : 'ऐ ईमान लानेवालो! खाओ पाक उत्तम चीज़ों में से जो हमने तुम्हें प्रदान की हैं।'[2] फिर आप (सल्ल॰) ने एक व्यक्ति का ज़िक्र किया : 'जो 'लम्बी यात्रा करता है, बिखरे बाल और धूल से अटा हुआ, वह अपने दोनों हाथों को आकाश की ओर उठाता है और ऐ रब! ऐ रब! कहता है, जब

1. क़ुरआन, 23:51

2. क़ुरआन, 2:172

कि खाना उसका हराम और पीना उसका हराम और वस्त्र उसका हराम और उसका पोषण भी हराम भोजन से हुआ है। फिर कैसे उसकी दुआएँ स्वीकार हों।' (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : नबी (सल्ल॰) उदाहरण देकर समझाते हैं कि एक व्यक्ति मेहनत व मशक़्क़त करके पवित्र स्थानों का सफ़र करता है। सफ़र की हालत में उसके बाल बिखरे हुए हैं और उसका शरीर धूल-धूसरित हो गया है। वह गिड़गिड़ा कर ऐ रब! ऐ रब! कहकर दुआएँ माँगता है। लेकिन उसकी दुआएँ रद्द कर दी जाएँगी, वे कदापि स्वीकृत नहीं हो सकेंगी, क्योंकि वह व्यक्ति हराम माल से बचता नहीं। खाता है तो हराम, पहनता है तो हराम और उसका शरीर पला-बढ़ा है तो हराम कमाई से। इस हदीस से मालूम हुआ कि अल्लाह को राज़ी करने के लिए ज़रूरी है कि आदमी को हलाल खाने की चिन्ता हो। मात्र अपनी दुआओं के सहारे कोई व्यक्ति ख़ुदा की रहमतों का हिस्सेदार नहीं हो सकता। जो व्यक्ति आजीविकोपार्जन में हलाल और हराम का ख़याल न रखता हो वह ख़ुदा की दृष्टि में अवज्ञाकारी और भौतिकवादी ठहरेगा। अल्लाह हम सभी को इस बुरे परिणाम से अपनी पनाह में रखे।

(2) हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जिस शरीर का पालन-पोषण हराम माल से हुआ वह जन्नत में प्रवेश न पा सकेगा।"

(हदीस : बैहक़ी : शोबुल-ईमान)

व्याख्या : ऊपर हदीस गुज़र चुकी है कि हराम कमाई और हराम खाने के कारण आदमी की दुआएँ रद्द हो जाती हैं, चाहे वह कितने ही विनीत भाव और गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ा कर दुआएँ करे और अपने हाथों को आसमान की ओर उठाकर रब को पुकारता रहे। इस हदीस से, जो हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) से उल्लिखित है, मालूम हुआ कि ऐसा व्यक्ति जन्नत से भी दूर रखा जाएगा, वह उसमें कदापि प्रवेश न कर सकेगा।

यह अलग बात है कि दण्ड भोगने के पश्चात उसे जन्नत में प्रवेश करने की अनुमति मिल जाए।

संदिग्ध चीज़ों से परहेज़

(1) हज़रत नोमान-बिन-बशीर से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "हलाल स्पष्ट है और हराम भी स्पष्ट है। इन दोनों के बीच संदिग्ध चीज़ें हैं। अतः जो व्यक्ति संदिग्ध चीज़ों से बचा उसने अपने दीन (धर्म) और अपनी प्रतिष्ठा को सुरक्षित कर लिया तथा जो व्यक्ति संदिग्ध चीज़ों में पड़ा तो वह हराम में पड़कर रहेगा। जैसे वह चरवाहा जो वर्जित चरागाह के किनारे (अपने जानवर) चराता है, हर समय इसकी आशंका बनी रहती है कि उसका जानवर वर्जित चरागाह में घुसकर चरने लग जाए। सावधान! हर सम्राट की प्रतिबन्धित चरागाह होती है। सावधान! अल्लाह की प्रतिबन्धित चरागाह उसकी महारिम (हराम ठहराई हुई चीजें) हैं। यह भी सुन लो कि मानव के शरीर में मांस का एक लोथड़ा है, जब वह ठीक रहता है, सम्पूर्ण शरीर ठीक रहता है और जब उसमें बिगाड़ आ जाता है तो सम्पूर्ण शरीर में बिगाड़ आ जाता है। याद रखो वह (मांस का लोथड़ा) हृदय है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : क्या चीज़ें हलाल हैं और कौन-सी चीज़ें हराम हैं? शरीअत ने बहुत ही स्पष्ट रूप में सब बयान कर दिया है। उदाहरणार्थ यह सभी जानते हैं कि सदक़ा, ख़ैरात करना, शादी-विवाह करना आदि वैध और हलाल है। इसी प्रकार सब जानते हैं कि मदिरापान, चोरी, व्यभिचार और झूठ बोलना आदि हराम और अवैध हैं। लेकिन कुछ चीज़ें ऐसी भी सामने आ सकती हैं कि जिनका कोई स्पष्ट आदेश मालूम न हो, जिसके कारण सन्देह हो कि उनको हलाल समझें या उनको हराम ठहराएँ। उनके बारे में स्पष्ट निर्णय करना हर व्यक्ति के बस की बात

नहीं है। यही कारण है कि अधिकतर लोग उन चीज़ों की वास्तविकता से अनभिज्ञ ही रहते हैं, बल्कि कुछ चीज़ें तो विद्वानों के लिए भी संदिग्ध ही रहती हैं। ऐसी चीज़ों के बारे में सावधानी यही है कि उनसे बचा जाए। संदिग्ध चीज़ों में पड़ने को वर्जित चरागाह की बिलकुल मेंड़ पर जानवर के चराने से उपमा दी गई है। समझदार चरवाहा वही है जो अपने पशुओं को प्रतिबन्धित और वर्जित क्षेत्र से बहुत दूर रखकर चराता है ताकि जानवर के सहसा चरागाह में घुस जाने की सम्भावना शेष न रहे। संदिग्ध चीज़ों का एक उदाहरण संदिग्ध आय है जिसको अपंगों और असहाय लोगों में वितरित कर देना ही उत्तम है। स्वयं संदिग्ध आय से बचना और परहेज़ ही करना चाहिए।

हदीस के अन्तिम भाग में दिल के स्वस्थ रखने पर बल दिया गया है। दिल में अगर कोई ख़राबी है, वह यदि कुफ़्र, संदेहावस्था या लोभ-लालच आदि रोगों में ग्रस्त है तो इससे शरीर ही नहीं मानव का पूरा अस्तित्व और उसकी पूरी ज़िन्दगी प्रभावित होगी। बिगाड़ और फ़साद सिर्फ़ दिल तक सीमित नहीं रह सकता। इसलिए हर व्यक्ति का अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह अपने दिल और हृदय की पवित्रता तथा उसके स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखे। वह उसे मन की इच्छाओं में ग्रस्त होने से बचाए, संदिग्ध चीज़ों से भी बचे। मनुष्य के एक-एक अंग से अच्छे कर्मों की सम्भावना उसी स्थिति में सम्भव है जबकि उसका दिल सारी ख़राबियों से पाक हो।

विद्धानों ने इस हदीस को मौलिक रूप से महत्व दिया है। इस प्रकार की दो हदीसें और भी हैं जिन्हें दीन और शरीअत में मौलिक महत्त्व प्राप्त है! "कर्म सर्वथा नीयतों पर निर्भर करते हैं।" (हदीस : बुख़ारी)। "और मनुष्य के इस्लाम की ख़ूबी यह भी है कि वह उस चीज़ को छोड़ दे जो व्यर्थ हो।"

(हदीस : मालिक, अहमद, इब्ने-माजा, तिरमिज़ी, बैहक़ी : शोबुल-ईमान)

वेश्यावृत्ति

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने बाँदियों की कमाई से रोका है।

व्याख्या : अर्थात् आमदनी के लिए उनको वेश्यावृत्ति पर विवश न किया जाए, जैसे कि अज्ञानकाल में कुछ लोग अपनी लौंडियो से पेशा कराते थे और यह उनकी आमदनी का एक मुख्य साधन था। इस्लाम ने इसे पूर्णतः हराम क़रार दे दिया। हदीस बुख़ारी में हज़रत-इब्ने-मसऊद (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने व्यभिचार की आय से रोका है। हज़रत राफ़ेअ-बिन-ख़दीज (रज़ि॰) की रिवायत में है कि नबी (सल्ल॰) ने वेश्यावृत्ति के द्वारा प्राप्त होनेवाली आमदनी को नापाक और निकृष्ट आमदनी ठहराया है। लौंडी का मालिक उससे ऐसी रक़म की माँग नहीं कर सकता और न ऐसी रक़म वह उससे वुसूल कर सकता है जिसके बारे में वह यह न जानता हो कि यह रक़म वह कहाँ से और क्या करके ले आई है। (हदीस : अबू-दाऊद)। राफ़ेअ-बिन-रुफ़ाआ अनसारी (रज़ि॰) की रिवायत में स्पष्ट आदेश मौजूद है कि नबी (सल्ल॰) ने लौंडी की कमाई से रोका सिवाय इसके कि जो वह हाथ की मेहनत से प्राप्त करे। नबी (सल्ल॰) ने हाथ के इशारे से बताया कि यूँ जैसे रोटी पकाना, सूत कातना या ऊन और रूई धुनकना। (हदीस : मुसनद अहमद, अबू-दाऊद)

(2) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "इस्लाम में वेश्यावृत्ति के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस हदीस से स्पष्ट होता है कि इस्लाम में अश्लील कार्य की गुंजाइश ढूँढना व्यर्थ है। इस्लाम मानव-समाज को हर प्रकार की निर्लज्जता और अश्लीलता से मुक्त देखना चाहता है। इसलिए कि वह किसी ऐसे कल्चर या संस्कृति को मानवता के लिए अपमानजनक

समझता है जिसमें अश्लीलता और व्यभिचार को वैधता प्राप्त हो और उसकी ओर आकर्षित करने के सारे साधन उपलब्ध किए जाते हों। व्यभिचार और वेश्यावृत्ति के द्वारा प्राप्त की जानेवाली आय इस्लाम की दृष्टि में निकृष्टतम आय है।

शुफ़्आ

(1) हज़रत जाबिर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने यह आदेश दिया कि हर सामूहिक भूमि में शुफ़्आ साबित है जिसका बँटवारा न हुआ हो, चाहे वह घर हो या बाग़ हो। इसके अतिरिक्त यह भी है कि ऐसी ज़मीन के किसी साझीदार के लिए यह वैध नहीं कि वह अपने दूसरे साझीदार को सूचित किए बिना अपना हिस्सा बेच दे। अब वह दूसरा साझीदार चाहे तो वह हिस्सा स्वयं ख़रीद ले और चाहे तो छोड़ दे (किसी दूसरे के हाथ बेचने की अनुमति दे दे)। अगर किसी ने अपने दूसरे साझीदार को सूचित किए बिना अपना हिस्सा बेच दिया तो वह दूसरा साझीदार उसका अधिक हक़दार है (कि उस बिके हुए हिस्से को ख़रीद ले)।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : शुफ़आ शब्द शफ़आ से बना है, जिसका अर्थ होता है मिलाना, जोड़ा खाना। फ़िक़्ह (इस्लामी क़ानून) की परिभाषा में इससे अभिप्रेत वह पड़ोस-अधिकार या साझेदारी है जिसके कारण बिक्री होनेवाली ज़मीन को ख़रीदने का हक़ लोगों में सबसे पहले साझेदार को, जिसका उस ज़मीन में हिस्सा है, या फिर पड़ोसी को पहुँचता है। इमाम शाफ़िई (रह॰) और इमाम मालिक (रह॰) की दृष्टि में शुफ़आ का हक़ केवल जायदाद के साझेदारों को प्राप्त होता है, पड़ोसी को यह हक़ हासिल नहीं होता। किन्तु इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) के यहाँ शुफ़आ का हक़ पड़ोसी के लिए भी उसी प्रकार साबित है जिस प्रकार यह जायदाद के साझेदार के लिए साबित है। सहीह हदीसों के अनुसार पड़ोसी को

शुफ़आ का हक़ प्राप्त है। इसलिए पड़ोसी के शुफ़आ के अधिकार से इनकार नहीं किया जा सकता।

शुफ़आ का हक़ सबसे पहले उस व्यक्ति को प्राप्त होता है जो उस बेची जानेवाली भूमि या मकान की मिल्कियत में साझेदार है। अर्थात् उसके होते हुए कोई दूसरा आदमी उसे नहीं ख़रीद सकता। यही शुफ़आ का हक़ है। अलबत्ता अगर वह अपने इस हक़ को छोड़ देता है तो इसका हक़दार वह व्यक्ति है जो उस ज़मीन या सम्पत्ति की मिल्कियत में तो शरीक नहीं है लेकिन उससे लाभ उठाने के हक़ में साझा रखता है (उदाहरणार्थ आने-जाने का हक़, पानी के निकास का हक़, पानी ले जाने की नाली का हक़)। अगर यह भी शुफ़आ के हक़ से अलग हो जाता है तो इस स्थिति में शुफ़आ का हक़ पड़ोसी को प्राप्त होगा। अगर पड़ोसी भी अपने हक़ को छोड़ देता है तो इसके पश्चात् शुफ़आ का हक़ किसी को प्राप्त न होगा।

इससे मालूम हुआ कि शुफ़आ का हक़ अचल सम्पत्ति जैसे ज़मीन, मकान, बाग़ आदि के साथ सीमित है। चल सम्पत्तियों में शुफ़आ का हक़ नहीं होता। यहाँ एक बात और जान लेने की है कि शुफ़आ का हक़ सिर्फ़ मुसलमान के साथ सीमित नहीं है, बल्कि मुसलमान और ज़िम्मी (इस्लामी राज्य में रहनेवाला ग़ैर-मुस्लिम) के बीच भी शुफ़आ का हक़ क़ायम रहता है।

किसी साझे की ज़मीन या मकान का कोई हिस्सेदार यदि अपना हिस्सा बेचना चाहता है तो उसके लिए अनिवार्य है कि वह अपने इस इरादे की सूचना अपने दूसरे साझेदार को दे दे ताकि यदि वह ख़रीदने की इच्छा रखता हो तो उस हिस्से को ख़रीद ले।

(2) हज़रत अबू-राफ़ेअ् (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "पड़ोसी क़रीब होने के कारण (शुफ़आ का) अधिक हक़ रखता है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् पड़ोसी जो निकट और (जिसका घर) मिला हुआ होता है शुफ़आ का अधिक हक़दार है। यह हदीस इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि शुफ़आ का हक़ सिर्फ़ जायदाद के शरीकों को ही प्राप्त नहीं होता, बल्कि यह हक़ पड़ोसी को भी प्राप्त होता है। इस्लाम ने इनसान के स्वाभाविक अधिकारों का बहुत अधिक ध्यान रखा है। इस्लाम नहीं चाहता कि समाज में बिगाड़ और किसी प्रकार के असंतोष की स्थिति उत्पन्न हो।

लाभदायक वस्तुओं (सम्पत्ति) की सुरक्षा

(3) हज़रत सईद-बिन-हुरैस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना कि "तुममें से जो कोई मकान या ज़मीन बेचे तो यही होना चाहिए कि उस (की क़ीमत) में बरकत न हो सिवाय इसके कि वह उस (क़ीमत) को उसी जैसी जायदाद ख़रीदने में ख़र्च करे।" (हदीस : इब्ने-माजा, दारमी)

व्याख्या : मतलब यह है कि अचल सम्पत्ति, ज़मीन और बाग़ आदि अनावश्यक बेचना और उससे चल सम्पत्ति ख़रीदना कोई समझदारी की बात नहीं है। सच यह है कि अचल सम्पत्ति में बरबादी और हानि की शंकाएँ कम होती हैं। चल सम्पत्ति के सिलसिले में तो हर समय भय रहता है कि कहीं वे चोरी न हो जाएँ या उन्हें किसी प्रकार की क्षति न पहुँच जाए। इसलिए बुद्धिमानी की बात यही है कि बिना अनिवार्य आवश्यकता के ज़मीन और मकान आदि अचल सम्पत्ति को बेचा ना जाए। अलबत्ता उसे बेचकर उसकी क़ीमत किसी दूसरे उचित मकान या ज़मीन की ख़रीदारी में लगा दिया जाए तो फिर इसमें बुराई नहीं है।

(4) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-हुबैश (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो कोई बेरी का पेड़ काटेगा, अल्लाह उसे सर के बल जहन्नम में डाल देगा।" द(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इमाम अबू-दाऊद (रह०) इस रिवायत को उद्धृत करने के बाद कहते हैं, "यह हदीस संक्षिप्त है। पूरी हदीस का अर्थ यह है कि जो व्यक्ति जंगल में बेरी के किसी ऐसे पेड़ को जिसकी छाया में मुसाफ़िर और जानवर शरण लेते हैं, बिना सोचे-समझे (Unjustly, Thoughtlessly) ज़ुल्म के साथ बिना अधिकार के काटेगा, अल्लाह उसे सर के बल जहन्नम में डाल देगा।" कुछ व्याख्याकारों ने लिखा है कि हदीस में शब्द ज़ुल्म तो (Treat Unjustly, Thoughtless Manner) को व्यक्त करने के लिए आया है और बिना हक़ से तात्पर्य शुफ़आ है।

आदमी को रहने के लिए सिर्फ़ जगह ही नहीं चाहिए बल्कि उसके लिए वातावरण की पवित्रता एवं शुद्धता भी आवश्यक है। इनसानी समाज पाक और साफ़-सुथरा हो, किसी प्रकार की नैतिक और वैचारिक बुराई उसमें न पाई जाए, हर ओर निश्चिन्तता एवं शान्ति हो, यह इस्लाम में अभीष्ट है। इसके साथ इस्लाम यह भी चाहता है कि धरती में रहनेवाले इनसानों और जानवरों के आराम और उनकी सुविधा का भी यथासम्भव ध्यान रखा जाए। मानव-कल्याण और सुरक्षा की उपेक्षा करके कोई काम न किया जाए। आज के उन्नत युग का इनसान कितना अधिक स्वार्थी और परिणाम की ओर से लापरवाह है! वह इस बात को भूल गया कि जीवन की सुरक्षा के लिए वातावरण का प्रदूषण एक ख़तरा है। आज नगरों में लोग ताज़ा और साफ़ हवाओं से वंचित होते जा रहे हैं। सड़कों और बाज़ार के शोर-शराबे कान को बहरा किए देते हैं। नदियों और समुद्र तक का जल विषैला होता जा रहा है।

बाज़ार के फल तक स्वास्थ्य प्रद न रहे। फलों को जल्द से जल्द बाज़ार में लाकर रुपया बटोरने के लालच में विषाक्त पाउडर आदि छिड़ककर कृत्रिम रूप से उन्हें पका लिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि एक तो फलों में वह स्वाद और मिठास शेष नहीं रहती जो अपने समय पर प्राकृतिक रूप से उनके पकने से प्राप्त हो सकती थी।

दूसरे, पाउडर के छिड़काव से फलों में एक प्रकार का विषैलापन आ जाता है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

अल्लाह के निर्देश, जिसकी मूलात्मा ईश-भय और मानव-कल्याण है, की उपेक्षा करने का परिणाम यह हुआ कि वातावरण का प्रदूषण एक भारी समस्या बन चुका है। हमारी ग़लत हरकतों से ओज़ोन की परतों में दराड़ पड़ गई है जो बढ़ती जा रही है जिसके कारण घातक किरणें सीधे धरती को अपना निशाना बना रही हैं।

आम इनसानों और जानवरों की ज़रूरतों को नज़र-अन्दाज़ करके बेरी के पेड़ को काट डालना इतना बुरा और ख़ुदा के ग़ुस्से को भड़कानेवाला है कि ऐसे कर्म करनेवाले को सर के बल जहन्नम में फेंक दिया जाएगा। सम्पूर्ण भूमण्डल की तबाही का सामान करनेवाले और इनसानों के स्वास्थ्य और शान्ति की परवाह किए बिना वातावरण को विविध प्रदूषणों और विष से भर देनेवाले कितने बड़े अपराधी हैं, यह आप स्वयं सोच सकते हैं।

तसूईर (मूल्य-निर्धारण)

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति आया और उसने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल ! आप दर निर्धारित कर दें। आप (सल्ल॰) ने कहा, "नहीं, बल्कि मैं दुआ करूँगा।" फिर एक व्यक्ति आया और उसने भी निवेदन किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! दर निर्धारित कर दें। आप (सल्ल॰) ने कहा, "बात यह है कि अल्लाह ही दर घटाता और बढ़ाता है। और मैं इसकी आशा करता हूँ कि मैं अल्लाह से इस हाल में मिलूँ कि किसी के प्रति किसी ज़ुल्म का आरोप मुझपर न हो।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : नबी (सल्ल॰) से उस व्यक्ति ने कहा कि आप दर निर्धारित कर दें ताकि ग़ल्ला आदि सस्ता रहे और लोग परेशानियों में न पड़ें। चीज़ों और ग़ल्ला आदि के भाव में गिरने और बढ़ने का कारण

साधारणतया परिस्थितियाँ होती हैं। कब कैसी परिस्थिति होती है, इसे अल्लाह ही जानता है। हालात को बदलना भी वास्तव में उसी के हाथ में है। ज़बरदस्ती अप्राकृतिक रूप से वस्तुओं का मूल्य निर्धारित कर देना अर्थशास्त्र के सिद्धान्त के विरुद्ध होगा। नबी (सल्ल॰) कहते हैं कि मैं यह नहीं चाहता कि दुनिया से इस हाल में प्रस्थान करूँ कि मैंने किसी के भी हक़ में अन्याय की नीति अपनाई हो।

यहाँ यह बात भी ध्यान में रहे कि ग़ल्ला आदि की मँहगाई कभी पैदावार की कमी आदि प्राकृतिक कारणों से होती है और कभी कारोबारी लोग अधिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से कृत्रिम अकाल की स्थिति पैदा करके क़ीमतें बढ़ा देते हैं। सरकार को यदि मालूम हो कि व्यापारियों की ओर से जनता पर ज़्यादती हो रही है और वे कहने-सुनने के बावुजूद अपनी नीति को नहीं बदलते तो वह क़ीमतें निर्धारित कर सकती है ताकि जनता को व्यापारियों के शोषण से बचाया जा सके। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने एक बार देखा कि एक व्यक्ति सूखा अंगूर (मुनक़्क़ा) ऐसे दर पर बेच रहा है जो अनुचित सीमा तक मँहगा है, तो उन्होंने कहा कि या तो क़ीमत मुनासिब हद पर लाओ या फिर अपना माल हमारे बाज़ार से उठा लो।

(2) हज़रत अनस (रज़ि॰) से रिवायत है कि लोगों ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, भाव तेज़ हो गया है। आप हमारे लिए भाव निर्धारित कर दें। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "अल्लाह ही है जो भाव निर्धारित करता है, तंगी पैदा करता है, विस्तार करता है, आजीविका प्रदान करता है। मैं अल्लाह से इस दशा में मिलने की आशा करता हूँ कि तुममें से कोई किसी अन्याय के सम्बन्ध में मेरे विरुद्ध दावेदार न हो, न ख़ून के सिलसिले में और न माल के सिलसिले में।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् मैं जान या माल किसी सिलसिले में भी ज़ुल्म या अन्याय को छूट नहीं दे सकता। मैं यह नहीं चाहता कि अल्लाह से इस हालत में मिलूँ कि गरदन पर कोई ज़ुल्म का बोझ हो और कोई मेरे विरुद्ध अल्लाह क़ी अदालत में दावेदार बनकर खड़ा हो।

चरागाह

(1) हज़रत सअब-बिन-जस्सामा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "चरागाह सिर्फ़ अल्लाह और उसके रसूल के लिए हो सकती है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : 'हिमा' या चरागाह से तात्पर्य वह भूखण्ड है जिसको विशिष्ट जानवरों के चरने के लिए निश्चित कर दिया जाए और आम लोगों को उसमें अपने जानवरों को चराने से रोका जाए। इस सम्बन्ध में कुछ बातें सामने रहें। अल्लाह, रसूल और ख़लीफ़ा ही को यह अधिकार है कि वह किसी जगह को चरागाह के लिए निश्चित कर दे। इस सिलसिले में सार्वजनिक हित का ध्यान रखना आवश्यक है। जिसे अल्लाह और रसूल के लिए आरक्षित ठहरा दिया गया हो वह सार्वजनिक हित के कामों में आता है। जैसे माले-ग़नीमत का पाँचवाँ भाग, फ़य और ख़ज़ाने का पाँचवाँ भाग आदि। इमाम या ख़लीफ़ा अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए हिमा (चरागह) नहीं बना सकता। नबी (सल्ल॰) ने नफ़ीअ का क्षेत्र ऊँटों और जिहाद के घोड़ों के लिए आरक्षित कर दिया था। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने एक भूखण्ड को जब इस उद्देश्य के लिए आरक्षित किया तो कहा था, "ख़ुदा की क़सम, अगर मेरे पास ऐसे जानवर न हों जिनपर मैं अल्लाह की राह में जिहाद करनेवालों को सवार करता हूँ तो मैं धरती का एक बित्ता टुकड़ा भी चरागाह न बनाता।"

(हदीस : बुख़ारी)

ज़मान

(1) हज़रत सलमा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) के पास एक जनाज़ा लाया गया ताकि आप उसकी नमाज़े-जनाज़ा पढ़ें। नबी (सल्ल॰) कहा, "क्या इसके ज़िम्मे कोई क़र्ज़ है?" लोगों ने कहा कि नहीं, तो आपने उसके जनाज़े की नमाज़ पढ़ी। फिर एक दूसरा जनाज़ा लाया गया। आपने पूछा, "क्या इसके ज़िम्मे कोई क़र्ज़ है?" लोगों ने कहा कि हाँ। आपने कहा, "तुम अपने साथी के जनाज़े की नमाज़ पढ़ लो।" हज़रत अबू-क़तादा (रज़ि॰) ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल इसका क़र्ज़ अपने ज़िम्मे लेता हूँ तो आप (सल्ल॰) ने उसकी जनाज़े की नमाज़ पढ़ी।

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : सहीह बुख़ारी में है कि एक क़र्ज़दार व्यक्ति का निधन हो गया। उसके तरका (पीछे छोड़ी हुई सम्पत्ति) में भी ऐसा कुछ न था कि उससे उसका क़र्ज़ चुकाया जा सकता। नबी (सल्ल॰) उसके जनाज़े की नमाज़ पढ़ने से रुक गए और कहा कि तुममें से कोई व्यक्ति इसके क़र्ज़ की ज़मानत ले ले, इसी स्थिति में मैं इसके जनाज़े की नमाज़ पढ़ूँगा।

ज़मान यह है कि किसी व्यक्ति पर साबित होनेवाले हक़ को अदा करने की ज़िम्मेदारी कोई दूसरा व्यक्ति लेले। ज़मान का मामला केवल उस हक़ के सिलसिले में ही नहीं किया जा सकता जो साबित हो बल्कि भविष्य में साबित होनेवाले हक़ (जैसे इनाम देने की ज़िम्मेदारी) के सिलसिले में भी किया जा सकता है।

समझौता एवं सन्धि

(1) हज़रत अम्र-बिन-औफ़ मुज़नी (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "मुसलमानों के बीच समझौता जाइज़ है। सिवाय उस समझौते के जो हलाल को हराम या हराम को हलाल

कर देने का कारण बने। और मुसलमानों के लिए अपनी शर्तों की पाबन्दी करनी अनिवार्य है सिवाय उस शर्त के जो हलाल को हराम या हराम को हलाल कर दे।"

(हदीस : तिरमिज़ी, इब्ने-माजा, अबू-दाऊद)

व्याख्या : समझौते के कई रूप सम्भव हैं। किसी व्यक्ति ने किसी पर अपने किसी हक़ का दावा किया और उसने उसे स्वीकार कर लिया। अब मुद्दई अगर अपने दावे में से कुछ घटा दे या कुछ दे दे या उसके अतिरिक्त कोई और चीज़ दे दे तो वैध है। यह भी संभव है कि कोई किसी पर अपने हक़ का दावा करे, लेकिन प्रतिवादी उसे स्वीकार न करे फिर भी झगड़े और क़सम से बचने के लिए वह मुद्दई को कुछ दे दे। यह भी हो सकता है कि जिसपर दावा किया गया हो, वह न तो स्वीकार करे और न इनकार करे मगर मुद्दई को कुछ देकर दावा समाप्त कराकर झगड़े को समाप्त कर दे। सुलह और समझौते की ये सभी शक्लें दुरुस्त हैं।

सुलह में जो चीज़ दी जाती है उसके आदेश क्रय-विक्रय की तरह हैं। उसमें अगर ऐब है तो उसे रद्द किया जा सकता है और यदि अविभाजित हिस्सा है तो उसके दूसरे हिस्सेदार शुफ़आ कर सकेंगे।

यहाँ यह बात भी जान लेने की है कि एक पक्ष यदि झूठा है तो समझौते के तौर पर वह जो कुछ लेगा, वह उसके लिए वैध नहीं हो जाएगा, वह उसके लिए अवैध ही रहेगा।

हवाला

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मालदार व्यक्ति का क़र्ज़ चुकाने में विलम्ब करना ज़ुल्म है। और जब तुममें से किसी (के क़र्ज़) को मालदार के हवाले किया जाए तो स्वीकार कर लेना चाहिए।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : एक रिवायत के शब्द ये हैं, "मालदार का क़र्ज़ चुकाने में विलम्ब करना ज़ुल्म है और जब तुम मालदार के हवाले किए जाओ तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिए।"

इस हदीस से मालूम हुआ कि क़र्ज़ को हवाले करना वैध है। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति के ज़िम्मे किसी का क़र्ज़ है और उस ऋणी का एक और अन्य व्यक्ति ऋणी है। अब यदि वह उस व्यक्ति से जिसका ऋण उसके ज़िम्मे है कहता है कि यह ऋण तुम मेरे ऋण से वुसूल कर लो और वह उसे स्वीकार कर ले तो ऋणी की ज़िम्मेदारी ख़त्म हो जाएगी। अलबत्ता यह ज़रूरी है कि ऋण जिसके हवाले किया जा रहा है वह मालदार हो। अर्थात् ऋण को अदा करने का सामर्थ्य उसे प्राप्त हो। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने कहा, "जब तुममें से किसी (के ऋण) को मालदार के हवाले किया जाए तो उसे स्वीकार कर लेना चाहिए।" (असहाबुस्सुनन) हवाले का नियम वास्तव में लोगों में आसानी पैदा करने के उद्देश्य से वैध रखा गया है।

झाड़-फूँक का पारिश्रमिक

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) के सहाबा के एक दल का एक बस्ती पर गुज़र हुआ जिसमें किसी को साँप ने काट लिया था या बिच्छू ने डंक मारा था। उस बस्ती का एक व्यक्ति मिला और उसने कहा कि क्या तुममें कोई झाड़-फूँक करनेवाला है? हमारी बस्ती में एक व्यक्ति को साँप ने काट लिया है या कहा कि बिच्छू ने डंक मारा है। सहाबा के दल में से एक व्यक्ति गए और बस्ती में पहुँचकर कुछ बकरियाँ बदले के रूप में निश्चित करके उस काटे हुए व्यक्ति पर सूरह फ़ातिहा पढ़कर फूँका। वह बिलकुल अच्छा हो गया। ये साहब निश्चित बकरियाँ लेकर अपने साथियों के पास आ गए तो उन्होंने इसे बुरा समझा और कहा कि तुमने अल्लाह की किताब

पढ़ने का पारिश्रमिक ले लिया। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) (को जब ख़बर मिली तो आप) ने कहा, "अल्लाह की किताब इसकी ज़्यादा हक़दार है कि उसपर पारिश्रमिक लो।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मूल में शब्द "लदीग़ और सलीम" प्रयुक्त हुआ है। दोनों के अर्थ एक ही हैं अर्थात् साँप का डसा हुआ। लेकिन अधिकतर शब्द 'लदीग़' उस व्यक्ति के लिए प्रयोग करते हैं जिसको बिच्छू ने डंक मारा हो और सलीम का प्रयोग उसके लिए होता है जिसे साँप ने डस लिया हो।

इस हदीस से मालूम हुआ कि अल्लाह की आयतों में यह प्रभाव भी पाया जाता है कि उससे बीमार को स्वास्थ्य-लाभ हो और यह भी मालूम हुआ कि झाड़-फूँक पर पारिश्रमिक ले सकते हैं। मुसनद अहमद और सुनन अबी-दाऊद नामक हदीस की पुस्तकों में भी एक घटना का वर्णन किया गया है कि एक सफ़र में एक पागल व्यक्ति पर दम करवाया गया (अर्थात् उसपर फूँक मारी गई)। एक सहाबी ने सूरा अल-फ़ातिहा पढ़कर सुबह व शाम तीन दिन तक दम किया और वह पागल अच्छा हो गया। उन्होंने उसका पारिश्रमिक लिया और नबी (सल्ल॰) ने इसे वैध ठहराया। लेकिन बिना पारिश्रमिक लिए ख़ुदा के बन्दों की सेवा की जाए तो यह अधिक अच्छा है।

(2) हज़रत शिफ़ा-बिन्ते-अब्दुल्लाह बयान करती हैं कि मैं हज़रत हफ़सा (रज़ि॰) के पास थी कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) अन्दर तशरीफ़ लाए और (मुझसे) कहा, "तुम इन्हें (हफ़सा को) नमला का मन्त्र क्यों नहीं सिखा देतीं जिस तरह तुमने इन्हें लिखना सिखाया है?" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अस्ल नाम लैला था, लक़ब (उपनाम) शिफ़ा था। अपने इसी लक़ब से प्रसिद्ध हुईं।

नमला उन फुनसियों को कहते हैं जो पसलियों पर निकल आती हैं और बहुत कष्टदायक होती हैं। हज़रत शिफ़ा मक्का में इस रोग को दूर करने के लिए कुछ पढ़कर झाड़-फूँक करती थीं। उन्होनें ईमान लाने के बाद नबी (सल्ल॰) को वह मन्त्र जिसे पढ़कर वे फूँकती थीं, सुनाया थां। नबी (सल्ल॰) ने उसे सुनकर उसके द्वारा झाड़-फूँक करने की अनुमति उन्हें दे दी थी इसलिए कि उसमें कोई शिर्कवाली बात न थी।

सम्पत्ति-अधिकार की सुरक्षा

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना कि, "जो व्यक्ति अपने माल की सुरक्षा करते हुए मारा जाए वह शहीद है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् जो व्यक्ति अपने माल और संसाधन की सुरक्षा में मारा गया तो उसे शहीद का दरजा प्राप्त होगा। यही आदेश उस व्यक्ति के लिए भी है जो अपने परिवार-जनों की सुरक्षा करता हुआ मारा जाए।

(2) हज़रत समुरा-बिन-जुन्दुब (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिसने अपना माल ज्यों का त्यों किसी के पास पाया तो उस माल का वही ज़्यादा हक़दार है, और जिसने उस माल को ख़रीदा है वह बेचनेवाले को पकड़े और उसपर अपनी माँग का दावा करे।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् जिस व्यक्ति से उसने माल ख़रीदा हो उसके विरुद्ध दावा करे।

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक व्यक्ति ने उपस्थित होकर कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, मुझे बताएँ कि कोई मेरा माल छीनना चाहे (तो क्या मैं उसे अपना माल दे दूँ) कहा,

"नहीं, तुम उसे अपना माल न दो।" उसने कहा कि यह बताइए कि यदि मुझसे लड़े? आप (सल्ल०) ने कहा, "तुम भी उससे लड़ो।" उसने कहा कि अगर वह मुझे मार डाले? कहा, "तुम शहीद होगे।" उसने कहा कि अच्छा यह बताइए कि अगर मैंने उसे मार डाला? कहा, "वह दोज़ख़ में जाएगा।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इससे मालूम हुआ कि मुसलमानों को अपने माल और जान और इज़्ज़त-आबरू की सुरक्षा करनी चाहिए। और जो व्यक्ति उसके माल को लूटना चाहता है उसका पूरी शक्ति और पुरुषार्थ के साथ मुक़ाबला करे। यदि वह इस मुक़ाबले में मारा जाता है तो शहीद का दरजा प्राप्त करेगा और यदि फ़सादी मारा जाता है जो उसे तबाह करने पर उतारू है तो वह जहन्नम में जाएगा।

लुक़्ता (पड़ी हुई चीज़ का उठाना)

(1) हज़रत ज़ैद-बिन-ख़ालिद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जो व्यक्ति (किसी की) खोई हुई चीज़ को उठाकर घर में रख ले तो वह स्वयं भटक गया, जब तक कि वह उसका विज्ञापन न दे दे।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यह एक महत्त्वपूर्ण हदीस है। यह हदीस बताती है कि दुनिया में इनसान की पोज़ीशन अत्यन्त नाज़ुक है। इनसान जब भी कोई कर्म करता या किसी मामले में कोई नीति अपनाता है तो वास्तव में वह अपने व्यक्तित्व और स्वयं को दाँव पर लगा रहा होता है। अब अगर उसका मामला और उसकी नीति न्याय पर आधारित होगी तो वह अपने आपको तबाही से बचा लेगा। और यदि इसके विपरीत नीति अपनाता है तो वह अपने आपको गँवा बैठेगा। और इससे बढ़कर किसी घाटे की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ किसी की खोई हुई चीज़ या किसी के भटके हुए जानवर को वह अपने क़ब्ज़े में ले लेता है और

उसे उसके वास्तविक मालिक तक पहुँचाने की उसे कोई चिन्ता नहीं होती तो किसी की तो एक चीज़ या जानवर ही गुम हुआ था, यहाँ यह स्वयं अपने आपको खो बैठा। हदीस की पुस्तक अबू-दाऊद में हज़रत जरीर (रज़ि॰) कहते हैं कि, "भटके हुए जानवर आदि को वही अपने घर में रख लेता है जो स्वयं भटका हुआ हो।"

> "What shall it profit a man if he shall gain the whole world and lose his soul."
>
> (इससे किसी व्यक्ति को क्या लाभ पहुँच सकता है, यदि उसने सारी दुनिया हासिल कर ली किन्तु अपनी आत्मा को गँवा बैठा।)

(2) हज़रत इयाज़-बिन-हिमार (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति कोई गिरी हुई चीज़ पाए तो चाहिए कि वह किसी न्यायप्रिय व्यक्ति को या (कहा कि) दो न्यायप्रिय व्यक्तियों को उसपर गवाह बना ले। न तो उस (पड़ी हुई चीज़) को छुपाए और न उसे (किसी दूसरी जगह भेजकर) ग़ायब करे। फिर उसका मालिक आ जाए तो उसको उसे सौंप दे, और यदि उसका मालिक न आए तो फिर वह अल्लाह का माल है, जिसको चाहे उसे दिलाए।"

(हदीस : मुसनद अहमद, अबू-दाऊद, दारमी)

व्याख्या : वह गवाह बना ले कि मैं यह चीज़ सुरक्षा की दृष्टि से या उसके मालिक तक पहुँचाने के उद्देश्य से उठा रहा हूँ। अब यह पड़ी हुई चीज़ उसके पास अमानत के तौर पर रहेगी।

उस चीज़ पर क़ब्ज़ा करने के उद्देश्य से न तो उसको छुपाए और न दूसरी जगह कहीं दूर भेजकर ग़ायब करे। वह उसका विज्ञापन और एलान इतनी अवधि तक करता रहे जब तक कि यह विश्वास न हो जाए कि अब उसकी माँग करनेवाला नहीं आएगा। अगर विज्ञापन की

अवधि में उसका मालिक आ जाता है तो उसको उसकी चीज़ दे दी जाएगी, और अगर वह नहीं आता तो बेहतर है कि उस चीज़ को दान कर दे। इसके बाद यदि मालिक आ जाता है तो वह तावान (हर्जाना) ले सकता है या उस व्यक्ति से अपनी चीज़ वापस ले सकता है जिसको वह चीज़ दान के तौर पर दी गई हो। इसका विस्तृत विवरण फ़िक़्ह की किताबों में देखा जा सकता है।

धन का उपभोग और वितरण

इन्फ़ाक़ (भले कामों में ख़र्च करने) का महत्व

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "अल्लाह कहता है कि तुम ख़र्च करो, मैं तुम पर ख़र्च करूँगा।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : माल इसलिए होता है कि इस्तेमाल में आए। दौलत अपने आप में सवयं लक्ष्य नहीं होती। इस हदीस में लोगों को इन्फ़ाक़ अर्थात भले कामों में ख़र्च करने की प्रेरणा दी गई है और कहा गया है कि माल ख़र्च करने में इसका भय नहीं होना चाहिए कि हम दरिद्र हो जाएँगे। माल अल्लाह ही का दिया हुआ होता है और उसके प्रदान का सिलसिला समाप्त नहीं होता। हम यदि उदारता और दानशीलता से काम लेंगे तो अल्लाह अपनी दानशीलता और कृपा से हमें और देगा।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "सबसे उत्तम सदक़ा (दान) वह है कि सद्क़ा देनेवाले की मालदारी क़ायम रहे। और ऊपरवाला हाथ नीचे के हाथ से उत्तम है। और आरम्भ अपने घरवालों से करो।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : ऊपरवाले हाथ से अभिप्रेत ख़र्च करनेवाला और देनेवाला हाथ है।

इस हदीस में भी इन्फ़ाक़ की श्रेष्ठता का वर्णन हुआ है। यदि किसी व्यक्ति को अल्लाह ने इसका अवसर दिया है कि वह अपने हाथ से लोगों पर ख़र्च कर सके तो यह उसके लिए श्रेय और प्रतिष्ठा की बात है। अलबत्ता ख़र्च का आरम्भ उन लोगों से करना चाहिए जिनके

पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी उस पर आती हो। ऐसा न हो कि आम लोगों पर तो अपना माल ख़र्च किया जाए लेकिन परिवार के लोग उपेक्षित होकर रह जाएँ। घरवालों के हक़ को प्रत्येक दशा में प्राथमिकता प्राप्त है।

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "विधवाओं और दीन-दुखियों के लिए मेहनत-मज़दूरी करनेवाला अल्लाह की राह में जिहाद करनेवाले या रात में इबादत करनेवाले, दिन में रोज़ा रखनेवाले की तरह है।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : निर्धन और मुहताज लोगों की मौलिक आवश्यकताओं को पूरा करना समाज की ज़िम्मेदारी है। मुहताजों और ज़रूरतमन्दों की ज़रूरत पूरी करने के लिए यदि कोई प्रयत्नशील होता है और इसके लिए मेहनत और मशक़्क़त सहन करता है तो इस्लाम की निगाह में यह भी अल्लाह की राह में जिहाद और रोज़े और रातों में उठकर अल्लाह की इबादत जैसा काम है। इसे किसी नेकी से कम दरजे की नेकी नहीं समझना चाहिए।

(4) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने भाषण दिया और कहा, "लालच और कंजूसी से बचो। तुमसे पहले के लोग इस लोभ और कृपणता के कारण तबाह हुए। लोभ ने उन्हें कृपणता पर उभारा और वे कृपण (कंजूस) हो गए। इसने उन्हें नाता-रिश्ता तोड़ने पर उभारा और उन्होंने नाते-रिश्ते को तोड़ डाला। इसने उन्हें ईश्वर की अवज्ञा और गुनाह पर उभारा और वे अवज्ञाकारी और गुनाहगार बनकर रह गए।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : तंगदिली और लोभ-लालच के रोग में ग्रस्त व्यक्ति कभी भी उन ज़िम्मेदारियों का बोझ नहीं उठा सकता जो ज़िम्मेदारियाँ उसपर

आती हैं। इस्लाम के जीवन-मार्ग पर चलना उसी दशा में सम्भव होता है जबकि आदमी को लोभ और कृपणता जैसा अनैतिक रोग लगा हुआ न हो। इस्लाम का प्रतीक दानशीलता और उत्सर्ग है। अगर आदमी के अन्दर तंगदिली आई तो वह कृपण होकर रहेगा। फिर उससे किसी भलाई की आशा नहीं की जा सकती। ऐसा व्यक्ति निकट-सम्बन्धों के हक़ की ओर से बेपरवाह हो गया। उसे कभी भी नातेदारों के हक़ याद नहीं आ सकते। बस उसे चिन्ता होगी तो केवल इसकी कि उसका धन अधिक से अधिक बढ़ जाए। चाहे इसके लिए ईश्वरीय मर्यादाओं का ही उल्लंघन क्यों न करना पड़े। धन ही उसके लिए सब कुछ होगा। उसे जीवन के उच्चतम मूल्यों से कोई दिलचस्पी न होगी। उसे न अपने पद के कर्त्तव्य याद रह सकते हैं और न आम इनसानों के मार्गदर्शन और उनकी भलाई के कामों के लिए उसके पास कोई समय होगा। फिर ऐसे व्यक्ति के तबाह-बरबाद होने में क्या शेष रह जाता है। व्यक्तियों से आगे बढ़कर अगर कोई जाति या राष्ट्र इस रोग में ग्रस्त हो जाए तो उसे भी तबाही से कोई नहीं बचा सकता।

अवैध ख़र्च

(1) हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जिसने सोने या चाँदी के बरतन में पिया उसने अपने पेट में ग़ट-ग़ट करके जहन्नम की आग भरी।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : सोने या चाँदी का ज़ेवर स्त्री पहन सकती है, लेकिन सोने या चाँदी के बरतनों में खाना-पीना स्त्री हो या पुरुष दोनों के लिए अवैध है। इस्लाम इसे पसन्द नहीं करता कि ख़ुदा ने अगर किसी को धन दिया है तो वह उसे भोग-विलास में ख़र्च करने लग जाए। आदमी की कोशिश यह होनी चाहिए कि उसके धन का अधिक से अधिक भाग सार्वजनिक हित और भलाई के कामों में ख़र्च हो। इस्लाम की विशिष्टता

यह है कि उसने आर्थिक मामलों का सम्बन्ध धर्म और नैतिकता से जोड़ दिया है। उसने आर्थिक विषय को नैतिक और धार्मिक अपेक्षाओं से मुक्त नहीं रखा है। धन का सबसे अच्छा उपभोग यह है कि उससे अधिक से अधिक धर्म और मानवीय नैतिकता की अपेक्षाएँ पूरी हो सकें। वह धनवान कितना भाग्यवान है कि जिसके धन का बड़ा भाग अल्लाह के बन्दों की सेवा और सत्य-धर्म के ऊँचा उठाने के कामों में ख़र्च हो रहा हो।

(2) हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना है कि "रेशम और दीबाज न पहनो और न सोने-चाँदी के बरतन में पानी पियो और न उनकी प्लेटों में खाना खाओ। इसलिए कि ये दुनिया में अधर्मियों के लिए हैं और हमारे लिए आख़िरत में।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अधर्मियों के लिए केवल दुनिया है। उनके समक्ष सामान्यतः दुनिया ही होती है। आख़िरत (परलोक) के शाश्वत जीवन का वे सपना भी नहीं देखते। मोमिनों का हाल उनसे बिल्कुल भिन्न होता है। मोमिनों के सामने मूलतः दुनिया नहीं, आख़िरत की ज़िन्दगी होती है। इसलिए वे उसी के लिए चिन्ता-ग्रस्त हैं कि उन्हें आख़िरत में प्रतिष्ठा और सफलता प्राप्त हो। वे अपनी बहुत-सी कामनाओं की पूर्ति के लिए आख़िरत की प्रतीक्षा कर रहे होते हैं। यह चीज़ उन्हें कितनी ही चीज़ों से बेपरवाह कर देती है। उनकी शक्ति और ऊर्जा उन चीज़ों में ख़र्च होकर नहीं रह जाती जिसे दुनिया कहते हैं। दुनिया कितनी ही सुन्दर और आकर्षक हो, किन्तु है वह क्षणभंगुर और समाप्त होने वाली। यह एक ऐसा ऐब उसके साथ लगा हुआ है जिसे किसी चीज़ से दूर नहीं किया जा सकता। न रेशमी पोशाकों और सोने-चाँदी के बरतनों से इस ऐब का निवारण हो सकता है और न अन्य साज़ व सामान इस कमी को दूर कर सकते हैं।

(3) हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने उनसे कहा, "एक बिस्तर आदमी के लिए चाहिए और एक बिस्तर उसकी पत्नी के लिए और एक बिस्तर मेहमान के लिए चाहिए और चौथा शैतान का होगा।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यदि किसी के यहाँ एक से अधिक मेहमान की आमद रहती हो तो वह इसको ध्यान में रखते हुए एक से अधिक बिस्तर मेहमानों के लिए रख सकता है। हदीस का मूल उद्देश्य यह है कि अनावश्यक साज़ो-सामान इकट्ठा करना और उनपर रुपये ख़र्च करना इस्लाम की प्रकृति से मेल नहीं खाता। इससे शैतान के उद्देश्य ही पूरे होते हैं। शैतान मनुष्य को अपव्यय में ग्रस्त देखना चाहता है ताकि वह उसे जीवन के मूल उद्देश्य से विमुख और विस्मृत रख सके और उसे दुनिया ही की उधेड़बुन में व्यस्त रखे। अनावश्यक साज़ो-सामान अगर कोई व्यक्ति मात्र दिखावे के लिए एकत्र, करता है, ताकि वह इस प्रकार लोगों पर अपनी श्रेष्ठता और बड़ाई का प्रदर्शन करे, तो इसके हराम होने में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता।

माल को बरबाद करना

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अल्लाह तआला तुम्हारे लिए तीन चीज़ों को पसन्द करता और तीन चीज़ों को तुम्हारे लिए नापसन्द करता है। वह तुम्हारे लिए पसन्द करता है कि तुम उसकी बन्दगी करो, और उसके साथ किसी चीज़ को शरीक न करो, और तुम सब मिलकर अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से पकड़ लो और गरोहों में न बँटो, और वह तुम्हारे लिए जिन चीज़ों को नापसन्द करता है वे हैं : वाद-विवाद करना, अधिक प्रश्न करना और माल को बरबाद करना।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यह एक अत्यन्त संग्राहक हदीस है। इसमें हर प्रकार के फ़ितनों से बचने की ताकीद की गई है, चाहे उनका सम्बन्ध विचारधाराओं और आस्थाओं से हो या उनका सम्बन्ध आदमी के व्यवहार और आचरण से हो।

गुटबन्दी और फूट डालना इस्लाम में घोर अपराध है। क़ुरआन में इससे रोका गया है कि मुसलमान गरोह-गरोह होकर रह जाएँ और उनकी एकता बिखरकर टुकड़े-टुकड़े होकर रह जाए। अतएव कहा गया है, "दीन को क़ायम रखो और उसके विषय में अलग-अलग न हो जाओ," (क़ुरआन, 42:13)। "और सब मिलकर अल्लाह की रस्सी को दृढ़ता से पकड़ लो और विभेद में न पड़ो," (क़ुरआन, 3:103)। "उन लोगों की तरह न हो जाना जो विभेद में पड़ गए और इसके पश्चात कि उनके पास खुली निशानियाँ आ चुकी थीं वे मतभेद में पड़ गए, ये वही हैं जिनके लिए बड़ी यातना है," (क़ुरआन, 3:105)। "जिन लोगों ने अपने दीन को टुकड़े-टुकड़े कर दिया और स्वयं गरोहों में बँट गए, तुम्हारा उनसे कोई सम्बन्ध नहीं।" (क़ुरआन, 6:159)

यहाँ एक बात ध्यान में रहे कि मतभेद दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार का मतभेद तो यह है कि बुनियादी और मौलिक सिद्धान्तों में सब सहमत हों, किन्तु कुछ अमौलिक और गौण बातों में उनके बीच मतभेद पाया जाए। इस प्रकार का मतभेद स्वाभाविक और जीवन का लक्षण है। इसके कारण समुदाय टुकड़ों में विभक्त नहीं हो सकता। इस प्रकार के मतभेद के बावुजूद लोग संगठित रह सकते हैं। कोई किसी को दीन से बाहर नहीं समझ सकता। दूसरे प्रकार का मतभेद यह है कि दीन के अमौलिक और गौण मतभेद को लोग दीन का मौलिक विषय ठहरा लें और इसके परिणामस्वरूप एक-दूसरे को बेदीन (अधर्मी) और गुमराह समझने लग जाएँ। यदि अमौलिक और गौण मामलों में पाए जानेवाले मतभेद को दीन का मतभेद ठहरा दिया जाए तो इसे एक दुखद दुर्घटना

ही कहा जाएगा। इसको दीन की प्रवृत्ति और उसकी मूल प्रकृति से अनभिज्ञ होने का दुखद परिणाम ही कहा जा सकता है। अमौलिक और गौण मामलों में मतभेद की पूरी गुंजाइश पाई जाती है और यह दीन के सत्य और स्वाभाविक दीन होने का स्पष्ट प्रमाण है। इस प्रकार के मतभेद को समाप्त कर देने के बाद ज्ञान एवं चिन्तन के विकास की कोई सम्भावना शेष नहीं रहती और यह मुस्लिम समुदाय के लिए अत्यन्त हानिकारक है।

क़ुरआन और सुन्नत ने मूल और आधारभूत मामलों में किसी मतभेद की गुंजाइश बाक़ी नहीं रखी है। और यह इस्लाम के सत्य धर्म होने का स्पष्ट प्रमाण है। गौण मामलों में पाया जानेवाला मतभेद पथभ्रष्टता और गुमराही हरगिज़ नहीं है। दीन में फूट डालना वास्तव में गुमराही और घोर अपराध है। दीन के मूल और आधारभूत सिद्धान्तों में मतभेद पैदा करना और उनको स्वीकार करने से इनकार करना जघन्य अपराध है। इसी प्रकार के अपराध की ओर इस आयत में संकेत किया गया है, "जिन लोगों ने अपने दीन को टुकड़े-टुकड़े कर दिया और (इसके परिणामस्वरूप) स्वयं गरोहों में बँट गए, तुम्हारा उनसे कोई सम्बन्ध नहीं।" (क़ुरआन, 6:159)

किसी विषय में अनावश्यक वाद-विवाद और हुज्जतबाज़ी तथा किसी चीज़ में बे-मतलब ऐब तलाश करने की आदत इस्लाम को पसन्द नहीं है। यह वास्तव में एक मानसिक रोग और मनोविकार है। जितना शीघ्र सम्भव हो आदमी को इससे छुटकारा पाने की चिन्ता करनी चाहिए। अधिक प्रश्न करने से भी इनसान की अपनी दुर्बलता प्रकट होती है। जहाँ तक सम्भव हो आदमी को ख़ुद पर भरोसा करना चाहिए। प्रश्नों की अधिकता चाहे धार्मिक मसलों के सम्बन्ध में हो या आर्थिक सहायता की प्राप्ति के लिए हो, दोनों ही स्थितियों में यह अप्रिय है। इसको प्रोत्साहन कदापि नहीं मिलना चाहिए। इसके प्रोत्साहन से

समाज में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बढ़ेगी जो किसी भी समाज के लिए हमेशा सिर दर्द बनते रहे हैं।

माल बरबाद करना माल का अनादर ही नहीं है बल्कि यह कृतज्ञता की भावना के भी विपरीत है। अल्लाह के दिए हुए माल को बरबाद करना लापरवाही और अनुत्तरदायित्वपूर्ण काम है। अगर किसी के पास अपनी आवश्यकता से अधिक माल है तो वह माल को बरबाद करने के बदले उससे ज़रूरतमन्दों की ज़रूरत पूरी कर सकता है। यह माल का उत्तम उपयोग है। काश लोगों को इसका एहसास हो!

माल की तरह समय भी एक बहुमूल्य पूँजी है जिसकी साधारणतया उपेक्षा की जाती है। आदमी के लिए समय बरबाद करने को भी किसी अपराध से कम नहीं समझना चाहिए।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "आदमी के गुनाहगार होने के लिए यही काफ़ी है कि जिनकी रोज़ी उसके ज़िम्मे है वह उनकी रोज़ी को बरबाद करे।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् किसी व्यक्ति की गणना गुनाहगारों में हो इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह हत्या, डाकाज़नी और धरती में बिगाड़ पैदा करने जैसे घृणित अपराध ही करे। आदमी के लिए यह गुनाह भी कोई हलका और साधारण गुनाह नहीं है कि जिन लोगों का भरण-पोषण उसके ज़िम्मे हो वह उनकी चिन्ता से उन्मुक्त होकर माल कहीं और ख़र्च करने लगे और लोगों को उनके अपने हक़ से वंचित रखे।

(3) हज़रत जाबिर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना कि, शैतान तुममें से हर व्यक्ति के पास उसके हर एक काम के समय उपस्थित होता है, यहाँ तक कि उसके

खाने के समय भी उपस्थित होता है। जब तुममें से किसी का लुक़मा गिर जाए तो चाहिए कि (उसे उठाले और गर्द-धूल आदि) जो चीज़ उसे लग गई हो उसको साफ़ करके खा ले, उसे शैतान के लिए न छोड़े। और जब खाना खा चुके तो उसे चाहिए कि अपनी उँगलियाँ चाट ले, क्योंकि वह नहीं जानता कि उसके खाने के किस भाग में बरकत है। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : खाने का एक लुक़मा बरबाद होने देना देखने में अत्यन्त साधारण बात है, किन्तु हक़ीक़त यह है कि इससे माल के बरबाद होने की बुराई का एहसास कमज़ोर होने लगता है। और फिर इससे इनसान माल बरबाद करने का अभ्यस्त हो सकता है। इसलिए पहले ही क़दम पर जहाँ से बुराई का आरम्भ हो सकता है चेतावनी दी गई और कहा गया कि तुम्हारी चेष्टा यह हो कि तुम्हारा खाने का एक लुक़मा तक बरबाद न होने पाए। इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि माल बरबाद करने से शैतान के उद्देश्य ही को बल प्राप्त होता है।

फिर गिरे हुए लुक़मे को निकृष्ट समझकर न उठाना अभिमानी लोगों का तरीक़ा है, क्योंकि वे इसको अपने लिए अपमानजनक समझते हैं कि दस्तरख़ान या हाथ से गिरे हुए लुक़मे को उठाकर खाएँ। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अभिमानपूर्ण कर्म शैतान ही के कर्म हो सकते हैं। आश्चर्य होता है कि जिस समुदाय के पैग़म्बर की यह शिक्षा हो, उसके लोग किस प्रकार अत्यन्त क्रूरता के साथ ग़ैर-इस्लामी रस्मों और निरर्थक कामों में अपना माल बरबाद करते हुए दिखाई देते हैं और उन्हें इसका एहसास तक नहीं होता कि वे अपने रसूल (सल्ल॰) की पवित्र शिक्षाओं का हनन कर रहे हैं।

खाना खाने के बाद हाथ धोने से पहले अपनी उंगलियों (और बरतन को भी) चाट लेना चाहिए ताकि अल्लाह की दी हुई आजीविका का आदर और विनम्रता और विनीत भाव का प्रदर्शन हो, तथा अभिमान

और अहंकार की छाया तक शेष न रहे। फिर किसी को क्या मालूम कि अल्लाह के प्रदान किए हुए अन्न में से उसका कौन-सा भाग उसके लिए अधिक बरकत का कारण हो सकता है। इसलिए रोज़ी का कोई भाग भी चाहे वह उंगलियों से लगा हुआ मामूली अन्न ही क्यों न हो उसकी भी उपेक्षा न करे।

सन्तुलित और मध्यम मार्ग

(1) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, ख़र्च में मध्य मार्ग अपनाना अर्द्ध आजीविका है, और इनसानों से दोस्ती अर्द्ध बुद्धिमत्ता है और सुन्दर ढंग से प्रश्न करना आधा ज्ञान है।"

(हदीस : बैहक़ी—शोबुल-ईमान)

व्याख्या : एक अन्य हदीस में है कि "अपनी आजीविका में मध्य मार्ग और सन्तुलन धारण करना आदमी के समझदार होने के लक्षणों में से एक लक्षण है।" (हदीस : अहमद, तबरानी, अबू-दरदा से उल्लिखित) आमदनी और ख़र्च में सन्तुलन हो तो यह आजीविका और आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करता है। इसके विपरीत यदि आमदनी और ख़र्चों के बीच सन्तुलन शेष न रहे तो आदमी की आर्थिक दशा कभी ठीक नहीं रह सकती। वह अनिवार्यतः तरह-तरह की परेशानियों में ग्रस्त रहेगा और उसकी सारी अर्थ-व्यवस्था तितर-बितर होकर रह जाएगी। ख़र्च में अगर सन्तुलन और मध्य-मार्ग को ध्यान में रखा जाए तो समझिए अर्थ-व्यवस्था का आधा भाग दुरुस्त हो गया। शेष आधे का सम्बन्ध आजीविका के प्रयास से है। मतलब यह कि आदमी रोज़ी अर्थात अल्लाह की कृपा की तलाश में लगा रहे। हाथ पर हाथ धरे बैठा न रहे। यह कार्य-कारण की दुनिया है। आजीविका की प्राप्ति के लिए वैध तरीक़े और संसाधन अपनाना आदमी का परम कर्त्तव्य है।

लोगों से हमारा सम्बन्ध मात्र औपचारिकता का शुष्क सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार वाटिका के फूलों की रंगीनी और उनकी सुन्दरता के कारण उनमें एक विशिष्ट प्रकार का आकर्षण उत्पन्न हो जाता है, ठीक उसी प्रकार मानव के अस्तित्व को जो चीज़ आकर्षक बनाती है और जिसके कारण उसका जीवन और उसके समाज में रौनक़ और सुन्दरता पैदा होती है वह प्रेम-भावना है। प्रेम की भावना ही है जो मानव को महानताओं से अवगत कराती है और सामान्य प्राणियों की तुलना में उसे एक विशिष्ट गौरव प्रदान करती है। इसलिए इसमें कोई सन्देह नहीं कि आधे विवेक और बुद्धिमत्ता का सम्बन्ध इसी से है कि इनसान लोगों से प्रेम रखे। यदि अपनी सूझबूझ और चेतना के द्वारा वह कपट, शत्रुता और घृणा की भावनाएँ ही प्राप्त कर पाया है और इन ही भावनाओं के साथ वह अपना जीवन व्यतीत करता है तो वह बुद्धिमत्ता से कोरा है।

बौद्धिकता की अर्द्ध अपेक्षाएँ तो प्रेम ही के द्वारा पूरी हो जाती हैं, लेकिन बुद्धि की अपेक्षाएँ कुछ और भी होती हैं। उदाहरणार्थ जीवन के कार्यक्षेत्र में कार्यरत रहना और संसार में न्याय की स्थापना के लिए प्रयत्नशील रहना आदि। यदि इनसान इन सभी अपेक्षाओं को समझता और इनके पूरा करने की चिन्ता में रहता है तो समझ लेना चाहिए कि उसकी बुद्धि पूर्ण है। वह बुद्धिहीनता और किसी प्रकार की नासमझी में ग्रस्त नहीं है।

यह बड़ी ही गहरी बात है कि अच्छे और भले तरीक़े के साथ प्रश्न करना आधा ज्ञान है। जो व्यक्ति ज्ञान के भाव और प्रवृत्ति से परिचित होगा उसके विचार और धारणाएँ संयत और व्यवस्थित होंगी। उसकी धारणाओं में गहराई और व्यापकता पाई जाएगी। ऐसे व्यक्ति का कोई प्रश्न भी महत्वहीन नहीं हो सकता और न ही उसका प्रश्न सतही क़िस्म का हो सकता। वह ज्ञानवान के समक्ष जो प्रश्न भी रखेगा, वह

अनिवार्यतः सूझबूझ पर आधारित होगा। उसपर चिन्तन-मनन करने से धार्मिक आदेशों के बहुत-से ऐसे पक्षों के सामने आने की सम्भावनाएँ उत्पन्न होंगी जो साधारणतया दृष्टि से ओझल होती हैं। इस प्रकार के प्रश्नों से धार्मिक समस्याओं के हल करने की योग्यताओं में निखार आता है। किन्तु बहुमूल्य प्रश्न उस व्यक्ति के हो सकते हैं जो स्वयं ज्ञानात्मक अभिरुचि रखता हो और उसके सोचने का ढंग वैज्ञानिक हो। ऐसे व्यक्ति के बारे में यही कहा जाएगा कि ज्ञान की आधी दौलत तो उसे पहले से प्राप्त है। अब अध्ययन और विद्वानों की संगति आदि के द्वारा वह अपने ज्ञान को पूर्णता की सीमा तक पहुँचा सकता है।

जमाख़ोरी

(1) हज़रत मअमर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जमाख़ोरी तो बस ख़ताकार (दोषी) ही करता है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मँहगे दामों पर बेचने के इरादे से अनाज आदि के जमा करने को एहतिकार (जमाख़ोरी) कहते हैं। यदि लोग परेशान हैं, उनको खाने के लिए अनाज की आवश्यकता है और कोई व्यापारी सिर्फ़ इसलिए अनाज बाज़ार में नहीं लाता कि ग़ल्ले की क़ीमत चढ़ जाए, तो यह जमाख़ोरी (एहतिकार) अवैध है। अलबत्ता सस्ताइ के समय में कोई व्यक्ति ग़ल्ला ख़रीदकर इकट्ठा कर लेता है कि जब क़ीमत चढ़ जाएगी तो बेचेंगे, तो यह अवैध नहीं है। शरीअत को यह सहन नहीं है कि कोई व्यापारी ऐसा स्वार्थपरता का ढंग अपनाए जो लोगों के लिए मुसीबत और परेशानियों का कारण बने। ग़ल्ले के अतिरिक्त दूसरी आवश्यक वस्तुएँ जैसे दवाएँ, तेल, पेट्रोल, ईंधन आदि की जमाख़ोरी भी वैध न होगी। उनको भी न बेचना और बाज़ार से ग़ायब कर देना ताकि इनकी क़ीमतें चढ़ जाएँ जबकि लोग उनके अभाव या कमी से भारी मुसीबत में पड़ जाएँ, स्वार्थपरता और भौतिकतावादी नीति है।

(2) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिसने मँहगाई के ख़याल से ग़ल्ले को चालीस दिन तक रोक रखा उसने अल्लाह से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और अल्लाह उससे विरक्त और अलग हो गया।" (हदीस : रज़ीन)

व्याख्या : अर्थात् उसकी यह जमाख़ोरी और ज़ख़ीरा-अन्दोज़ी इस बात का प्रमाण है कि उसने अल्लाह से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। उसको अल्लाह से किए हुए उस वचन का कुछ भी ध्यान न रहा जिसके अन्तर्गत लोगों के साथ वह सहानुभूति और करुणा का व्यवहार करता। जब अल्लाह को उसने भुला दिया तो अल्लाह को भी उसकी कोई परवाह न होगी। अब वह भी उसकी सुरक्षा आदि की ज़िम्मेदारी से अलग हो गया। अब वह इसका पाबन्द नहीं है कि वह उसपर कृपा और दया करता रहे।

(3) हज़रत अबू-उमामा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिस किसी ने (मँहगाई के इरादे से) अनाज को चालीस दिन तक रोके रखा, फिर वह उसे ख़ैरात (दान) भी कर दे तो वह उसके लिए प्रायश्चित न होगा।" (हदीस : रज़ीन)

व्याख्या : चालीस दिन तक ग़ल्ले को रोक रखा जबकि लोगों को उसकी आवश्यकता थी। उसको लोगों की परेशानियों का कुछ भी ध्यान न रहा। उसे चिन्ता थी तो इसकी कि वह लोगों की मजबूरियों से कितना अधिक लाभ उठा ले। उसकी इस अपराधपूर्ण नीति की गम्भीरता का एहसास दिलाने के लिए कहा कि वह उस अनाज का दान कर दे तब भी यह अपराध ऐसा नहीं है कि क्षमा कर दिया जाए।

ज़कात

(1) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "इस्लाम पाँच चीज़ों पर आधारित है — इस

बात की गवाही देना कि अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं और यह कि मुहम्मद (सल्ल॰) अल्लाह के बन्दे और उसके रसूल हैं, नमाज़ क़ायम करना, ज़कात अदा करना, हज करना और रमज़ान (महीने) के रोज़े रखना।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् इस्लाम की ये पाँच मौलिक शिक्षाएँ हैं। आदमी के लिए ज़रूरी है कि वह अल्लाह के सिवा किसी को अपना प्रभु और पूज्य स्वीकार न करे। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की रिसालत पर ईमान लाए कि आप (सल्ल॰) ही हमारे वास्तविक मार्गदर्शक हैं। नमाज़ का आयोजन करे कि दुनिया में यही बन्दगी का प्रदर्शन और विकल हृदय के लिए शान्ति का आधार है। सामर्थ्य प्राप्त हो तो अल्लाह के घर (काबा) का हज करे और रमज़ान के रोज़े रखे। आदमी अगर धनवान है तो इस्लाम ने उसपर यह भी अनिवार्य किया है कि वह अपने माल की ज़कात भी दे। उसका माल केवल उसी के लिए होकर न रह जाए। वह दीन-दुखियों के भी काम आए और धर्म की सेवा में भी ख़र्च हो।

वास्तव में सूक्ष्म और कोमल चेतना ही धर्म की मूलात्मा और वास्तविक धर्म है। यही चेतना की कोमलता और सूक्ष्मता है जो रुकूअ और सजदे के रूप में प्रकट होती है। यही भाव की सूक्ष्मता और कोमलता बन्दे को अल्लाह के घर का हज करने पर भी उभारती है। यही धर्म की वह मूल आत्मा है जो रमज़ान के शुभ व मुबारक महीने में दिन में मोमिन को खाने-पीने, सम्भोग और शारीरिक सुख और आराम से निस्पृह कर देती है और उसके दिल में यह भावना जगाती है कि जीवन खाने-पीने और शरीर के सुख और आराम के सिवा भी कुछ है। उसमें इन चीज़ों से हटकर किसी और चीज़ की भी कामना होनी चाहिए। फिर यही चेतना की कोमलता और पवित्रता है जो उसे अल्लाह के बन्दों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उभारती है। फिर वह अपने धन से उनकी सेवा करने को अपने लिए आवश्यक समझने लगता है। यह भावना न हो तो आदमी का धर्म अपूर्ण ही रहता है,

बल्कि वास्तविकता यह है कि वह सिरे से दीन के वास्तविक अर्थ और आशय से अनभिज्ञ रहता है।

(2) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने जब हज़रत मुआज़ (रज़ि॰) को अमीर (अधिकारी) बनाकर यमन भेजा तो उनसे कहा, "तुम किताबवालों में से एक क़ौम की ओर जा रहे हो। अतः उन्हें इस बात की गवाही देने के लिए आमन्त्रित करना कि अल्लाह के सिवा कोई प्रभु पूज्य नहीं और यह कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं। अब यदि वे इस आमन्त्रण को स्वीकार कर लें तो फिर उन्हें बताना कि अल्लाह ने उनपर दिन-रात में पाँच नमाज़ें फ़र्ज़ (अनिवार्य) की हैं। यदि वे इसको मान लें तो फिर उनको बताना कि अल्लाह ने उनके ऊपर ज़कात फ़र्ज़ की है जो उनके धनवानों से ली जाएगी और उनके निर्धनों की ओर लौटा दी जाएगी। यदि वे इसे मान लें तो उनके अच्छे और क़ीमती माल से बचना और पीड़ित व मज़लूम की बद-दुआ से डरना क्योंकि उसके और अल्लाह के मध्य कोई परदा नहीं होता।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् इसका ध्यान रहे कि वहाँ तुम्हें किताबवालों से मामला पेश आएगा। उन्हें सत्यधर्म की ओर बुलाना भी तुम्हारा कर्त्तव्य है। उन्हें अत्यन्त युक्तिपूर्ण तरीक़े से धर्म की ओर बुलाना। अल्लाह का पैग़ाम पहुँचाने में युक्तिपूर्णता के साथ-साथ क्रम का भी ध्यान रखना अनिवार्य है। पहले उन्हें एकेश्वरवाद और हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की रिसालत (ईशदूतत्त्व) पर ईमान लाने के लिए आमन्त्रित करना। यदि वे इस आमन्त्रण को स्वीकार कर लेते हैं तो फिर ईमान लाने की सर्व प्रथम अपेक्षा क्या होती है, वह उनके समक्ष रखना, अर्थात् यह कि मोमिनों के लिए आवश्यक है कि वे नमाज़ का आयोजन करें। अल्लाह से अपने हार्दिक लगाव का प्रदर्शन अपनी नमाज़ों के द्वारा करें और निरन्तर करते रहें। जब वे ऐसा करने लगें तो फिर उनको यह भी

बताना होगा कि अपने शरीर और प्राण के द्वारा ही नहीं, बल्कि अपने माल में भी वे अल्लाह के आज्ञाकारी हों। उनके मालदार अपने माल की ज़कात दें, उन्हें बताएँ कि ज़कात का आदेश अत्यन्त तत्त्वदर्शिता पर आधारित है। तुम्हारी ज़कात से अल्लाह अपना कोष भरना नहीं चाहता। वह तो निस्पृह और निर्लिप्त है। उसके पास किस चीज़ की कमी हो सकती है। यह ज़ाकत यदि तुम्हारे मालदारों से ली जाएगी तो यह तुम्हारे ग़रीबों और मिसकीनों पर ख़र्च की जाएगी ताकि उन्हें परेशानियों से मुक्ति दिलाई जा सके। अगर समाज के दीन-दुखी कष्ट में रहें तो मालदारों और धनवानों की सम्पन्नता का क्या मूल्य हो सकता है? यह तो उनके लिए एक कलंक का टीका होगा और उनकी निष्ठुरता और जड़ता का खुला प्रमाण होगा, और वे शालीन एवं प्रतिष्ठित कहलाने योग्य न रहेंगे। इस हदीस में यह आदेश भी दिया गया है कि ज़कात वुसूल करने में इसका ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा न हो कि लोगों की ज़कात वुसूल करने में उनके अच्छे और क़ीमती माल ही को समेटने लग जाओ। उनपर अत्याचार कदापि न होने पाए। उत्पीड़ित की अल्लाह तुरन्त सुनता है। उनकी बद-दुआ से डरते रहना चाहिए।

(4) हज़रत मूसा-बिन-तलहा (ताबिई) बयान करते हैं कि हमारे पास हज़रत मुआज़-बिन-जबल (रज़ि०) का वह पत्र मौजूद है जिसको नबी (सल्ल०) ने उनके पास भेजा था। अतएव हज़रत मुआज़ ने बयान किया कि, "अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मुझे आदेश दिया है कि मैं गेहूँ, जौ, अंगूर और खजूरों की ज़कात वुसूल करूँ।"

(हदीस : शरहुस्सुन्नह)

व्याख्या : ज़मीन की हर एक पैदावार पर ज़कात वाजिब है। सिर्फ़ चार का वर्णन इसलिए किया गया कि यही चार चीज़ें उस क्षेत्र में पैदा होती थीं।

(5) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "जो आकाश और प्राकृतिक जल-स्रोतों से सींचा जाता हो या स्वयं ज़मीन नमीयुक्त हरी-भरी हो उसमें दसवाँ भाग (ज़कात) वाजिब् होता है और जिसकी सिंचाई कुँएँ से होती हो उसमें पैदावार का बीसवाँ भाग वाजिब होता है। (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : तात्पर्य यह है कि जिस ज़मीन की सिंचाई कुएँ से पानी खींचकर की जाती हो और सिंचाई पर अच्छा ख़ासा ख़र्च आता हो उसकी पैदावार में बीसवाँ भाग ज़कात के रूप में वाजिब है और जिस ज़मीन की सिंचाई में कोई विशेष व्यवस्था नहीं करनी पड़ती, जो वर्षा ही से सिंचित हो जाती हो या जल-स्रोतों से सहज ही जिसकी सिंचाई हो जाती हो उसकी पैदावार का दसवाँ भाग ज़कात के तौर पर देना होगा।

(6) हज़रत रबीआ-बिन-अबू-अब्दुर्रहमान (ताबिई) बहुत-से सहाबा से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने हज़रत बिलाल इब्ने-हारिस मुज़न्नी को फ़ुरअ के निकटवर्ती क्षेत्र में क़बल की खानें जागीर के रूप में प्रदान की थीं। अतएव उन खानों से अब तक ज़कात ली जाती है। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मालूम हुआ कि खानों की आय में से भी अल्लाह की राह में ख़र्च करना ज़रूरी है। इमाम अबू-हनीफ़ा (रज़ि॰) के विचार में खनिज पदार्थों में पाँचवाँ भाग वाजिब है। इमाम मालिक (रह॰) और इमाम शाफ़िई (रह॰) के विचार में खनिज पदार्थों में चालीसवाँ भाग वाजिब होता है। इमाम शाफ़िई (रह॰) का एक कथन यह भी मिलता है कि खनिज पदार्थों के निकालने में अगर काफ़ी मेहनत एवं परिश्रम से काम लेना पड़ता हो तो चालीसवाँ भाग वाजिब होगा, अन्यथा पाँचवाँ हिस्सा वाजिब होगा।

जानवरों जैसे गाय, बकरी और ऊँट आदि पर भी ज़कात वाजिब है। उसका निसाब फ़िक़ह की किताबों से मालूम कर सकते हैं। सोना, चाँदी और व्यापारिक सामग्रियों पर भी ज़कात देनी फ़र्ज़ है।

(7) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिस किसी को माल प्राप्त हो तो उसपर ज़कात वाजिब नहीं होती जब तक कि उसपर एक वर्ष न बीत जाए।" (हदीस : तिरमिज़ी)

व्याख्या : इमाम तिरमिज़ी (रह॰) का बयान है कि एक जमाअत के निकट यह रिवायत हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) पर मौक़ूफ़ है, अर्थात उसके विचार में यह नबी (सल्ल॰) का कथन नहीं, बल्कि स्वयं हज़रत इब्ने-उमर का अपना कथन है।

(8) हज़रत अता इब्ने-यसार रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "मालदार के लिए सदक़ा और ज़कात का माल जाइज़ नहीं सिवाय पाँच हालतों के। ख़ुदा की राह में जिहाद करनेवाले के लिए, ज़कात वुसूल करने पर जो नियुक्त हो उसके लिए, तावान भरनेवाले के लिए, उस व्यक्ति के लिए जो ग़रीब से उसका माल अपने माल के बदले में ख़रीद ले और उस व्यक्ति के लिए जिसके पड़ोस में कोई मिसकीन रहता हो और किसी ने उसे ज़कात का माल दिया और वह उसे भेंट स्वरूप अपने मालदार पड़ोसी को दे दे।" (हदीस : मालिक, अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि ग़ाज़ी अर्थात् जिहाद में शरीक व्यक्ति को ज़कात में से रक़म दी जा सकती है चाहे वह मालदार और धनी ही क्यों न हो। इसी प्रकार ज़कात वुसूल करनेवाले को भी ज़कात में से पारिश्रमिक दे सकते हैं। उसके लिए वैध है कि वह इसे स्वीकार कर ले। तावान (हर्जाना) भरनेवाला यद्यपि धनी हो लेकिन तावान की रक़म बहुत ज़्यादा हो तो वह ज़कात लेकर तावान की माँग

पूरी कर सकता है। यह तावान दियत के रूप में भी हो सकता है या किसी और रूप में भी। उदाहरणार्थ किसी का क़र्ज़ उसने अपने ज़िम्मे ले लिया लेकिन उसका अदा करना उसके लिए कठिन हो रहा हो।

धनी यदि किसी ग़रीब से जक़ात का माल ख़रीद ले तो यह ज़कात का माल उसके लिए वैध हो जाएगा। इसी प्रकार अगर कोई ग़रीब व्यक्ति जिसे ज़कात या सदक़े का माल मिला था, उस माल में से कुछ उपहार या भेंट के रूप में अपने मालदार पड़ोसी को भेजता है तो वह उस ग़नी (धनी) के लिए वैध होगा, क्योंकि वह माल उस ग़रीब के लिए तो सदक़ा था लेकिन ग़नी के पास वह भेंट के रूप में पहुँच रहा है।

(9) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "पाँच वस्क़ के कम खजूर हो तो उसपर ज़कात नहीं, पाँच औक़िया से कम चाँदी हो तो उसपर ज़कात वाजिब न होगी और पाँच रास से कम ऊँटों पर ज़कात वाजिब नहीं।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : पाँच वस्क़ नौ क्विंटल के बराबर होते हैं। अगर खजूरें इस मात्रा से कम हों तो इस हदीस के अनुसार उसमें दसवाँ भाग ज़कात के रूप में वाजिब न होगा। इमाम शाफ़िई (रह॰), इमाम अबू-यूसुफ़ (रह॰) और इमाम मुहम्मद (रह॰) का यही मत है। लेकिन इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) के मतानुसार ज़मीन की पैदावार में कोई निसाब मुक़र्रर नहीं है। जितनी भी पैदावार हो उसका दसवाँ भाग ज़कात में निकालना वाजिब है। ज़मीन की पैदावार गेहूँ और चना आदि के सम्बन्ध में भी यही आदेश है। ज़मीन की उपज के उश्र (दसवाँ भाग) के सम्बन्ध में हनफ़ियों के यहाँ फ़तवा इमामे-आज़म (अबू-हनीफ़ा) ही के मतानुसार है। इस हदीस का अर्थ उनकी ओर से यह बयान किया

जाता है कि इस हदीस में खजूर से तात्पर्य वे खजूरें हैं जो व्यापार के लिए हों। व्यापार के माल में ज़कात के लिए निसाब निर्धारित है।

'अवाक़' औक़िया का बहुवचन है। पाँच अवाक़ साढ़े बावन तोले (लगभग 612.5 ग्राम) के बराबर होते हैं, जो ज़कात में चाँदी का निसाब है। सोने का निसाब साढ़े सात तोले (लगभग 87.5 ग्राम) है। सोने और चाँदी दोनों मिलकर अगर निसाब के बराबर हो जाते हों तो ज़कात अदा करनी होगी। इसके लिए एक शर्त यह भी है कि ये मालिक की मिल्कियत में निरन्तर साल भर रह चुके हों। यह शर्त सोने, चाँदी, नक़दी, मवेशी और व्यापारिक सामग्रियों के लिए है। कृषि की पैदावार, फल, शहद, खनिज पदार्थ और गड़े हुए धन के लिए वर्ष पूरा होने की शर्त नहीं है।

(10) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "जो भूमि आकाश से सिंचित होती हो या जल स्रोतों से या स्वयं भूमि हरी-भरी हो तो उसमें दसवाँ भाग (उश्र) वाजिब होता है, और जो ज़मीन ऊँटों (या बैलों) द्वारा कुँएँ से पानी खींचकर सींची गई हो उसकी पैदावार में बीसवाँ भाग ज़कात के रूप में देना वाजिब है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मतलब यह है कि जो ज़मीन वर्षा से या प्राकृतिक रूप से सिंचित होती हो या पानी के निकट होने के कारण स्वयं नम और हरी-भरी रहती हो, ऊपर से उसे पानी देने की आवश्यकता न होती हो तो ऐसी ज़मीन से जो अनाज आदि पैदा होगा उसमें तो दसवाँ भाग ज़कात के रूप में देना वाजिब होगा, और जिस भूमि की सिंचाई में श्रम करना पड़ता हो, उसकी पैदावार में बीसवाँ भाग ज़कात के रूप में देना वाजिब है।

इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) के मतानुसार भूमि से जो चीज़ें पैदा होती हैं, अनाज और फूल-फल आदि सबमें ज़कात देनी होगी। हज़रत

उमर (रज़ि॰) और हज़रत आइशा (रज़ि॰) का कथन है कि हरी सब्ज़ियों में ज़कात नहीं।

(11) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद की पत्नी हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) से उल्लिखित है, वे बयान करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने हम स्त्रियों को सम्बोधित किया और फ़रमाया, "ऐ स्त्रियों की जमाअत, तुम (माल की) ज़कात अदा करो यद्यपि वह तुम्हारा ज़ेवर ही क्यों न हो, क्योंकि क़ियामत के दिन तुममें अधिकतर नारकीय होंगी।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

व्याख्या : ज़ेवर की ज़कात के बारे में इमामों में मतभेद पाया जाता है। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) के मतानुसार कोई भी ज़ेवर जब निसाब की सीमा को पहुँचता हो उसमें ज़कात वाजिब है। इमाम मालिक (रह॰) और इमाम अहमद (रह॰) के मतानुसार उन ज़ेवरों में ज़कात वाजिब नहीं जिनका इस्तेमाल होता हो। जो ज़ेवरात इस्तेमाल में आते हों, जिसकी हैसियत शृंगार की है, उनपर ज़कात वाजिब नहीं है। अलबत्ता जो ज़ेवर जमा-धन के रूप में एकत्र किए गए हों, जिनका मालिक उनको जमा-धन या नक़दी समझता हो, ऐसे ज़ेवरों की ज़कात देनी वाजिब है। हज़रत सईद-बिन-मुसैयिब (रह॰) के मतानुसार भी जिन ज़ेवरों को पहना जाए, उससे लाभ उठाया जाए, उसपर ज़कात अनिवार्य नहीं है लेकिन जो ज़ेवर पहनने के काम में न लाया जाए और उससे कोई लाभ न उठाया जाए उसकी ज़कात देनी होगी।

(12) हज़रत समुरा-बिन-जुन्दुब (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) हमें आदेश दिया करते थे कि हम जो माल व्यापार के लिए तैयार करें उसकी ज़कात निकाला करें।

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : कुछ लोगों ने इस हदीस की सनदों (प्रमाण-स्रोतों) को कमज़ोर ठहराया है। कुछ लोग तिजारत के माल में ज़कात के वाजिब

होने को स्वीकार नहीं करते। लेकिन अधिकांश विद्वानों के मतानुसार व्यापार के माल में ज़कात वाजिब है। रही समुरा-बिन-जुन्दुब की यह हदीस तो इब्ने-अब्दुल्लाह ने इसे हसन[1] का दर्जा दिया है और अहमद शाकिर के मतानुसार इसके उल्लेखकर्ता परिचित और प्रसिद्ध हैं और उनका ज़िक्र इब्ने-हिब्बान ने विश्वसनीय लोगों में किया है।

(13) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "यदि जानवर किसी को घायल कर देता है तो माफ़ है। यदि कुएँ में गिर कर कोई मर जाता है या कुआँ खोदने में कोई मर जाए तो माफ़ है। खान खोदने में कोई मर जाए तो माफ़ है और खान तथा गड़े हुए खज़ाने में से पाँचवाँ हिस्सा वाजिब है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् मौत यदि किसी की कोताही और लापरवाई से घटित नहीं होती तो तावान और अर्थदण्ड आदि नहीं लिया जाएगा।

इस बात पर सभी फ़क़ीह (धर्म-वेत्ता) एकमत हैं कि खनिज पदार्थों में हक़ वाजिब है। क़ुरआन में है, "ऐ ईमान लानेवालो, अपनी कमाई की पाक अच्छी चीज़ों में से ख़र्च करो और उन चीज़ों में से भी जो हमने धरती में से तुम्हारे लिए निकाली हैं," (क़ुरआन, 2:267)

स्पष्ट है खनिजों को भी ज़मीन से निकाला है। हंबली मत के लोगों के अनुसार हर प्रकार के खनिजों में, जो धरती से निकलें और जिनका कोई मूल्य हो, ज़कात वाजिब है। खनिजों की गणना माल ही में होती है। क़ुरआन में माले-ग़नीमत में ख़ुम्स (पाँचवाँ भाग) को अनिवार्य ठहराया है। (क़ुरआन, 8:41)

---

1. हसन वह हदीस है जिसमें उसके सही होने की सभी शर्तें पूरी होती हों, केवल उल्लेखकर्ता के स्मरण या सुरक्षा की दृष्टि से हलकापन पाया जाता हो।

कुछ धर्मविधिज्ञों के मतानुसार खनिज को निकालने में जो श्रम लगता हो और इस सिलसिले में जो ख़र्च हो उसके अनुसार पदार्थ कम मात्रा में नहीं बल्कि अधिक मात्रा में प्राप्त हो तो उसमें ख़ुम्स वाजिब होगा और यदि निकाले गए खनिज की मात्रा श्रम और ख़र्च की दृष्टि से कम है तो चालीसवाँ भाग अदा करना होगा।

इमाम मालिक और इमाम शाफ़िई का मत यही है। कृषि की पैदावार में भी हम देखते हैं कि मेहनत के अनुपात से वाजिब मात्रा में अन्तर किया गया है।

(14) हज़रत ज़ियाद-बिन-हारिस सुदाई बयान करते हैं कि मैं नबी (सल्ल॰) की सेवा में उपस्थित हुआ और आपके हाथ पर बैअत की। फिर वे एक लम्बी हदीस बयान करते हुए कहते हैं कि एक व्यक्ति नबी (सल्ल॰) के पास आया और कहने लगा कि आप मुझे ज़कात के माल में से प्रदान करें। नबी (सल्ल॰) ने कहा, "ज़कात के सम्बन्ध में (कि वह किसे दी जाए) अल्लाह न तो किसी नबी के आदेश पर राज़ी हुआ और न किसी ग़ैर-नबी के आदेश पर, बल्कि अल्लाह ने स्वयं इसके बारे में आदेश प्रदान किया। अतएव अल्लाह ने ज़कात को आठ हिस्सों में विभक्त किया है। यदि तुम उन आठ में से होगे तो मैं ज़कात का माल तुम्हें दे दूँगा।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : यह संकेत क़ुरआन की इस आयत की ओर है : "सदक़ात तो बस ग़रीबों, मुहताजों और उन लोगों के लिए हैं जो इस काम पर नियुक्त हों, और उनके लिए जिनके दिलों को आकृष्ट करना और परचाना अभीष्ट हो, और गरदनों को छुड़ाने और क़र्ज़दारों और तावान भरनेवालों की सहायता करने में, अल्लाह के मार्ग में और मुसाफ़िरों की सहायता करने में ख़र्च करने के लिए है। यह एक

अनिवार्य कर्त्तव्य है अल्लाह की ओर से, अल्लाह सब कुछ जाननेवाला, अत्यन्त तत्त्वदर्शी है।" (क़ुरआन 9:60)

इस आयत में ज़कात के ख़र्च करने की आठ मदों का वर्णन स्पष्ट रूप में किया गया है : (1) निर्धन (2) दीन-दुखी (3) जो ज़कात वुसूल करने पर नियुक्त हों, (4) जिनके दिलों को आकृष्ट करना और परचाना अभीष्ट हो (5) जिनकी गरदनें फँसी हुई हों अर्थात् ग़ुलाम और क़ैदी आदि, (6) जिन्हें तावान भरना हो या ऋणी लोग, (7) अल्लाह के मार्ग में (अर्थात् वह कार्य जो अल्लाह के दीन के लिए हो रहा हो, उदाहरणार्थ जिहाद, दीन के ज्ञान का प्रचार-प्रसार) और (8) मुसाफ़िर जिन्हें अपने वतन से दूर होने के कारण सहायता की आवश्यकता हो।

निर्धन और फ़क़ीर से अभिप्रेत वे लोग हैं जिनके पास इतना धन नहीं होता कि वे अपने घरवालों की मौलिक आवश्यकताएँ पूरी कर सकें। दीन-दुखी या मिसकीन आवश्यकता में फ़क़ीर से कम भी हो सकता है और कभी अधिक भी हो सकता है। मिसकीन के बारे में नबी (सल्ल॰) ने कहा है : "मिसकीन वह नहीं है जो एक या दो लुक़मों के लिए या एक खजूर के लिए लोगों के पास चक्कर लगाता रहे, बल्कि मिसकीन वह है जिसकी ज़रूरतें पूरी न हो रही हों, गुमनामी में रहता है। इसके कारण उसे ख़ैरात नहीं दी जाती और न ही वह खड़ा होकर लोगों के सामने माँगने के लिए हाथ फैलाता है।" (हदीस : बुख़ारी)

दिलों को आकृष्ट करना और परचाना अभीष्ट हो से अभिप्रेत वे अधर्मी भी हो सकते हैं जिनको इस्लाम की ओर आकृष्ट करना हो या उद्देश्य यह हो कि उनके दिलों में इस्लाम और मुसलमानों के लिए नर्मी पैदा की जाए। जैसा कि बुख़ारी की एक रिवायत में है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "मैं क़ुरैश को उनके दिल इस्लाम की ओर आकृष्ट करने के लिए देता हूँ क्योंकि ये अज्ञानकाल से अधिक निकट हैं।" इस प्रकार यह हिस्सा निहित हित के अन्तर्गत प्रत्येक उस व्यक्ति को दिया जा

सकता है जो किसी दृष्टि से इस्लाम और मुसलमानों के लिए हितकारी हो सकता हो। पत्रकारिता से सम्बन्ध रखनेवाले लेखक आदि को भी इस विषय में ध्यान में रखा जा सकता हैं।

सदक़ए-फ़ित्र

(1) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने रोज़ों को बेहूदा बातों और अश्लील और निरर्थक बातों से पाक करने के लिए मिसकीनों को खिलाने के उद्देश्य से सदक़ए-फ़ित्र अनिवार्य किया है। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : रमज़ानुल-मुबारक के रोज़े पूरे करने के बाद ईदुल-फ़ित्र के अवसर पर जिस सदक़े के देने का आदेश है उसे सदक़ए-फ़ित्र कहते हैं। सदक़ए-फ़ित्र घर के सभी व्यक्तियों की ओर से देना होता है, यहाँ तक कि जो बच्चा सूर्योदय के बाद पैदा हुआ हो, उसकी ओर से भी सदक़ए-फ़ित्र देना वाजिब है। इस हदीस में इस सदक़े की हिक्मत यह बयान हुई है कि रमज़ान में रोज़ेदार से जो कोताही और भूल हुई होगी जिसके कारण उसके रोज़े में जो कमी रह गई होगी वह दूर हो जाएगी। निरर्थक और अश्लील बातों के प्रभावों से रोज़ेदार भी पाक हो जाएगा। इसके अतिरिक्त एक बड़ी हिक्मत सदक़ए-फ़ित्र की यह है कि ईद की ख़ुशियों में मिसकीनों और मुहताजों को भी आम मुसलमानों के साथ शरीक होने का अवसर मिल सकेगा।

(2) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने मुसलमानों में से हर एक ग़ुलाम, आज़ाद, पुरुष, स्त्री, और छोटे बड़े-पर ज़काते-फ़ित्र (सदक़ए-फ़ित्र) के रूप में एक साअ खजूर या एक साअ जौ अनिवार्य किया है। और सदक़ए-फ़ित्र के सिलसिले में यह भी आदेश दिया है कि वह लोगों के नमाज़ के लिए निकलने से पहले अदा कर दिया जाए। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : जो ग़ुलाम सेवा के लिए हो उसकी ओर से भी सदक़ए-फ़ित्र देना वाजिब है। औलाद, जो बाप के संरक्षण में है उसकी ओर से सदक़ए-फ़ित्र अदा करना अनिवार्य है।

साअ 3 किलो 266 ग्राम के माप को कहते हैं। अच्छी और प्रशंसनीय बात यही है कि सदक़ए-फ़ित्र ईद की नमाज़ के लिए घर से निकलने से पहले ही अदा कर दिया जाए। सदक़ए-फ़ित्र रमज़ानुल-मुबारक में भी दे सकते हैं। ज़्यादा अच्छा है कि ईद आने से कुछ दिन पहले ही मिसकीनों और मुहताजों को सदक़ए-फ़ित्र दे दिया जाए ताकि उन्हें इससे लाभ उठाने का पूरा अवसर मिल सके।

आम सदक़ात (सामान्य दान)

(1) हज़रत असमा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "ख़र्च करो, गिन-गिनकर न रखो, अन्यथा अल्लाह भी गिन-गिनकर देगा, और बन्द करके न रखो अन्यथा अल्लाह भी तुमसे रोक लेगा।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् नेक काम और भलाई के कामों में विशाल हृदयता के साथ अपने माल ख़र्च करो। माल इसी लिए है कि वह अच्छे कामों में ख़र्च हो। माल को जमा करने की चिन्ता में न पड़ो। अगर तुम माल ख़र्च करने में झिझक से काम लोगे और बहुत संभाल-संभाल कर और गिन-गिनकर ख़र्च करोगे और अपने माल को रोके रखने की तुम्हें अधिक चिन्ता होगी तो सुन लो, अल्लाह भी तुम्हारे साथ यही नीति अपनाने में समर्थ है। वह तुमसे आजीविका रोक सकता है या दे भी तो बहुत नाप-तौलकर दे।

(2) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिनसे ईर्ष्या (अर्थात् प्रतिस्पर्द्धा) की जाए सिर्फ़ दो व्यक्ति हैं। एक तो वह व्यक्ति जिसे अल्लाह ने क़ुरआन प्रदान किया और वह रात की घड़ियों में और दिन के समयों में

उसमें व्यस्त रहता है। दूसरा वह व्यक्ति जिसे अल्लाह ने माल प्रदान किया और वह उसमें से रात के समयों में और दिन के समयों में ख़र्च करता रहता है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस में हसद (ईर्ष्या) का शब्द लाक्षणिक रूप में प्रयुक्त हुआ है। तात्पर्य इससे 'ग़बता' है जिसको रश्क कहते हैं। किसी के पास कोई नेमत देखकर यह तमन्ना करना कि हमें भी यह नेमत प्राप्त हो जाए बिना इसके कि वह नेमत उस दूसरे व्यक्ति से छिन जाए; वैध है। इसे लाक्षणिक रूप में ईर्ष्या कहा गया है। वास्तव में यह रश्क है जिसके जाइज़ होने में किसी को सन्देह नहीं हो सकता।

इसके विपरीत किसी के पास कोई नेमत देखकर यह कामना करना कि वह नेमत उससे छिन जाए और वह नेमत हमें मिल जाए, यह हसद (व ईर्ष्या) अवैध है।

इस हदीस में दो विशिष्ट नेमतों का उल्लेख किया गया है और इसकी प्रेरणा दी गई है कि दोनों ही नेमतें प्राप्त करने की हैं। एक बड़ी नेमत यह है कि आदमी को क़ुरआन की नेमत प्राप्त हो और वह रातों में भी और दिन के समयों में भी क़ुरआन की तिलावत करता हो और उसके ज्ञान और आदेशों पर चिन्तन-मनन करने में भी अपने समय का बड़ा भाग लगाता हो, और नमाज़ में खड़े होकर अधिक से अधिक क़ुरआन पढ़ने की कोशिश करता हो।

दूसरी बड़ी नेमत जिसके लिए रश्क कर सकते हैं यह है कि किसी व्यक्ति को ख़ुदा ने धन-दौलत से सम्पन्न किया हो और वह अधिक से अधिक माल नेक कामों और दीन को फैलाने के लिए ख़र्च करता रहता हो। उसके इन्फ़ाक़ (ख़र्च करने) की यह भावना न दिन में ठंडी पड़ती हो और न यह रात में ख़र्च करने से बचता हो।

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लेख है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "यदि मेरे पास उहुद पर्वत के बराबर सोना होता तो अनिवार्यतः

मुझे यही पसन्द होता कि तीन रातें भी इस दशा में व्यतीत न हों कि उसमें से एक दीनार भी मेरे पास रह जाए जिसे मैंने क़र्ज़ चुकाने के लिए न रखा हो, इस दशा में कि मैं ऐसे व्यक्ति को पाऊँ जो उसे क़बूल करे।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम होता है कि नबी (सल्ल॰) के दिल में ख़र्च करने की भावना कितनी अधिक पाई जाती थी। आपको माल जमा करने के बदले माल ख़र्च करने से अस्ल दिलचस्पी थी। कहते हैं कि यदि उहुद पहाड़ के बराबर भी मुझे सोना उपलब्ध हो तो मैं यही पसन्द करूँगा कि तीन रातें भी इस दशा में न गुज़रने पाएँ कि एक दीनार के बराबर भी सोना मेरे पास शेष रह जाए। मैं उसे शीघ्रातिशीघ्र ख़ुदा की राह में और लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति में ख़र्च कर डालूँगा। एक दीनार भी बचाकर अपने लिए रखना मुझे पसन्द न होगा। यह अलग बात है कि ऋण अदा करने के ध्येय से उसकी प्रतीक्षा में उसे मुझे अपने पास रखना पड़ेगा जिसका ऋण मुझे चुकाना हो। मुझे चिन्ता होगी तो यह कि माँगनेवाला या ज़रूरतमन्द मिले और उसकी माँग पूरी करने और ज़रूरतमन्द की ज़रूरत पूरी करने में मेरी ओर से कोई विलम्ब न हो।

सहयोग एवं सहानुभूति

(1) हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि॰) रिवायत करते हैं कि हम एक सफ़र में अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के साथ थे। अचानक एक व्यक्ति ऊँट पर सवार होकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ। वह कभी दाईं ओर जाता, कभी बाईं ओर मुड़ता। इस अवसर पर आप (सल्ल॰) ने कहा, "जिसके पास अधिक सवारी हो उसे चाहिए कि उसे दे दे जिसके पास सवारी न हो। और जिसके पास अधिक पाथेय (खाने-पीने का सामान) हो उसे चाहिए कि उसे उस व्यक्ति को दें दे जिसके पास पाथेय न हो।" इस तरह आप

(सल्ल॰) ने कई प्रकार के मालों का उल्लेख किया यहाँ तक कि हमने ख़याल किया कि आवश्यकता से अधिक चीज़ों में हमारा कोई हक़ नहीं है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी सवारी भी थक-हार गई थी और वह स्वयं भी भूख से निढाल हो चुका था। वह इधर-उधर देखता था कि कहीं से उसकी आवश्यकता पूरी हो जाए।

नबी (सल्ल॰) को उसकी परेशानी और दयनीय स्थिति पर दया आई और आप (सल्ल॰) ने लोगों को प्रेरित किया कि जिसके पास अपनी आवश्यकता से अधिक सामान हो उससे वह अपने ज़रूरतमंद भाई की मदद करे। आवश्यकता से अधिक चीज़ों का उत्तम प्रयोग यह है कि वह ज़रूरतमन्दों के काम आए। युद्ध के अवसर पर या आकस्मिक परिस्थितियों में इसका बड़ा महत्व होता है कि आदमी किसी चीज़ को भी अल्लाह की राह में ख़र्च करने से पीछे न हटे जो वह ख़र्च कर सकता है।

(2) हज़रत असमा-बिन्ते-अबू-बक्र (रज़ि॰) बयान करती हैं कि मुझसे नबी (सल्ल॰) ने कहा, "(सदक़ा और ख़ैरात को) रोको मत, अन्यथा तुमसे भी रोक लिया जाएगा।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : हज़रत असमा-बिन्ते-अबू-बक्र (रज़ि॰) से बुख़ारी में यह रिवायत भी उल्लिखित है कि वे नबी (सल्ल॰) के पास आईं तो आप (सल्ल॰) ने कहा, "(रुपये-पैसे) थैली में बन्द करके मत रखो वरना अल्लाह भी बन्द रखेगा, तुम्हें देगा नहीं, और जहाँ तक तुमसे हो सके ख़ैरात करती रहो।"

इन उल्लेखों से पता चलता है कि माल और धन इसी लिए है कि वह अच्छे से अच्छे कामों में ख़र्च हो। इस सम्बन्ध में कृपणता अल्लाह को कदापि पसन्द नहीं है।

माँगनेवाले का हक़

(1) हज़रत हुसैन-बिन-अली (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "माँगनेवाले का हक़ है (कि उसे दिया जाए) यद्यपि वह घोड़े पर सवार होकर आए।"

(हदीस : मुसनद अहमद, अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् जहाँ तक सम्भव हो माँगनेवाले को ख़ाली हाथ वापस नहीं करना चाहिए। यद्यपि माँगनेवाला घोड़े और क़ीमती सवारी पर सवार होकर आया हो जिससे मालूम होता हो कि वह एक समृद्ध व्यक्ति है, कोई मुहताज और मिसकीन नहीं है। यह सोचने की बात है कि जब वह लोगों के सामने हाथ फैला रहा है तो आश्चर्य नहीं कि वह वास्तव में ज़रूरतमन्द हो और ज़रूरत ने उसे माँगने और सवाल करने पर विवश कर दिया हो। माँगनेवाले का हर हाल में यह हक़ स्वीकार किया गया है कि उसे कुछ न कुछ अवश्य दिया जाए। अलबत्ता अगर यह साबित हो कि माँगनेवाला कोई धोखेबाज़ है और वह लोगों को धोखा देकर उनकी सहानुभूति प्राप्त करना चाहता है और उसने इसी को अपना व्यवसाय बना रखा है तो फिर ऐसे मक्कार को प्रोत्साहित करने से बचना ही अच्छा होगा।

इजारा

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मुग़फ़्फ़ल (रज़ि॰) कहते हैं कि साबित-बिन-ज़ह्हाक ने बयान किया कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने मुज़ारिअत से रोका और इजारा का आदेश देते हुए कहा, "इसमें कोई हरज नहीं है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इजारा के नाम से तीन प्रकार की उजरतों (मज़दूरियों) का वर्णन किया जाता है— 1. वह उजरत जो किराए के रूप में दी जाती या ली जाती है। 2. वह उजरत जो पेशावरों को उदाहरणार्थ

लोहार या बढ़ई या दरज़ी आदि को दी जाती है। 3. वह उजरत जो मज़दूर या मुलाज़िम की हैसियत से किसी को दी जाती है या किसी से हासिल की जाती है।

इजारा एक प्रकार के समझौते का नाम है। उदाहरणार्थ निर्धारित अवधि के लिए काम पर किसी को लगाया और उसकी निश्चित की हुई उजरत (मज़दूरी) अदा करने का समझौता कर लिया है। शरीअत में इजारे का समझौता वैध है। क़ुरआन में है : "अगर आप चाहते तो इसपर कुछ उजरत ठहरा लेते।" (क़ुरआन, 18:77)

इजारा के सिलसिले में आवश्यक है कि लाभ निर्धारित हो, उदाहरणार्थ मकान किराए पर दिया जा रहा है तो रहने के लिए दिया जा रहा है। यह भी आवश्यक है कि जिस काम के लिए समझौता हो वह काम वैध हो, अवैध न हो। किसी को ज़मीन किराए पर इस उद्देश्य के लिए देना वैध नहीं है कि वह वहाँ शराब या जुए का अड्डा बनाए। उजरत या किराया निश्चित होना चाहिए। हदीस है : "अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मज़दूर की उजरत (मज़दूरी) निश्चित किए बिना मज़दूर रखने से रोका है।" (हदीस : मुसनद अहमद)

हदीस में यह जो है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने मुज़ारिअत से रोका है तो उससे मुज़ारिअत के वे प्रकार हैं जिनका अवैध होना स्पष्ट और निश्चित है। (उदाहरणार्थ देखें 'कृषि' के अन्तर्गत हदीस न० 3)। अधिकतर उलमा मुज़ारिअत को वैध ठहराते हैं। इमाम अबू-यूसुफ़ (रह०) और इमाम अहमद (रह०) भी इसके वैध होने के पक्ष में हैं। ज़रूरत पूरी होने का निहित उद्देश्य भी उलमा के सामने रहा है।

(2) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने सींगी लगवाई और सींगी लगानेवाले को उजरत दी और आप (सल्ल०) ने नाक में दवा डाली। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् इलाज के तौर पर आप (सल्ल०) ने सींगी के द्वारा ख़ून निकलवाया और सींगी लगानेवाले को इसकी उजरत दी। इससे मालूम हुआ कि इलाज में दवा आदि का इस्तेमाल दुरुस्त है। अल्लाह ने यदि रोग पैदा किए हैं तो उनकी दवाएँ भी पैदा की हैं। उन दवाओं से लाभ उठाना अल्लाह पर भरोसा रखने के विरुद्ध कदापि नहीं है।

हद्या (उपहार)

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जिस किसी को सुगंधित फूल (उपहार स्वरूप) दिया जाए तो वह उसे न लौटाए (बल्कि स्वीकार कर ले) क्योंकि वह बहुत हलका और सुगन्ध अच्छी है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अपने भाइयों और दोस्तों को हद्या और उपहार देने को इस्लाम पसन्द करता है। यह आपस के सम्बन्धों के मधुर होने का प्रतीक है और इससे सम्बन्धों और मेल-मुहब्बत में और अधिक वृद्धि होती है। यदि उपहार सच्चे दिल से और प्रेमपूर्वक दिया जाए तो उसके स्वीकार करने पर कोई बुराई महसूस नहीं करनी चाहिए। लेकिन अगर महसूस हो कि इसके पीछे अच्छी भावनाएँ नहीं हैं तो उसे स्वीकार करने से खेद प्रकट कर सकते हैं। इसी प्रकार अगर उपहार इतना क़ीमती है कि महसूस हो कि उपहार पेश करनेवाला उससे (कर्ज़ आदि) के बोझ तले दब जाएगा और उसके कारण उसके कष्ट में पड़ जाने की आशंका है तो इस स्थिति में भी उपहार को अस्वीकर किया जा सकता है।

नबी (सल्ल०) कहते हैं कि यदि उपहार में कोई व्यक्ति फूल पेश करता है तो उसे वापस नहीं करना चाहिए बल्कि प्रसन्नचित्त के साथ स्वीकार कर लेना चाहिए। इससे उपहार देनेवाले को ख़ुशी होगी और यह उपहार ऐसा नहीं है जिसके कारण उपहार देनेवाले के भारग्रस्त होने की आशंका की जा सके। यह एक हलका-फुलका उपहार है और हलका

होने के बावजूद उत्तम उपहार है क्योंकि ख़ुशबू से दिलों को एक विशिष्ट ताज़गी और ख़ुशी प्राप्त होती है।

(2) हज़रत जाबिर (रज़ि.) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल.) ने कहा, "जिस किसी व्यक्ति को कोई चीज़ (उपहार स्वरूप) दी जाए और वह उसका बदला देने की सामर्थ्य रखता हो तो उसे चाहिए कि वह उसको उसका बदला दे। रहा वह व्यक्ति जो बदला देने की सामर्थ्य न रखता हो तो वह उपहार देनेवाले की प्रशंसा करे, क्योंकि जिसने प्रशंसा की उसने आभार प्रकट किया और जिस किसी ने छिपाया (उपकारकर्ता के उपकार को व्यक्त नहीं होने दिया), उसने कृतज्ञता नहीं दिखाई।"

(हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद)

व्याख्या : उपहार देनेवाले का यह हक़ है कि हम उपहार स्वीकार करके चुप न रह जाएँ, बल्कि हम भी उसके बदले में अपनी ओर से उसे कोई न कोई उपहार अवश्य दें और इस प्रकार हम उसके कृतज्ञ हों। लेकिन अगर हम इस स्थिति में अपने को नहीं पाते कि हद्या देनेवाले को बदले में कुछ दे सकें तो कम-से-कम यह प्रकट करें कि उपहार बहुत पसन्द आया और हद्या देनेवाले व्यक्ति के लिए अपने मुख से कुछ प्रशंसा के शब्द ही कहें। अगर हम यह भी नहीं करते और प्रशंसा के द्वारा उसका शुक्र अदा नहीं करते तो इसे कृतघ्नता के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

(3) हज़रत उसामा-बिन-ज़ैद (रज़ि.) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने कहा, "जिस व्यक्ति के साथ कोई एहसान (उपकार) किया जाए और वह एहसान करनेवाले के हक़ में ये शब्द कहे : "जज़ाकल्लाहु ख़ैरा" (अल्लाह तुझे इसका अच्छा बदला दे), तो उसने (अपने उपकारकर्ता की) पूरी प्रशंसा की।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

व्याख्या : 'जज़ाकल्लाहु ख़ैरा' (अल्लाह तुझे अच्छा बदला दे) देखने में तो एक दुआ का वाक्य है, लेकिन हदीस में इसे पूर्ण प्रशंसा से अभिहित किया गया है। वास्तव में एहसान करनेवाले के हक़ में दुआ करने का मतलब ही यह होता है कि हमने इस एहसान को अत्यन्त महत्व दिया। किसी के एहसान को महत्व देना, चाहे वह एहसान किसी भी रूप में किया गया हो, एहसान करनेवाले की प्रशंसा ही होगी।

नबी (सल्ल॰) स्वयं उपहार क़बूल करते थे और उसका बदला भी प्रदान करते थे। हज़रत आइशा (रज़ि॰) कहती है, "नबी (सल्ल॰) उपहार क़बूल करते थे और उसपर क़ायम रहते थे।" (हदीस : बुख़ारी)

(4) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने देखा है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को जब कोई नया फल पेश किया जाता तो उसको अपनी आँखों और होंठों पर रखते और कहते, "ऐ अल्लाह जिस तरह तूने हमें इस फल का आरम्भ दिखाया उसी प्रकार इसका परिणाम भी दिखा।" इसके बाद वह फल उस बच्चे को दे देते जो उस समय आपके पास होता।

(हदीस : बैहक़ी — अद्-दावातुल-कबीर)

व्याख्या : ताज़े फल को आँखों पर रखने और होंठों से उसे स्पर्श करने का मूल उद्देश्य अल्लाह की ताज़ा नेमत का आदर व सम्मान है। इस मौक़े पर आप जो दुआ करते कि 'ऐ अल्लाह जिस तरह तूने हमें इस फल का आरम्भ दिखाया उसी प्रकार इसका परिणाम भी दिखा' अर्थात् हमें इसका अवसर प्रदान कर कि आरम्भ से ही लाभ न उठाएँ बल्कि अधिक से अधिक तेरी नेमतों से लाभान्वित हो सकें। यह दुनिया तो वास्तव में तेरे अनुग्रह का आरम्भ है जिसका परिणाम आख़िरत की दुनिया है। दुनिया में जो तेरा अनुग्रह और कृपाएँ हो सकती हैं, हम उन ही के नहीं, बल्कि आख़िरत की कभी न समाप्त होनेवाली नेमतों के लिए भी तुझसे प्रार्थना करते हैं। ऐ अल्लाह! जिस प्रकार दुनिया में तूने हमें यह नेमत दी है, आख़िरत में भी यह नेमत हम देख सकें। यह उत्तम

आरम्भ इससे भी बढ़कर किसी उत्तम परिणाम की सूचना है। हम अँच्छे परिणाम और तेरी अनन्त कृपाओं से कैसे लालसा रहित हो सकते हैं?

बच्चे भी नए और ताज़ा फल के सदृश होते हैं। ताज़गी ताज़गी को अधिक शोभा देती है। नया फल बच्चे को देने में अच्छे ज़ौक़ और सूक्ष्मदर्शिता का प्रदर्शन होता है।

(5) हज़रत अबू-उमामा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिस किसी ने किसी व्यक्ति के लिए सिफ़ारिश की तो यदि उसने उस सिफ़ारिश करनेवाले को कोई उपहार पेश किया और उसने उसको स्वीकार कर लिया तो वह ब्याज के बहुत बड़े द्वार तक जा पहुँचा।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् निकृष्टतम प्रकार की सूदख़ोरी की ओर उसके क़दम बढ़े हैं। इससे अवैध रूप में लाभ प्राप्त करने का मार्ग खुलता है। अवैध लाभ के लिए अवैध सिफ़ारिशें भी की जाने लगती हैं। सूदख़ोरी की मानसिकता भी यही होती है कि आदमी बिल्कुल स्वार्थी बनकर रह जाता है और अपनी स्वार्थपरता के आगे उसे वैध और अवैध किसी चीज़ की परवाह नहीं होती। उसका दिल दया-भाव से बिल्कुल रिक्त हो जाता है। और हम जानते हैं कि दयालुता की भावना और प्रेम इस्लामी समाज की मूल आत्मा है जिसकी सुरक्षा करनी प्रत्येक मोमिन व्यक्ति का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है।

आरियत (उधार)

(1) हज़रत अनस (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि एक बार मदीना में घबराहट पैदा हो गई तो नबी (सल्ल॰) ने अबू-तलहा अनसारी (रज़ि॰) से उनका घोड़ा, जिसे मन्दूब कहते थे, उधार माँगा और आप (सल्ल॰) उस पर सवार होकर चले गए (उस ओर गए जिधर से ख़तरे का भय था)। फिर जब आप (सल्ल॰) लौटे तो

कहा, "हमने कुछ नहीं देखा (अर्थात् भय की कोई बात नहीं है, लोग निश्चिन्त रहें) और हमने इसको (घोड़े को) प्रवाहित समुद्र पाया।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : लोगों को किसी कारण सन्देह हुआ कि शत्रु की सेना आ गई है। इसके कारण मदीना में बेचैनी पैदा हो गई।

मन्दूब का अर्थ होता है धीमी गतिवाला, अर्थात् उस घोड़े की चाल कोई तेज़ न थी।

इस हदीस से नबी (सल्ल॰) की वीरता का भली-भांति अनुमान किया जा सकता है कि ख़तरे के बावुजूद स्थिति का पता लगाने के लिए अकेले बाहर निकल गए और वापस आकर लोगों को सान्त्वना दी कि घबराने और परेशान होने की कोई बात नहीं। हमने बाहर निकलकर देख लिया है। ख़बर ग़लत थी, कोई दुश्मन हम पर आक्रमण करने नहीं आया है।

इस हदीस से इसका भी अनुमान होता है कि नबी (सल्ल॰) को अपनी ज़िम्मेदारी का कितना एहसास था। सुस्त घोड़ा अत्यन्त तीव्र गतिवाला हो गया, यह आप (सल्ल॰) की बरकत है।

इस हदीस से उधार के रूप में किसी से कुछ लेने का वैध होना ज्ञात होता है। किसी को कोई चीज़ उधार देना एक सामाजिक आवश्यकता है। इसकी ओर से असावधानी नहीं होनी चाहिए। वह समाज अत्यन्त ही स्वार्थी होगा जहाँ कोई किसी के काम न आता हो, जहाँ लोगों को सिर्फ़ अपना ही हित प्रिय हो।

(2) हज़रत अबू-उमामा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना है, "उधार ली हुई चीज़ वापस की जाए। 'मिनहा' का वापस करना भी ज़रूरी है। क़र्ज़

चुकाया जाए और ज़मानत लेनेवाले के लिए ज़रूरी है कि ज़मानत अदा करे।"   (हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् ऐसा नहीं होना चाहिए कि ली तो किसी से कोई चीज़ उधार, लेकिन उसपर क़ब्ज़ा करके बैठ रहे और उसे वापस करने का नाम ही नहीं लेते।

'मिनहा' उस जानवर, ज़मीन और पेड़ आदि को कहते हैं जो किसी को उधार दिया जाए ताकि उनसे दूध, फल आदि से लाभ उठा ले। मिनहा में सिर्फ़ लाभ प्राप्त करने का अवसर दिया जाता है। इसलिए लाभ उठाने के बाद उसके अस्ल मालिक के हवाले कर देना चाहिए। यह दानशीलता और साहस की बात है कि आदमी किसी को अपनी कोई चीज़ लाभ उठाने या उसे इस्तेमाल करने के लिए बिना किसी बदले के दे दे, उदाहरणार्थ गाय या बकरी दूध पीने के लिए, बाग़ फलों से लाभ उठाने के लिए। मिनहा के रूप में जो चीज़ मिली हो उसे अपनी निजी वस्तु नहीं समझना चाहिए, बल्कि रीति के अनुसार लाभ उठाकर चीज़ अस्ल मालिक को वापस कर देना चाहिए।

हिबा (अनुदान)

(1) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि वे एक सफ़र में नबी (सल्ल॰) के साथ थे और वे हज़रत उमर (रज़ि॰) के एक उद्दण्ड ऊँट पर सवार थे। वह नबी (सल्ल॰) की सवारी से आगे बढ़ जाता तो उनके पिता (हज़रत उमर) कहते कि ऐ अब्दुल्लाह, कोई व्यक्ति नबी के आगे न बढ़े। नबी (सल्ल॰) ने (हज़रत उमर से) कहा, "उसे मेरे हाथ बेच दो।" हज़रत उमर ने कहा, "वह तो आप ही का है।" आप (सल्ल॰) ने उसे ख़रीद लिया। फिर आप (सल्ल॰) से कहा, "ऐ अब्दुल्लाह, यह तुम्हारा है जो चाहो करो।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का आदर और सम्मान हर अवसर और हर स्थिति में ज़रूरी है। अतः हज़रत उमर (रज़ि०) ने इसे पसन्द नहीं किया कि किसी की सवारी नबी (सल्ल०) की सवारी से आगे निकल जाए।

नबी (सल्ल०) ने ख़रीदे हुए ऊँट को हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि०) को दे दिया और स्पष्ट कर दिया कि यह ऊँट तुम्हारा है। तुम जो चाहो करो। इसे सवारी के लिए अपने पास रख सकते हो या जैसा चाहो, इसे किसी के हाथ बेच भी सकते हो, क्योंकि अब यह तुम्हारी सम्पत्ति है।

हिबा यह है कि कोई व्यक्ति अपनी ख़ुशी से अपनी कोई चीज़ किसी व्यक्ति को दे दे। मकान, वस्त्र, दिरहम व दीनार कोई भी चीज़ हिबा कर सकते हैं। हिबा और हदया शरीअत की दृष्टि में अच्छा समझा गया है। यह ऐसी नेकी है जिसकी प्रेरणा अल्लाह ने दी है। नबी (सल्ल०) ने भी कहा है, "जो अपनी आजीविका में कुशादगी से ख़ुश होना चाहता है और यह कि देर तक उसकी चर्चा रहे, उसे चाहिए कि अपने नातेदारों के साथ अच्छा व्यवहार करे।" (हदीस : बुख़ारी)

हिबा की शर्तों में से है कि जिसे कोई चीज़ हिबा की गई हो वह उसे स्वीकार करे और उसे अपने अधिकार में ले ले। यदि अधिकार में लेने से पहले हिबा करनेवाले की मृत्यु हो गई तो जिसे हिबा किया गया है उसका उसमें कोई हक़ नहीं रहेगा। मरनेवाले के उत्तराधिकारी उसके हक़दार होंगे।

(2) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "हिबा करके उसे वापस लेनेवाला उस कुत्ते की तरह है जो उल्टी करे फिर उसे खाए।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् हिबा करके वापस लेना अत्यन्त गिरी हुई और घिनावनी बात है। इसकी बुराई को आपने एक मिसाल के द्वारा स्पष्ट किया।

(३) हज़रत जाबिर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "उमरा, उमरावालों के लिए जाइज़ है और रुक़बा, रुक़बावालों के लिए जाइज़ है।" (हदीस : मुसनद अहमद, तिरमिज़ी, अबू-दाऊद)

व्याख्या : अगर कोई व्यक्ति किसी को अपना मकान यह कहकर देता है कि जब तक तुम जीवित हो इससे लाभ उठाओ, उदाहरणार्थ मकान में निवास करो, बाग़ की आमदनी से लाभ उठाओ। यह हिबा 'उमरा' है। शरीअत ने इसे वैध ठहराया है। अगर कोई बिना शर्त हिबा करता है, उदाहरणार्थ वह कहता है कि यह मकान तुम्हें उमरा के तौर पर दे रहा हूँ तो यह मकान जिसको हिबा किया जा रहा है उसका हो जाएगा। उसके बाद उसके वारिसों (उत्तराधिकारियों) को मिलेगा। नबी (सल्ल॰) का कथन है, "उमरा उसके लिए है जिसे हिबा किया गया," (हदीस : बुख़ारी)। अगर हिबा करनेवाला यूँ कहता है कि यह चीज़ तुम्हें दे रहा हूँ तुम्हारे जीवन तक के लिए तो यह मालिक को वापस हो जाएगी जैसा कि सहीह मुस्लिम में है—

> "हिबा करनेवाला अगर कहता है कि यह चीज़ तुम्हें दे रहा हूँ जब तक तुम जीवित हो तब तक के लिए, तो यह (मृत्यु के पश्चात्) मालिक को वापस हो जाएगी।"

रुक़बा की मिसाल यह है कि जैसे कोई कहे कि तुम्हारे जीवन तक मेरा यह मकान तुम्हारा है, अगर तुम मुझसे पहले मर गए तो मेरा मकान मुझे वापस हो जाएगा और अगर मैं पहले दुनिया से चला गया तो यह मकान तुम्हारे ही पास रहेगा। रुक़बा को नबी (सल्ल॰) ने पसन्द नहीं किया है। इसलिए कि दोनों पक्षों को एक-दूसरे की मौत का इन्तिज़ार रहेगा। शैतान उनमें से किसी को किसी ग़लत कार्रवाई पर भी उभार सकता है। अधिकतर उलमा इसी लिए रुक़बा से रोकते हैं। लेकिन अगर कोई हिबा रुक़बा करता है तो उसपर उमरा के आदेश लागू होंगे। अगर हिबा करनेवाले ने बिना किसी शर्त के रुक़बा किया है

तो जिसको हिबा किया गया वह और इसके उत्तराधिकारी उसके मालिक होंगे। और अगर हिबा करनेवाले ने वापसी की शर्त लगा दी है तो यह हिबा वापस हो सकता है, दूसरे रूप में वापस नहीं होगा।

नबी (सल्ल॰) ने उमरा और रुक़बा से रोका भी है और बताया है कि इससे अपनी मिल्कियत दूसरे की ओर स्थानांतरित हो जाती है। और मरने के बाद उसके उत्तराधिकारी उसके हक़दार ठहरते हैं। इसलिए बिना किसी अनिवार्य आवश्यकता के अपने आपको आर्थिक घाटे में डालना दीन में अपेक्षित नहीं है। कभी-कभी भावनाओं के प्रवाह में आकर आदमी एक काम कर जाता है, लेकिन आगे चलकर वह बड़ी कठिनाइयों में पड़ जाता है। इसलिए ऐसे कामों में सावधानी की आवश्यकता होती है, जिनमें किसी सख़्त आज़माइश और फ़ितने की आशंका हो।

(4) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "कोई व्यक्ति अपने हिबा को वापस न ले। केवल बाप के लिए वैध है कि वह अपने बेटे से अपने किए हुए हिबा को ले ले।" (हदीस : नसई, इब्ने-माजा)

व्याख्या : बाप-बेटे का पारस्परिक सम्बन्ध सामान्य सम्बन्धों से पूर्णतः भिन्न होता है। इसलिए जिस प्रकार बाप ज़रूरत पड़ने पर औलाद के माल से अपने ऊपर ख़र्च कर सकता है, उसी प्रकार जो चीज़ उसने अपने बेटे को हिबा के रूप में दी है, आवश्यकता पड़ने पर वह उससे भी लाभ उठा सकता है।

(5) हज़रत नोमान-बिन-बशीर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि मेरे बाप मुझे उठाकर अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के पास ले गए और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, आप गवाह रहें कि मैंने नोमान को अमुक-अमुक चीज़ अपने माल में से हिबा की है। आप (सल्ल॰) ने कहा, "क्या अपने हर एक बेटे को ऐसे ही दिया है जैसे

नोमान को दिया है?" मेरे बाप ने कहा कि नहीं। आप (सल्ल०) ने कहा, "फिर मेरे सिवा किसी दूसरे को इसपर गवाह कर लो।" फिर कहा, "क्या तुमको इससे ख़ुशी होगी कि तुम्हारे साथ नेकी करने में सब बराबर हों?" कहा कि हाँ, क्यों नहीं। आप (सल्ल०) ने कहा, "फिर ऐसा न करो (कि एक को दो और एक को न दो)।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : "मेरे सिवा किसी और को गवाह कर लो" अर्थात् मैं इस अन्याय और अत्याचार पर गवाह कैसे बन सकता हूँ!

यह हदीस बताती है कि अपनी सन्तान के बीच किसी प्रकार का अन्तर एवं भेदभाव करना बहुत ही अनुचित बात है। जिस प्रकार बाप अपनी सन्तान से अच्छे व्यवहार की आशा और आकांक्षा रखता है, ठीक उसी प्रकार उसे भी चाहिए कि वह अपनी सन्तान के साथ समानता का व्यवहार करे। अगर कोई चीज़ दे तो अपनी सब औलाद को दे। एक को देना और दूसरे को वंचित रखना इस्लामी शिक्षाओं के बिल्कुल विरुद्ध है।

वक़्फ़ (धर्मार्थ दान)

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि०) बयान करते हैं कि (उनके पिता) हज़रत उमर (रज़ि०) को ख़ैबर की कुछ ज़मीन (माले-ग़नीमत के वितरण के अवसर पर) मिली तो वे नबी (सल्ल०) की सेवा में उपस्थित हुए और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, मुझे ख़ैबर में ऐसी भूमि मिली है कि उससे अच्छा माल मुझे कभी नहीं मिला है। आप (सल्ल०) उसके विषय में मुझे क्या आदेश देते हैं? आप (सल्ल०) ने कहा, "अगर चाहो तो ऐसा करो कि अस्ल ज़मीन को वक़्फ़ कर दो और उसकी पैदावार सदक़ा क़रार दे दो।" अतः हज़रत उमर (रज़ि०) ने उसको (उसी प्रकार वक़्फ़ करके) सदक़ा क़रार दे दिया कि अस्ल ज़मीन न तो बेची

जाए न हिबा की जाए, न उसमें विरासत जारी हो। उसकी आमदनी ख़र्च हो फ़क़ीरों और निकट सम्बन्धियों पर और ग़ुलामों को आज़ाद कराने की मद में और अल्लाह की राह में और मुसाफ़िरों और मेहमानों की सेवा में—और उसका संरक्षक उसमें से नियमानुसार खाए और (अपने बाल-बच्चों को) खिलाए, बशर्ते कि वह उसके द्वारा माल इकट्ठा करने और मालदार बननेवाला न हो।

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : ख़ैबर पर विजय प्राप्त करने के अवसर पर वहाँ की ज़मीन का लगभग आधा भाग नबी (सल्ल॰) ने मुजाहिदों में वितरित किया था। हज़रत उमर (रज़ि॰) के हिस्से में ज़मीन का जो टुकड़ा आया, वह उन्हें बहुत क़ीमती महसूस हुआ। ख़ैबर की ज़मीन सामान्यतः उपजाऊ थी। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने इरादा किया कि ख़ैबर की इस ज़मीन को जो उनके हिस्से में आई थी, अल्लाह की राह में दे दें और अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करें। इसके लिए अच्छा तरीक़ा क्या हो सकता है, इसके लिए उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से मार्गदर्शन की इच्छा व्यक्त की। आप (सल्ल॰) ने मशवरा दिया कि वे इस ज़मीन को वक़्फ़ कर दें ताकि वह सदक़ए-जारिया हो जाए। अर्थात् उससे लोगों को हमेशा फ़ायदा पहुँचता रहे। इस मशवरे के बाद हज़रत उमर (रज़ि॰) ने उसे वक़्फ़ कर दिया और उसकी आमदनी को कहाँ ख़र्च किया जाए यह भी निश्चित कर दिया। ये मद लगभग वही हैं जो ज़कात के मद होते हैं (देखें क़ुरआन 9:60)। जायदाद के संरक्षक के बारे में कहा कि वह खाने-पीने और अपने घरवालों या मेहमानों को खिलाने के लिए रीति के मुताबिक़ ले सकता है। उसका उद्देश्य धनवान बनने का नहीं होना चाहिए।

वक़्फ़ के द्वारा वक़्फ़ की हुई चीज़ सुरक्षित हो जाती है। उसे न हिबा किया जा सकता है और न उसमें विरासत क़ायम हो सकती है।

उसकी आमदनी अल्लाह की राह में निश्चित मदों ही में ख़र्च होगी। वक़्फ़ का एलान या वक़्फ़ की हुई चीज़ को जिसके लिए वक़्फ़ किया गया हो उसके हवाले करने से वक़्फ़ अनिवार्य हो जाता है। अब न उसे रद्द कर सकते हैं और न उसे बेचा या हिबा किया जा सकता है। वक़्फ़ करने के बाद वक़्फ़ की हुई चीज़ वक़्फ़ करनेवाले की मिल्कियत से निकल जाती है और हमेशा के लिए सदक़ए-जारिया क़रार पाती है। अगर वक़्फ़ की हुई ज़मीन आदि से किसी कारणवश लाभ प्राप्त करना सम्भव न रहे तो कुछ उलमा के विचार में उसे बेचकर उसकी क़ीमत उसी तरह के कामों में ख़र्च करनी चाहिए जिस प्रकार के कामों के लिए वक़्फ़ करनेवाले ने उसे वक़्फ़ किया था। वक़्फ़ के सिलसिले में विस्तृत विवरण फ़िक़ह की किताबों में देखा जा सकता है।

इस्लाम से पहले अरबवासी वक़्फ़ की अवधारणा से परिचित न थे, जैसा कि 'हुज्जतुल्लाहिल-बालिग़ह्' में शाह वलीयुल्लाह (रह॰) ने इसका उल्लेख किया है।

(2) हज़रत सअद-बिन-उबादा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी माँ का निधन हो गया है तो (उनके हक़ में) कौन-सा सदक़ा अधिक उत्तम होगा? आप (सल्ल॰) ने कहा, "पानी।" अतः उन्होंने एक कुआँ खुदवाया और कहा कि यह उम्मे-सअद (सअद की माँ) के लिए है।

(हदीस : अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : कुछ रिवायतों से मालूम होता है कि हज़रत सअद-बिन-उबादा (रज़ि॰) की माँ का जिस समय निधन हुआ है, उस समय वे माँ के पास मौजूद नहीं थे बल्कि वे किसी सफ़र में थे। सफ़र से वापसी पर वे नबी (सल्ल॰) की सेवा में उपस्थित हुए और कहा कि मेरा ख़याल है कि अगर मैं माँ के पास होता तो वे आख़िरत के लिए सदक़ा आदि की वसीयत ज़रूरत करतीं। मैं सवाब पहुँचाने के उद्देश्य से सदक़ा करने का

इरादा रखता हूँ। किस प्रकार के सदक़े से उन्हें अधिक सवाब मिल सकता है? नबी (सल्ल०) ने उन्हें कुआँ खुदवाने का मशवरा दिया। अतः उन्होंने ऐसी जगह जहाँ कुएँ की ज़रूरत थी कुआँ खुदवा दिया और उसे इस उद्देश्य के लिए वक़्फ़ कर दिया कि उसका सवाब उनकी माँ को पहुँचता रहे। कुछ रिवायतों में बाग़ वक़्फ़ करने का भी उल्लेख मिलता है। संभव है यह कुआँ उसी बाग़ में खुदवाया हो और दोनों को सवाब पहुँचाने के उद्देश्य से वक़्फ़ किया हो।

मालूम हुआ कि सवाब पहुँचाने की धारणा ग़ैर-इस्लामी कदापि नहीं है। किसी मरनेवाले व्यक्ति को सवाब पहुँचाने के उद्देश्य से नेक काम किया जा सकता है।

क़र्ज़

(1) हज़रत इमरान-बिन-हुसैन से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जिस किसी का किसी व्यक्ति पर कोई हक़ (क़र्ज़ आदि) हो और वह उस (वुसूल करने) में समय की छूट दे (वुसूल करने में जल्दी न करे) तो उसे (दी हुई मुहलत के) प्रत्येक दिन के बदले में सदक़े का सवाब मिलेगा।"

(हदीस : मुसनद अहमद)

व्याख्या : धन का यह एक महत्त्वपूर्ण उपयोग है कि ज़रूरतमन्दों को ऋण देकर उनकी सहायता की जाए। क़र्ज़ देने का सवाब सदक़े से कम नहीं, बल्कि अधिक ही होता है। इसलिए कि क़र्ज़ देने में यह भय सदैव ही रहता है कि सम्भव है क़र्ज़ की वापसी समय पर न हो सके। और इसकी भी सम्भावना रहती है कि कोई ऐसी आपदा आ पड़े कि क़र्ज़ में दी हुई रक़म ख़तरे में पड़ जाए। इसके विपरीत सदक़ा करके आदमी निश्चिन्त हो जाता है। वह अल्लाह से बदला और सवाब पाने की आशा रखता है। उसे किसी प्रकार का भय या ख़तरा नहीं लगा रहता।

इस हदीस में इस बात की प्रेरणा दी गई है कि ऋणी के साथ अत्यन्त सज्जनता और नरमी की नीति अपनाई जाए। यदि वह क़र्ज़दार को अधिक से अधिक मुहलत देता है ताकि क़र्ज़ चुकाने में उसे सुविधा हो तो यह भी एक नेकी है। और उसकी दी हुई मुहलत का प्रत्येक दिन उसके लिए सदक़े की हैसियत रखता है।

यह एक हक़ीक़त है कि इस्लाम में स्वार्थपरता, कठोरता और निर्दयता की कोई गुंजाइश नहीं है। इस्लाम और भौतिकवादी दृष्टिकोण में मौलिक अन्तर पाया जाता है। भौतिकवादी मानसिकता को किसी ऐसे काम से कोई लगाव नहीं होता जिसमें उसका कोई प्रत्यक्ष भौतिक लाभ न हो। इसके विपरीत इस्लाम जीवन में जिस चीज़ को महत्त्व देता है वह मनुष्य की सुशीलता और चरित्र है। उच्च नैतिकता और चरित्र की आशा भौतिकवादी विचारधारा से नहीं की जा सकती। इनसान के लिए संसार में अल्लाह को जो कर्म प्रिय हैं वे वही हैं जो यदि किसी व्यक्ति में पाए जाएँ तो उसके आचरण की उच्चता और उसके व्यक्तित्त्व की महानता से इनकार नहीं किया जा सकता।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "शहीद का हर गुनाह माफ़ हो सकता है, मगर क़र्ज़ माफ़ नहीं होगा।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : एक रिवायत में है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "उस हस्ती की क़सम जिसके हाथ में मुहम्मद के प्राण हैं, अगर कोई व्यक्ति अल्लाह की राह में मारा जाए और फिर जीवित हो, फिर अल्लाह की राह में मारा जाए और फिर जीवित हो, फिर अल्लाह की राह में मारा जाए और फिर जीवित हो, और उसके जिम्मे क़र्ज़ हो तो वह जन्नत में प्रवेश नहीं पा सकता जब तक कि उसका क़र्ज़ चुका न दिया जाए," (हदीस : मुसनद अहमद, शरहुस्सुन्नह)। अर्थात् बार-बार की शहादत भी उसके क़र्ज़ का प्रायश्चित नहीं बन सकती।

नबी (सल्ल॰) ने जहाँ एक ओर क़र्ज़दार व्यक्ति के साथ नरमी अपनाने की प्रेरणा दी है वहीं दूसरी ओर आप (सल्ल॰) ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि क़र्ज़दार क़र्ज़ को कोई साधारण चीज़ न समझे। उसे क़र्ज़ चुकाने की ओर से सुस्ती और लापरवाही से कदापि काम न लेना चाहिए। उसे पूरी कोशिश करनी चाहिए कि वह ऋण से जल्द से जल्द छुटकारा पा ले। वह जान ले कि क़र्ज़ के कारण वह जन्नत में प्रवेश न पा सकेगा। क़र्ज़ लेकर उसे अदा करने की ओर से निश्चिन्त रहना अत्यन्त ग़ैर-ज़िम्मेदारी की बात है। जन्नत के पवित्र वातावरण के अधिकारी वे कैसे हो सकेंगे जिनके मन-मस्तिष्क सुशीलता और चरित्र के द्वारा पवित्रता प्राप्त करने से वंचित रहे।

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि जब अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के सामने किसी ऐसे व्यक्ति का जनाज़ा लाया जाता जो क़र्ज़दार होता तो आप (सल्ल॰) पूछते कि, "क्या इस व्यक्ति ने अपने क़र्ज़ को चुकाने के लिए कुछ छोड़ा है?" अगर बताया जाता कि यह व्यक्ति इतना माल छोड़कर मरा है जिससे इसका क़र्ज़ चुकाया जा सकता है तो आप (सल्ल॰) उसके जनाज़े की नमाज़ पढ़ लेते। और अगर यह न बताया जाता तो आप (सल्ल॰) मुसलमानों से कहते कि "तुम अपने साथी की नमाज़े-जनाज़ा पढ़ लो।" फिर जब अल्लाह ने आप (सल्ल॰) पर विजय के द्वार खोल दिए तो आप (सल्ल॰) भाषण के लिए खड़े हुए और कहा, "मैं ईमानवालों पर स्वयं अपनी जानों से बढ़कर हक़ रखता हूँ। अतः जो मोमिन व्यक्ति इस दशा में मरे कि उसपर क़र्ज़ हो तो उसके क़र्ज़ का चुकाना मेरे ज़िम्मे है और जो व्यक्ति माल छोड़कर मरे तो वह माल उसके वारिसों का है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : यह किसी के लिए कितनी बदनसीबी की बात है कि ख़ुदा का रसूल मौजूद हो और वह उसके जनाज़े की नमाज़ पढ़ने से

इनकार कर दे। क़र्ज़दार मरनेवाले के जनाज़े की नमाज़ पढ़ने से नबी (सल्ल॰) के इनकार करने का एक कारण तो यह मालूम होता है कि इस प्रकार लोग सतर्क हो जाएँगे कि क़र्ज़दार होकर दुनिया से जाना कितना जघन्य अपराध है। इसके अतिरिक्त इसमें यह रहस्य भी प्रतीत होता है कि इससे लोगों के दिल में करुणा का भाव जागृत होगा और मरनेवाले के क़र्ज़ को चुकाने की कोई व्यवस्था हो जाएगी। अतः रिवायत में आता भी है कि एक ऐसे अवसर पर जबकि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने जनाज़े की नमाज़ पढ़ने से इनकार किया और कहा कि तुम अपने साथी के जनाज़े की नमाज पढ़ लो तो हज़रत अली (रज़ि॰) ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, "इसका क़र्ज़ चुकाना मेरे ज़िम्मे है।" फिर आपने जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई। (हदीस : शरहुस्सुन्नह्)

ऐसे ही एक अवसर पर जबकि मरनेवाला तीन दीनार का क़र्ज़दार था और उसने अपने पीछे कुछ छोड़ा भी न था कि उससे उसका क़र्ज़ चुकाया जा सकता, नबी (सल्ल॰) ने जनाज़े की नमाज़ पढ़ाने से इनकार कर दिया और कहा कि तुम अपने साथी के जनाज़े की नमाज़ पढ़ लो। हज़रत क़तादा (रज़ि॰) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल, आप इसके जनाज़े की नमाज़ पढ़ा दें। इसका क़र्ज़ चुकाना मेरे ज़िम्मे है।"

(हदीस : बुख़ारी)

फिर जब आर्थिक समृद्धि प्राप्त हुई और तंगी का ज़माना वह नहीं रहा जो पहले था तो नबी (सल्ल॰) ने एलान कर दिया कि मरनेवाले के ज़िम्मे अगर क़र्ज़ है तो उसे चुकाना मेरे ज़िम्मे है। बल्कि एक रिवायत में तो यहाँ तक है कि आप (सल्ल॰) ने कहा, "जिसने अपने पीछे माल छोड़ा तो वह उसके बाल-बच्चों को मिलेगा और जिस किसी ने अपने पीछे क़र्ज़ या छोटे कमज़ोर बच्चे आदि छोड़े हैं तो वह क़र्ज़ मेरे ज़िम्मे होगा, और बच्चों आदि की देखभाल भी मेरी ज़िम्मेदारी है।"

(हदीस : मुस्लिम)

(4) हज़रत अबुल-युस्र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना कि "जो व्यक्ति तंगदस्त को मुहलत दे या अपना क़र्ज़ माफ़ कर दे तो अल्लाह उसे अपनी छाया में जगह प्रदान करेगा।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् अल्लाह की रहमत उसको अपनी छाया में ले लेगी और वह हर प्रकार के ताप और कठिनाइयों की ओर से निश्चिन्त होगा। यह कैसे सम्भव है कि जिस व्यक्ति का व्यवहार ख़ुदा के किसी बन्दे के साथ यह हो कि वह उसे परेशानियों और कष्टों से बचाने के लिए अगर वह उसका क़र्ज़दार है तो अधिक से अधिक मुहलत देता है बल्कि अगर उसे महसूस होता है कि क़र्ज़ चुकाना उसके लिए आसान नहीं है तो उसे परेशानियों से बचाने के लिए वह उस क़र्ज़ ही को माफ़ कर देता है जिसके बोझ से वह दबा हुआ था तो क्या अल्लाह इसे पसन्द कर सकता है कि वह उसके साथ इससे भिन्न नीति अपनाए जो उस व्यक्ति की अल्लाह के बन्दों के साथ है।

(5) हज़रत अबू-क़तादा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह फ़रमाते हुए सुना कि "जो व्यक्ति (अपना क़र्ज़ वुसूल करने में) तंगदस्त को मुहलत दे या अपना क़र्ज़ माफ़ कर दे तो अल्लाह उसे क़ियामत के दिन की कठिनाई से छुटकारा देगा।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : क़ियामत का दिन अत्यन्त भयावह और कठिन होगा। इस दिन की कठिनाई से वही लोग सुरक्षित रह सकते हैं जो स्वयं यह पसन्द नहीं करते कि कोई कठिनाई और परेशानी में पड़े। क़ियामत का दिन वास्तव में हमारे जीवन का वास्तविक चित्र बनकर हमारे लिए प्रकट होगा। हमारा वास्तविक अस्तित्त्व नैतिक है। नैतिकता की दृष्टि से हम जैसे होंगे वह दिन भी हमारे लिए उसी के अनुसार सुखद या दुखद और हृदयविदारक होगा। जिस व्यक्ति का नैतिक आचरण यह है कि उसे

किसी को मुसीबत में पड़ा देखना पसन्द नहीं, फिर अल्लाह कैसे उसे मुसीबतों में पड़ा हुआ देखना पसन्द कर सकता है!

(6) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति लोगों के माल (क़र्ज़) ले और उनको अदा करने का इरादा रखता हो तो अल्लाह उससे अदा करा देता है। और जो व्यक्ति लोगों के माल क़र्ज़ ले और उसका इरादा उनको विनष्ट करने का हो (अदा करने की नीयत न हो) तो अल्लाह उसको इस नीति के कारण विनष्ट कर देगा।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : नीयत अगर ठीक है तो अल्लाह क़र्ज़ चुकाने की व्यवस्था करता है और कभी-कभी इस तरह से यह व्यवस्था होती है कि व्यक्ति चकित होकर रह जाता है। लेकिन किसी ने अगर माल क़र्ज़ के रूप में ले तो लिया, लेकिन नीयत उसकी ख़राब हो गई, वह उसे लौटाने का इरादा नहीं रखता तो वह यह न समझे कि वह बहुत चतुर है। वह अपने आपको बहुत बड़े घाटे में डाल रहा है। वह तो वक़्त पर काम आनेवाले अर्थात् क़र्ज़ देनेवाले को केवल धन की क्षति पहुँचाएगा लेकिन अपनी इस नीति से वह स्वयं को जो हानि पहुँचाएगा, आर्थिक क्षति उसकी तुलना में कुछ भी नहीं है। उसके इस व्यवहार से उसके व्यक्तित्व को आघात पहुँचेगा और वह चरित्रहीन हो जाएगा। चरित्र न हो तो मनुष्य की हैसियत एक मृत की होती है जिसमें प्राण नहीं होते। उस मृतक को अपने घर में रखना कोई पसन्द नहीं करता। फिर जिस व्यक्ति के विनाश का इरादा अल्लाह कर ले उसे जिस अपमान, बदहाली और घाटे का सामना करना पड़ेगा, उसका तो अनुमान करना भी हमारे लिए मुशकिल है।

(7) हज़रत अबू-मूसा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "बड़े गुनाहों के बाद, जिनसे अल्लाह ने रोका है, अल्लाह की दृष्टि में गुनाह जिसके साथ बन्दा उससे मिले यह है कि कोई

व्यक्ति इस हाल में मरे कि उसपर क़र्ज़ हो और उसने अपने पीछे इतना माल न छोड़ा हो कि उसका क़र्ज़ चुकाया जा सके।"

(हदीस : मुसनद अहमद, अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् उन बड़े गुनाहों के बाद जिनसे मुसलमानों को बचना चाहिए और जिनसे बचे रहने की अल्लाह ने ताकीद की है, यह बहुत बड़ा गुनाह है कि कोई क़र्ज़ का बोझ लिए हुए दुनिया से विदा हो और जब वह अल्लाह से मिले तो उसका दामन इस घोर पाप के गुनाह से दाग़दार दिखाई दे। हर एक मुस्लिम व्यक्ति का प्रयास यह होना चाहिए कि वह अल्लाह से इस हाल में मिले कि अल्लाह उससे प्रसन्न हो कि मेरे इस बन्दे ने अपने पूरे जीवन में मेरी आज्ञा का पालन किया। किसी मामले में उसने मेरे आदेशों की अवहेलना नहीं की, और बन्दे के दिल में यह मधुरतम भाव पाया जाता हो कि आज वह अपने रब से मिल रहा है जिससे मिलने की आकांक्षा और प्रतीक्षा में उसका जीवन व्यतीत हुआ है, जिसकी अनन्त अनुकम्पा उसपर हुई है। आज उसकी कृपा से प्रत्यक्ष रूप से असीम नेमतें वह प्राप्त कर सकेगा।

(8) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "मालदार का टाल-मटोल करना ज़ुल्म है।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : जिस किसी के ज़िम्मे क़र्ज़ है और वह किसी तंगी में भी नहीं है जो क़र्ज़ उसे चुकाना है उसे वह चुका सकता है तो फिर उसे न चुकाना और उसमें विलम्ब और टाल-मटोल से काम लेना स्पष्टतः ज़ुल्म और अत्याचार है। इसका अर्थ इसके सिवा और क्या होगा कि उसकी ज़ाहिर में तंगी तो दूर हो गई किन्तु उसके दिल की तंगी अभी तक न गई, अन्यथा क्या चीज़ उसके क़र्ज़ चुकाने में रुकावट बन सकती थी। एक व्यक्ति ज़रूरत के समय उसके काम आया और उसने उसे क़र्ज़ दिया लेकिन वह उसके उपकार को भुला रहा है। उपकार का

बदला तो उपकार होता है न कि इसके विपरीत उपकारकर्ता को परेशानी में डालना। आप स्वयं समझ सकते हैं कि हमपर कितने हक़ हैं। अल्लाह के, उसके दीन के, क़रीबी नातेदारों के और सामान्य लोगों के कितने सारे हक़ होते हैं जो हमें अदा करने हैं। वे हमपर फ़र्ज़ ही की तरह वाजिब हैं, जिनका अदा करना हमारा कर्त्तव्य होता है। अगर हम इन हक़ों और कर्त्तव्यों को निभाने की स्थिति में होते हुए टाल-मटोल से काम लेते हैं तो न्याय की दृष्टि में हम अपराधी सिद्ध होते हैं। अब यह हमारी ज़िम्मेदारी होती है कि हम उन हक़ों और दायित्वों को समझें और यह देखें कि हम उनको कहाँ तक अदा कर सकते हैं। जिस हद तक भी अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने का सामर्थ्य प्राप्त है, उससे असावधानी बरतना ज़ुल्म होगा। और ज़ुल्म के परिणाम कभी अच्छे नहीं हुआ करते। क्या अल्लाह का हमपर यह एहसान नहीं है कि उसने हमें पैदा किया और विविध प्रकार की नेमतों से हमें उपकृत किया और हमारे मार्गदर्शन की व्यवस्था की! क्या अब यह उसका हमारे ज़िम्मे क़र्ज़ नहीं है कि हम उपकार का बदला उपकार से दें और उसके कृतज्ञ बन्दे बनकर रहें! क्या उसके दीन का यह हक़ नहीं है कि हम उसके प्रचार-प्रसार, उसकी स्थापना और सुदृढ़ता के लिए किए जानेवाले प्रयासों में अपना योगदान दें?

क्या माता-पिता का हम पर क़र्ज़ नहीं है कि उन्होंने हमारे लिए जो कष्ट सहन किए, उन्होंने सिर्फ़ हमारा पालन-पोषण ही नहीं किया बल्कि अपने स्नेह और वात्सल्य से हमें उपकृत करने में भी उन्होंने कोई कमी नहीं की? अब क्या हम पर यह अनिवार्य नहीं होता कि अपने अच्छे आचरण और सेवा से उनको सुख पहुँचाएँ और उन्हें कदापि दुखी और अप्रसन्न न होने दें? इसी तरह आप दूसरे हक़ों के विषय में भी सोच सकते हैं कि उनके अदा करने में यदि असावधानी होती है तो इसे अन्याय और अत्याचार के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

(9) हज़रत आइशा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) नमाज़ में दुआ माँगते तो कहते, "ऐ अल्लाह, मैं गुनाह और क़र्ज़ से तेरी पनाह माँगता हूँ।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मालूम हुआ कि जब क़र्ज़ और गुनाह से बचने के लिए अल्लाह का रसूल, अल्लाह से प्रार्थनाएँ करता है तो हमारे लिए भी इससे असावधान रहने का कोई औचित्य नहीं हो सकता। हमें भी गुनाह और क़र्ज़ की मुसीबत से बचने के लिए अल्लाह से दुआ करनी चाहिए। इसलिए कि अल्लाह की मदद के बिना न हम किसी गुनाह से बच सकते हैं और न किसी मुसीबत से सुरक्षित रह सकते हैं। अल्लाह एक जीवन्त और शाश्वत सत्ता है। वह सुनता और देखता है। वह सर्वशक्तिमान है। जिसका भी उसपर भरोसा होगा वह हर मामले में उसकी ओर पलटेगा और उससे सहायता की याचना करेगा।

(10) हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) के ज़िम्मे मेरा क़र्ज़ था तो आप (सल्ल॰) ने मुझे वह क़र्ज़ चुकाया तो मुझे कुछ अधिक दिया।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : नबी (सल्ल॰) ने कहा है, "लोगों में सबसे अच्छा व्यक्ति वह है जो क़र्ज़ के चुकाने में सबसे अच्छा हो," (हदीस : मुस्लिम) उल्लेखों में कई घटनाएँ ऐसी मिलती हैं कि नबी (सल्ल॰) ने क़र्ज़ के अदा करने में बेहतर ढंग अपनाया और इसी का आदेश आपने दूसरों को भी दिया। उदाहरणार्थ आप (सल्ल॰) ने पायजामा ख़रीदा तो जिस व्यक्ति से आपने पायजामा ख़रीदा था उसको तय किए हुए मूल्य से अधिक दिया। इससे मालूम होता है कि जो व्यक्ति किसी का क़र्ज़ आदि चुकाए और अपनी ओर से कुछ अधिक ही दे दे तो यह वैध है, यह ब्याज नहीं है। बशर्ते कि यह अधिक देना शर्त के अन्तर्गत न हो। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति निश्चित अवधि के लिए किसी को क़र्ज़ के तौर पर 500 रुपये देता है और यह शर्त रखता है कि वापसी के समय उसे बीस रुपये अधिक देने होंगे तो यह बिल्कुल अवैध है।

(11) हज़रत बरा-बिन-आज़िब (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "क़र्ज़दार अपने क़र्ज़ के कारण बन्दी होगा। अतः वह क़ियामत के दिन अपनी तनहाई की शिकायत अपने रब से करेगा।" (हदीस : शरहुस्सुन्नह)

क़र्ज़दार होने के कारण उसे तनहाई की मुसीबत का सामना करना पड़ेगा। तनहाई की क़ैद में होनेवाली परेशानी और बेचैनी की शिकायत वह क़ियामत के दिन अल्लाह से करेगा। लेकिन जब तक क़र्ज़ के चुकाने की कोई सूरत पैदा न होगी उसे इस मुसीबत से छुटकारा नहीं मिल सकेगा। एक दूसरी रिवायत में हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "मोमिन की आत्मा अपने क़र्ज़ के कारण लटकी रहती है (अधर में पड़ी रहती है) जब तक कि उसका क़र्ज़ चुका न दिया जाए।"

(हदीस : शाफ़िई, अहमद, तिरमिज़ी, इब्ने-माजा)

तनहाई की क़ैद की मुसीबत चाहे मरने के बाद के लोक में पेश आए या परलोक में, बड़ी भयावह मुसीबत है। हदीसों से मालूम होता है कि नेक मोमिनों को न मरने के बाद के लोक में तनहाई की मुसीबत पेश आएगी और न परलोक में उन्हें इस मुसीबत का सामना करना पड़ेगा।

यहाँ यह बात सामने रहे कि कोई अनुचित और अनावश्यक ख़र्चों के लिए नहीं बल्कि अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं और वाजिब हक़ों की अदायगी के लिए आवश्यकतानुसार क़र्ज़ लेता है। उसकी नीयत क़र्ज़ चुकाने की होती है। अगर क़र्ज़ अदा करने से पहले उसका देहान्त हो जाता है तो उसकी बात और है। आशा है कि अल्लाह क़र्ज़ देनेवालों को अपने प्रदान के द्वारा राज़ी करके उसे क़र्ज़ से छुटकारा दिला देगा। तनहाई के अज़ाब से उसे बचा लेगा। इस्लामी हुकूमत या मुस्लिम शासक और मुस्लिम समाज का भी दायित्व है कि वह उसके क़र्ज़ के

चुकाने की व्यवस्था करे और क़र्ज़ के बोझ से उसकी आत्मा को छुटकारा दिलाए।

अमानत

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "जिसने तुम्हें अमीन बनाया उसकी अमानत अदा करो और जो कोई तुम्हारे साथ विश्वासघात करे तुम उसके साथ विश्वासघात न करो।" (हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, दारमी)

व्याख्या : अर्थात जिसने तुमपर भरोसा और विश्वास किया है, तुम उसके विश्वास को ठेस न पहुँचाओ। अगर उसने तुम्हारे पास सुरक्षा के उद्देश्य से कोई चीज़ या रुपये आदि रखे हैं तो तुम उसके माँगने पर तुरन्त उसे लौटा दो। अगर किसी ने तुम्हारे साथ विश्वासघात किया हो तो तुम प्रतिशोध और बदले की भावना से भी उसके साथ विश्वासघात न करो। अगर तुम विश्वासघात करते हो तो तुम भी उसी प्रकार विश्वासघाती ठहरोगे। मोमिन विश्वासघात करके कभी भी अपनी सीरत और चरित्र को दाग़दार नहीं कर सकता। वह दुनिया में सबसे बढ़कर जिसकी सुरक्षा करता है वह उसका आचरण और चरित्र ही है।

अमानत उस माल को कहते हैं जो सुरक्षा के उद्देश्य से किसी के पास रखा जाए ताकि माल रखनेवाला जब भी चाहे अपना माल वापस ले सके। अमानत के नष्ट हो जाने की स्थिति में अमानत का रखवाला ज़ामिन या देनदार नहीं होता, शर्त यह है कि अमानत की हिफ़ाज़त में उसने कोई कोताही न की हो।

हज्र

(1) हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के ज़माने में क्रय-विक्रय किया करता था। उसकी बुद्धि में विकार था तो उसके सम्बन्धी नबी (सल्ल॰)

की सेवा में उपस्थित हुए और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! उस व्यक्ति पर हज्र कीजिए (अर्थात् प्रतिबन्ध लगा दीजिए) क्योंकि वह सौदा करता है जबकि उसकी बुद्धि में विकार है। नबी (सल्ल॰) ने उसे बुलाया और क्रय-विक्रय करने से उसको रोक दिया। उसने कहा : ऐ अल्लाह के रसूल, मुझसे सब्र न होगा कि मैं क्रय-विक्रय छोड़ दूँ। इसपर नबी (सल्ल॰) ने कहा, "यदि क्रय-विक्रय को छोड़ नहीं सकता तो मामला करते समय यह कहा करो— इस मामले में विक्रय है और धोखा नहीं है।"

(हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : किसी व्यक्ति को अल्पावस्था या पागलपन या बुद्धिहीनता या ग़रीबी के कारण माल के लेन-देन से रोक देने को 'हज्र' कहते हैं। क़ुरआन में है : "और अपने माल जिसे अल्लाह ने तुम्हारे लिए क़ायम रहने का साधन बनाया है, बुद्धिहीनों को न दो, हाँ उन्हें उसमें से खिलाते और पहनाते रहो।" (क़ुरआन, 4:5)

दूसरी जगह है, "और यतीमों को जाँचते रहो यहाँ तक कि जब वे शादी की अवस्था को पहुँच जाएँ, तो फिर अगर तुम देखो कि उनमें सूझ-बूझ आ गई है, तो उनके माल उन्हें सौंप दो।" (क़ुरआन, 4:6)

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने हज़रत मुआज़ (रज़ि॰) पर माली लेन-देन की पाबन्दी लगा दी थी जबकि वे क़र्ज़दार हो गए थे। फिर आप (सल्ल॰) ने उनके माल में से पूरा क़र्ज़ चुकाया (हदीस : दार क़ुत्नी, हाकिम)। जिस व्यक्ति के प्रति नबी (सल्ल॰) से यह निवेदन किया गया था कि उनपर क्रय-विक्रय की पाबन्दी लगा दें और लोगों को सूचित कर दें कि वे उनसे क्रय-विक्रय का कोई मामला न करें, ये हज़रत हिब्बान-बिन-मनक़ज़ (रज़ि॰) थे जैसा कि इब्ने-हजर (रह॰) और इमाम नव्वी (रह॰) ने अपनी टीकाओं में इसे स्पष्ट किया है।

इस हदीस से मालूम हुआ कि नबी (सल्ल॰) अपने लोगों पर कितने अधिक दयालु थे। सम्भावना की अन्तिम सीमा तक आप (सल्ल॰) लोगों को छूट देते थे, अर्थात् उनकी स्वतन्त्रता में बाधा न डालते थे।

तावान (जुर्माना)

(1) दजाजा की बेटी जसूरा से उल्लिखित है कि हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने कहा कि मैंने किसी को ऐसा खाना पकाते नहीं देखा जैसा सफ़ीया (रज़ि॰) अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के लिए पकाती थीं। उन्होंने एक बार आपके लिए खाना भेजा, मुझे ग़ैरत आ गई (कि मेरी बारी के अवसर पर खाना क्यों भेजा)। मैंने बरतन तोड़ डाला। फिर मैंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, जो यह हरकत मुझसे हुई इसका प्रायश्चित क्या होगा? आप (सल्ल॰) ने कहा, "बरतन का बदला उसी जैसा बरतन है और खाने का बदला उसी जैसा खाना है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् हज़रत आइशा (रज़ि॰) को ग़ैरत आई कि नबी (सल्ल॰) उनके यहाँ आए हुए हैं और आपके लिए खाना कहीं और से आए। इस अवसर पर मौजूद सहाबा (रज़ि॰) से कहा, "तुम्हारी माँ को ग़ैरत आ गई।"

अगर कोई व्यक्ति किसी की चीज़ को क्षति पहुँचाता या उसे नष्ट कर देता है तो उससे उसका तावान लिया जाएगा। यहाँ यह बात ध्यान में रहे कि क्षति के बदले में क्षति पहुँचाना वैध नहीं है। केवल तावान उसका बदला है।

(2) अब्दुल्लाह-बिन-सफ़वान के घराने के कुछ लोगों से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "ऐ सफ़वान! क्या तुम्हारे पास कुछ हथियार होंगे?" पूछा : उधार चाहते हैं या अधिग्रहीत

रूप में? आप (सल्ल॰) ने कहा, "अधिग्रहीत रूप में नहीं, बल्कि उधार चाहिए।" सफ़वान ने तीस से चालीस तक ज़िरहें (कवच) आपको दीं। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने हुनैन का युद्ध किया। फिर जब (शत्रु) बहुदेववादी परास्त हुए तो सफ़वान की ज़िरहें इकट्ठा की गईं। उनमें से कुछ ज़िरहें खो चुकी थीं। नबी (सल्ल॰) ने कहा, "ऐ सफ़वान! हमसे तुम्हारी कुछ ज़िरहें खो गई हैं। कहो तो उसका तावान तुम्हें दे दें?" उन्होंने कहा कि नहीं, ऐ अल्लाह के रसूल, मेरे दिल में वह बात अब नहीं है जो उस दिन (अर्थात पहले) थी। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् अब मैं मुसलमान हो गया हूँ, पहली जैसी हालत अब नहीं है। मैं आपसे तावान नहीं लूँगा। इससे मालूम हुआ कि जिस किसी का नुक़सान हुआ हो वह चाहे तो तावान माफ़ कर सकता है।

अकाल

(1) अब्बाद-बिन-शुरहबील (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मुझे अकाल ने सताया तो मैं मदीना के बाग़ों में से एक बाग़ में गया और एक गुच्छे को पकड़कर खाया और अपने कपड़े में कुछ फल बाँध लिए। इतने में बाग़ का मालिक आ गया। उसने मुझे मारा और मेरा कपड़ा छीन लिया। मैं अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के पास आया। आप (सल्ल॰) ने उस (बाग़वाले) से कहा, "यह ज्ञानहीन था तो तुमने इसे बताया नहीं (कि इस सम्बन्ध में धर्मादेश क्या है)। और यह भूखा था तुमने इसको खिलाया नहीं।" आप (सल्ल॰) के आदेश से उसने मेरा कपड़ा मुझे वापस कर दिया और उसने मुझे साठ साअ या तीस साअ अनाज दिए।

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् तुम्हें इसको मारना नहीं चाहिए था। तुम्हें इसके साथ सहानुभूति का व्यवहार क़रना चाहिए था। तुम इसको समझाते क्योंकि यह नादान है। तुम समझाते कि इस प्रकार किसी बाग़ को नुक़सान नहीं पहुँचाना चाहिए। तुम भूखे थे खा लिया, लेकिन तुमने इसी पर बस नहीं किया। बाँधकर अपने साथ भी ले जाने की पूरी तैयारी की।

इस हदीस से मालूम हुआ कि भूखे और मजबूर के साथ और ख़ास तौर पर अकाल के अवसर पर हमारा व्यवहार नर्मी और सहनुभूति का होना चाहिए। फिर भूखे को खाना खिलाना और उसकी भूख दूर करना जिस प्रकार आवश्यक है उसी प्रकार जो बेख़बर और नादान हो उसको दीन की शिक्षाओं से अवगत करना भी हमारा कर्त्तव्य है।

विरासत का क़ानून

किसी मुसलमान की मृत्यु के बाद उसका छोड़ा हुआ धन या सम्पत्ति उसके वारिसों में वितरित हो जाएगी। इस्लाम में इस सिलसिले के आदेश स्पष्ट रूप से दिए गए हैं। 'फ़राइज़' मीरास के उन भागों को कहते हैं जो क़ुरआन या हदीस में वारिसों के लिए निर्धारित किए गए हैं। किसी व्यक्ति के मरने के बाद उसके तरके (छोड़ी हुई सम्पत्ति) को हक़दारों की ओर स्थानान्तरित करने को विरासत कहते हैं। इस सिलसिले के कुछ पारिभाषिक शब्दों का स्पष्टीकरण आवश्यक मालूम होता है।

ज़विल-फ़ुरूज़ : वे व्यक्ति जिनका मृतक से वांशिक सम्बन्ध हो और तरके में शरीअत ने उनका हिस्सा निर्धारित किया हो।

असबा : जिनका मृतक से वांशिक सम्बन्ध पुरुष की ओर से हो। ज़विल-फ़ुरूज़ का हिस्सा देने के बाद जो शेष बचता हो वह उनका होगा।

ज़विल-अरहाम : जिनका सम्बन्ध मृतक से स्त्री के माध्यम से हो। जैसे ख़ाला, नवासी आदि।

हक़ीक़ी भाई-बहन : जो मृतक के माँ-बाप की सन्तान हों।

अल्लाती भाई-बहन : जो मृतक की मात्र बाप-शरीक सन्तान हों।

अख़याफ़ी भाई-बहन : जो मृतक की मात्र माँ-शरीक सन्तान हों।

महजूब : जो किसी वारिस की उपस्थिति के कारण वारिस न हो सके। ऐसा दो तरह से सम्भव है, या तो उसका हिस्सा कम हो जाता हो या उसे कुछ भी हिस्सा न मिल सके।

उसूल : मृतक के बाप, दादा, परदादा।

फ़ुरूअ : मृतक के बेटे, पोते, बेटी, पोती।

मृतक का माल वारिसों में बाँटने से पहले तीन चीज़ों का ख़र्च निकाल लेंगे। कफ़न-दफ़न के ख़र्च, ऋण चुकाने के लिए और वसीयत की पूर्ति। तरके (मृतक की छोड़ी हुई व्यक्तिगत सम्पत्ति) के बँटवारे से पहले क़र्ज़ चुकाना और वसीयत की पूर्ति आवश्यक है। शरीअत ने वारिसों के जो हिस्से निर्धारित किए हैं, उसी के अनुकूल तरका वारिसों में वितरित होगा। कभी ऐसा भी होता है कि कुछ कारणों से कोई वारिस तरके में हिस्सा पाने का हक़दार नहीं रहता या उसका हिस्सा कम हो जाता है।

बिल्कुल वंचित होने के कारण

(1) **कुफ़्र :** रिश्ता होने के बावजूद न तो मुसलमान ग़ैर-मुस्लिम का वारिस होगा और न ग़ैर-मुस्लिम मुसलमान का वारिस ठहरेगा।

(2) **हत्या :** कोई यदि जान-बूझकर किसी व्यक्ति की हत्या कर दे तो वारिस होते हुए भी उस मृतक की विरासत में हिस्सा नहीं पा सकता।

(3) **ग़ुलाम** : न ग़ुलाम का वारिस कोई आज़ाद व्यक्ति होता है और न ग़ुलाम ही किसी आज़ाद व्यक्ति का वारिस हो सकता है। ग़ुलाम चाहे पूर्ण ग़ुलाम हो या अधूरा, वह न वारिस होता है और न मौरूस। लेकिन कुछ उलमा ने अधूरे ग़ुलाम को अपवाद में रखा है। उनकी दृष्टि में जिस हद तक वह आज़ाद हो चुका है उसके अनुसार वह वारिस और मौरूस होगा। हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के उस ग़ुलाम के सम्बन्ध में, जिसका कुछ हिस्सा आज़ाद हो चुका है, रिवायत किया है : "आज़ादी के अनुरूप वह वारिस और मौरूस होगा।" (अल-मुग़नी)

(4) **ज़िना से उत्पन्न सन्तान** : ज़िना (व्यभिचार) से उत्पन्न सन्तान अपने पिता की वारिस नहीं होगी और न उसका बाप ही उसका वारिस होगा, अलबत्ता वह अपनी माँ का वारिस होगा और उसकी माँ उसकी वारिस होगी। नबी (सल्ल॰) ने कहा है, "औलाद बिस्तरवाले की है और ज़ानी (ज़िना करनेवाले) के लिए पत्थर हैं।"

(5) **लिआन की स्थिति में** : पति और पत्नी ने लिआन किया है तो इस स्थिति में बेटा बाप का और बाप उस बेटे का वारिस नहीं हो सकता।

(6) **मृत रूप में पैदा होना** : जन्म लेते समय अगर बच्चे के मुँह से आवाज़ नहीं निकली और वह मरा हुआ पैदा होता है तो न वह वारिस होगा और न मौरूस। क्योंकि विरासत का सम्बन्ध जीवन से होता है, जैसा कि ऊपर बयान किया जा चुका है। ज़विल-फ़ुरूज़ वे वारिस हैं जिनके लिए हिस्से शरीअत ने मुक़र्रर कर दिए हैं, उनकी संख्या बारह है। उनमें चार पुरुष हैं और आठ स्त्रियाँ।

(1) बाप, (2) दादा, चाहे ऊपर के दरजे के हों जैसे परदादा, (3) अख़याफ़ी भाई (अर्थात् माँ शरीक भाई), (4) पति, (5) पत्नी, (6) माँ, (7) जद्दा (दादी या नानी), चाहे ऊपर के दरजे की हों, जैसे

परदादी, (8) बेटी, (9) पोती, (10) हक़ीक़ी बहन, (11) अल्लाती बहन (सौतेली, बाप शरीक), (12) अख़याफ़ी बहन (माँ शरीक बहन)।

दादा, दादी और नानी, हक़ीक़ी बहन और अल्लाती मूल हक़दार नहीं। दादा बाप के स्थान पर होता है। बाप की उपस्थिति में वह मीरास का हक़दार नहीं होगा। इसी प्रकार दादी और नानी वास्तव में माँ के स्थान पर हैं। बाप की उपस्थिति में भी दादी का हक़ नहीं होता। बहन मीरास में वास्तव में बेटी के स्थान पर होती है।

असबात : असबात के अन्तर्गत वे वारिस आते हैं जिनके हिस्से निर्धारित नहीं किए गए हैं, बल्कि ज़विल-फ़ुरूज़ वारिसों के हिस्सों से बचा हुआ माल उनका होता है। ये वारिस क्रमशः चार हैं :

(1) बेटा, फिर पोता, परपोता (या इसके नीचे के दरजे के)।

(2) बाप, फिर दादा, फिर परदादा (या इसके ऊपर के दरजे के)।

(3) हक़ीक़ी और सौतेले भाई और उनके बेटे (यद्यपि नीचे के दरजे के हों)।

(4) चचा, फिर चचा का बेटा, फिर उसका पोता।

बाप ज़ू-फ़र्ज़ है, लेकिन मृतक का बेटा आदि न हो तो उसका बाप असबा भी होता है। इसी प्रकार भाई को बाप आदि न होने पर हिस्सा मिलेगा। चचा उस स्थिति में हक़ पाएगा जबकि भाई आदि न हों। इसके अतिरिक्त बेटी के साथ बेटा भी है या पोती के साथ पोता भी है या ग़ैर-अख़याफ़ी के साथ उसका भाई भी हो तो इन स्थितियों में बेटी, पोती और बहन असबा हो जाती हैं, ज़विल-फ़ुरूज़ नहीं रहतीं। ठीक इसी प्रकार यदि बहन के साथ बेटी हो तो बहन असबा क़रार पाएगी।

इन चारों का क्रम यह है— पहले दरजे का कोई असबा मौजूद है तो बाक़ी तीनों दरजों के असबात तरका (मृतक की छोड़ी हुई सम्पत्ति)

में हिस्सेदार न होंगे। पहले दरजे के असबात नहीं हैं मगर दूसरे दरजे का कोई असबा है तो तीसरे और चौथे दरजे के असबात हिस्सा न पा सकेंगे।

(1) मृतक की बेटी, पोती, परपोती (चाहे उससे भी नीचे के दरजे की औलाद हो) अर्थात मृतक का, नवासा (नाती) और नवासी, मृतक के बेटे का नवासा, नवासी। मृतक के नवासे का बेटा-बेटी, मृतक की नवासी का बेटा-बेटी। मृतक के पोते के नवासा-नवासी।

(2) दादा फ़ासिद, दादी फ़ासिदा और नानी फ़ासिदा (चाहे ये ऊपर के दरजे के हों)। दादा फ़ासिद से तात्पर्य वह है जिसके और मृतक के बीच औरत का सम्बन्ध पाया जाता हो। जैसे मृतक का नाना और मृतक की दादी या नानी का बाप। दादी फ़ासिदा या नानी फ़ासिदा उस दादी या नानी को कहेंगे जिसके और मृतक के बीच दादा फ़ासिद का सम्बन्ध पाया जाता हो। जैसे नाना की माँ और दादी या नानी के बाप की माँ। ये सब ज़विल-अरहाम हैं। जबकि दादा सहीह और दादी व नानी सहीहा ज़विल-फ़ुरूज़ हैं।

(3) हक़ीक़ी बहनों की औलाद, सौतेली बहनों की औलाद, अख़याफ़ी बहनों की औलाद, अख़याफ़ी भाई की औलाद, हक़ीक़ी भाई की बेटियाँ, सौतेले भाई की बेटियाँ।

(4) फूफियाँ चाहे हक़ीक़ी हों या सौतेली और अख़याफ़ी हों। अख़याफ़ी चचा, मामूँ और ख़ालाएँ। असबात की तरह इनका भी क्रम है और वह यह है कि ज़विल-अरहाम का तरके में हिस्सा न होगा। इसी प्रकार दूसरे दरजे की मौजूदगी में तीसरे और चौथे दरजे के ज़विल-अरहाम का हिस्सा न होगा। और तीसरे दरजे के ज़विल-अरहाम की मौजूदगी में चौथे दरजे के ज़विल-अरहाम वंचित ठहरेंगे।

ज़विल-फ़ुरूज़ के हिस्से : मृतक के तरके में बाप का हिस्सा छठा है। जबकि मृतक का बेटा या पोता या परपोता मौजूद हो। अगर उनके स्थान पर बेटी या पोती या परपोती मौजूद हो तो बाप छठा हिस्सा पाएगा और वह असबा भी होगा और अगर मृतक का बाप मौजूद न हो तो उसका दादा बाप का समकक्ष होगा।

अख़याफ़ी भाई और अख़याफ़ी बहन को तरके का छठा हिस्सा मिलेगा शर्त यह है कि वह एक हो। अगर वे दो या दो से अधिक हैं तो उनके लिए तिहाई हिस्सा है जो उनमें बराबर-बराबर बँटेगा। मृतक के बाप या दादा या उसके बेटे या पोते की मौजूदगी में अख़याफ़ी भाई-बहन तरके में हिस्सा न पाएँगे।

पत्नी के मरने पर तरके में पति का आधा हिस्सा है, शर्त यह है कि मरनेवाली की कोई औलाद न हो और अगर औलाद बेटा-बेटी या बेटे की औलाद हो तो पति केवल चौथाई का हक़दार होगा।

पति के मरने पर अगर वह बे-औलाद है तो उसके तरके में पत्नी को चौथाई मिलेगा। औलाद होने की स्थिति में वह सिर्फ़ आठवें हिस्से की हक़दार होगी। अगर पत्नियाँ कई हैं तो वे इस हिस्से को परस्पर बराबर-बराबर बाँट लेंगी।

मृतक के तरके में माँ का छठा हिस्सा है, शर्त यह है कि मृतक की औलाद या औलाद की औलाद या एक बहन या दो भाई और दो बहन या दो से अधिक भाई-बहन हों (चाहे हक़ीक़ी भाई-बहन हों या सौतले और अख़याफ़ी मौजूद हों)। अगर इनमें से कोई मौजूद नहीं है तो माँ को कुल तरके का तिहाई हिस्सा मिलेगा। अगर माँ के साथ बाप और पति या पत्नी भी हो तो ऐसी स्थिति में पति या पत्नी को हिस्सा देकर जो बाक़ी बचेगा उसमें माँ को तिहाई हिस्सा मिलेगा। दादी या नानी का हिस्सा छठा है।

मृतक की बेटी मीरास से कभी वंचित नहीं होती। अगर मृतक का बेटा मौजूद है तो वह असबा बन जाती है, अन्यथा ज़विल-फ़ुरूज़ रहती है। मृतक की अगर केवल एक बेटी है और उसके साथ कोई और नहीं है तो तरके से उसे आधा मिलेगा। अगर कोई दूसरा वारिस न हो तो बाक़ी आधा भी उसी के हिस्से में आएगा। बेटियाँ अगर दो या दो से अधिक हों और उनका कोई हक़ीक़ी या सौतेला भाई नहीं है तो उन बेटियों को तरके में से दो-तिहाई मिलेगा, जिसे वे परस्पर बराबर-बराबर बाँट लेंगी। बेटियों के साथ अगर मृतक का बेटा मौजूद है तो मृतक के तरके में जितना बेटे को मिलेगा उसका आधा हर बेटी पाएगी।

अगर मृतक की सिर्फ़ एक पोती हो तो उसे तरके में से आधा मिलेगा और अगर दो से अधिक पोतियाँ हैं तो कुल तरके का तिहाई उन्हें मिलेगा जिसे वे परस्पर बराबर-बराबर बाँट लेंगी। अगर मृतक का बेटा या पोता या परपोता नहीं है, एक बेटी है तो इस स्थिति में पोती को छठा हिस्सा मिलेगा।

अगर मृतक की औलाद हो या उसके बेटे की औलाद हो चाहे यह नीचे के दरजे की हो तो अख़याफ़ी बहन-भाई तरके में हक़दार नहीं होंगे। इसी प्रकार मृतक के बाप-दादा की मौजूदगी में भी अख़याफ़ी (माँ शरीक) बहन-भाइ वंचित ठहरेंगे।

अगर मृतक की सिर्फ़ एक हक़ीक़ी बहन है तो वह बेटी के स्थान पर होगी। हक़ीक़ी बहन भी न हो तो सौतेली बहन उसके स्थान पर होगी।

मृतक की बेटी, पोती, परपोती की मौजूदगी में हक़ीक़ी बहन असबा हो जाती है। हक़ीक़ी बहन न हो तो सौतेली बहन असबा क़रार पाएगी। मृतक के हक़ीक़ी भाई की मौजूदगी में सौतेले भाई-बहन का हिस्सा नहीं होता।

अगर मृतक की एक हक़ीक़ी बहन है तो उसकी मौजूदगी में सौतेली बहन छठा हिस्सा पाएगी। अगर हक़ीक़ी बहन एक से अधिक हैं तो सौतेली बहन का हिस्सा समाप्त हो जाएगा। अगर सौतेली बहन के साथ सौतेला भाई भी है तो सौतेली बहन का हिस्सा समाप्त न होगा। सौतेली बहन सौतेले भाई के साथ असबा हो जाएगी।

मृतक के बेटा या पोता या पर पोता मौजूद हो तो मृतक के हक़ीक़ी भाई-बहन और सौतेले भाई-बहन वंचित रहेंगे। इसी प्रकार मृतक के बाप-दादा की मौजूदगी में हक़ीक़ी या सौतेले भाई-बहन वंचित रहेंगे।

क़ुरआन में छह निश्चित हिस्सों का वर्णन

आधा हिस्सा : इसके हक़दार पाँच होते हैं :

(1) पति, शर्त यह है कि मरनेवाली की औलाद या औलाद की औलाद न हो।

(2) बेटी, शर्त यह है कि वह अकेली हो।

(3) पोती, जबकि वह अकेली हो, उसका कोई भाई न हो।

(4) हक़ीक़ी बहन, जबकि मृतक का भाई, बाप, बेटा और पोता न हो।

(5) बाप शरीक बहन (अर्थात् अल्लाती बहन) जब कि वह अकेली हो। मृतक का भाई, बाप, बेटा और पोता न हो।

चौथाई हिस्सा : इसके हक़दार दो होते हैं :

(1) पति, अगर मरनेवाली की औलाद या औलाद की औलाद न हो।

(2) पत्नी, अगर मरनेवाले पति की औलाद या औलाद की औलाद न हो।

आठवाँ हिस्सा : केवल एक व्यक्ति वारिस होता है :

(1) पत्नी, जबकि पति की औलाद या औलाद की औलाद हो।

दो-तिहाई : इसके चार वारिस होते हैं :

(1) दो या अधिक बेटियाँ जबकि उनके साथ मृतक का बेटा न हो।

(2) दो या अधिक पोतियाँ जबकि मृतक की सुलबी (हक़ीक़ी) औलाद (बेटे, बेटियाँ, या पोता) न हो।

(3) दो या अधिक हक़ीक़ी बहनें जबकि मृतक का बाप, सुलबी औलाद और हक़ीक़ी भाई मौजूद न हो।

(4) दो या अधिक बाप शरीक बहनें, जबकि उनके साथ मृतक का बाप, सुलबी औलाद और हक़ीक़ी या बाप शरीक (अल्लाती) भाई मौजूद न हो।

तिहाई हिस्सा : तीन व्यक्ति इसके वारिस होते है :

(1) माँ, जबकि मृतक की औलाद या औलाद की औलाद न हो, और न उसके दो या अधिक भाई-बहनें हों।

(2) दो या अधिक माँ शरीक भाई (अख़याफ़ी भाई), जबकि मृतक का बाप, दादा और औलाद या औलाद की औलाद न हो।

(3) दादा, जबकि मृतक के भाई मौजूद हों और एक-तिहाई उसके लिए पर्याप्त हिस्सा हो। फिर भी यह उस स्थिति में है जबकि भाइयों की संख्या दो भाइयों या चार बहनों से अधिक हो।

छठा हिस्सा : सात व्यक्ति इसके हक़दार होते हैं :

(1) माँ, जबकि मृतक की औलाद या औलाद की औलाद या दो या दो से अधिक हक़ीक़ी, अल्लाती या अख़याफ़ी भाई न हों। वे वारिस हों या महजूब (विरासत से वंचित)।

(2) नानी, अगर मृतक की माँ न हो तो वह अकेली वारिस होगी। और यदि उसके साथ दादी भी हो तो वे दोनों छठे हिस्से को बराबर-बराबर बाँट लेंगी।

(3) बाप पूर्ण रूप से छठे हिस्से का वारिस होता है, मृतक की औलाद हो या न हो।

(4) दादा, यह बाप की अनुपस्थिति में उसके स्थान पर होने की वजह से वारिस होता है।

(5) अख़याफ़ी भाई-बहन, जबकि मृतक का बाप, दादा, औलाद और औलाद की औलाद न हो। और अख़याफ़ी भाई या अख़याफ़ी बहन अकेली हो।

(6) पोती या पोतियाँ, जबकि मृतक की सिर्फ़ एक बेटी हो। साथ ही पोती का कोई भाई न हो और न ही उसके समकक्ष स्थिति में उसके चचा का कोई बेटा हो।

(7) अल्लाती बहन, जबकि उसके साथ एक हक़ीक़ी बहन मौजूद हो। इसके अतिरिक्त उसके साथ कोई अल्लाती भाई, माँ, दादा, और औलाद या औलाद की औलाद न हो।

नोट : विरासत के सिलसिले में यहाँ कुछ ख़ास बातों का वर्णन कर दिया गया है। इस सिलसिले के विस्तृत अध्ययन के लिए 'फ़राइज़' के विषय पर लिखित पुस्तकों या फ़राइज़ के विद्वानों से सम्पर्क करना चाहिए। अब हम विरासत से सम्बन्धित कुछ हदीसें प्रस्तुत करते हैं।

विरासत

(1) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "मीरास के हिस्से (जो क़ुरआन में निर्धारित किए गए हैं) हिस्सेदारों को दो फिर जो कुछ बचे वह निकटतम पुरुष के लिए है (अर्थात् जो मैयत का सबसे निकटतम सम्बन्धी हो उसका हक़ है)।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मतलब यह है कि मैयत के तरके में से सबसे पहले उन लोगों को दिया जाएगा जिनके हिस्से क़ुरआन ने निर्धारित कर दिए हैं, जिन्हें ज़विल-फ़ुरूज़ कहा जाता है। उन्हें देने के बाद जो कुछ बचेगा वह असबात का होगा। और असबात में प्राथमिकता उसे प्राप्त होती है जो मृतक का सबसे निकट का नातेदार हो। क़रीब के सम्बन्धी की मौजूदगी में दूर का असबा तरके का वारिस न होगा।

(2) हज़रत अली (रज़ि॰) ने (एक दिन) लोगों से कहा कि तुम इस आयत को पढ़ते हो— "मिम् बादि वसीयतिन् तूसूना बिहा औदैन" अर्थात् उसके बाद कि जो वसीयत वे कर जाएँ वह पूरी कर दी जाए या जो क़र्ज़ हो वह चुका दिया जाए, जबकि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने वसीयत पूरी करने से पहले क़र्ज़ चुकाने का आदेश दिया है। और यह भी कहा है कि "हक़ीक़ी भाई वारिस होते हैं, सौतेले भाई नहीं। और यह कि आदमी अपने हक़ीक़ी भाई का वारिस होता है, सौतेले भाई का नहीं।" इसे तिरमिज़ी और इब्ने-माजा ने रिवायत किया है। दारमी की रिवायत में है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा कि "वे भाई जो माँ में भी शरीक हों (अर्थात् माँ-बाप दोनों में शरीक हों, हक़ीक़ी भाई) एक दूसरे के वारिस होते हैं, न कि वे भाई जो केवल बाप में शरीक हों (अर्थात् सौतेले भाई)।" आगे हदीस के शब्द वही हैं जो ऊपर वर्णित हैं। (हदीस : तिरमिज़ी, इब्ने-माजा, दारमी)

व्याख्या : इस हदीस में जो आयत उद्धृत की गई है उसका मतलब यह है कि मीरास के बँटवारे से पहले मैयत की अगर कोई वसीयत है तो उसे पूरी करें और अगर उसके ज़िम्मे कुछ कर्ज़ हो तो उसको चुका दें। इसके बाद वारिसों में मीरास बाँटी जाए। हज़रत अली (रज़ि॰) कहते हैं कि यह न समझ लिया जाए कि क़र्ज़ के चुकाने से पहले वसीयत पूरी की जाए। नबी (सल्ल॰) का व्यवहार यह था कि

पहले क़र्ज़ अदा करने का आदेश देते थे। आयत में वसीयत का वर्णन यदि क़र्ज़ से पहले आया है तो वह इसलिए नहीं कि क़र्ज़ चुकाने से पहले वसीयत पूरी की जाए, बल्कि वसीयत का ज़िक्र पहले इसलिए किया गया है कि लोग सतर्क रहें और वे वसीयत को साधारण चीज़ न समझें।

(3) हज़रत वासिला-बिन-असक़ा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "स्त्री तीन व्यक्तियों की वारिस बनती है : एक तो अपने आज़ाद किए हुए ग़ुलाम की, दूसरे अपने लक़ीत की और तीसरी अपने उस बच्चे की जिसके कारण लिआन हुआ हो।" (हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : मतलब यह है कि यदि किसी स्त्री ने एक ग़ुलाम आज़ाद किया और वह आज़ाद किया हुआ ग़ुलाम मरा और उसका कोई नसबी असबा नहीं है तो यह स्त्री अपने आज़ाद किए हुए ग़ुलाम की उसी प्रकार वारिस होगी जिस प्रकार एक पुरुष अपने आज़ाद किए हुए ग़ुलाम का वारिस होता है, अगर उसका कोई वांशिक 'असबा' न हो।

लक़ीत से तात्पर्य वह बच्चा है जो कहीं पड़ा हुआ मिल जाए। किसी स्त्री को अगर कहीं कोई लावारिस बच्चा पड़ा हुआ मिल गया और उसने उसे उठा लिया और उसको पाला-पोसा तो उस लक़ीत के मरने के बाद उसकी मीरास वही स्त्री पाएगी।

कुछ विद्वान इस आदेश को मंसूख़ (निरस्त) ठहराते हैं। अलबत्ता एक क़ाज़ी कहते हैं कि इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि लक़ीत का छोड़ा हुआ माल मूलतः बैतुलमाल (राजकोश) का हक़ होता है। दूसरों के मुक़ाबिले में वह औरत जिसने लक़ीत उठाया और पाला-पोसा इसकी ज़्यादा हक़दार है कि बैतुलमाल की ओर से लक़ीत का छोड़ा हुआ माल उस पर ख़र्च हो।

यदि कोई पति अपनी पत्नी पर व्यभिचार का आरोप लगाता है और कहता है कि उससे जो बच्चा पैदा हुआ है वह मेरा नहीं है और पत्नी इस बात को स्वीकार करने से इनकार करती है कि वह बच्चा दूसरे पुरुष का है तो ऐसी स्थिति में इस्लामी अदालत लिआन के द्वारा उनमें सम्बन्ध-विच्छेद करा देगी। लिआन का तरीक़ा क़ुरआन की सूरा 'नूर (24)' के आरम्भ ही में बयान हुआ है। इसमें पति चार बार अल्लाह की क़सम खाकर गवाही दे कि वह बिल्कुल सच्चा है और पाँचवीं बार यह गवाही दे कि यदि वह झूठा हो तो उसपर अल्लाह की लानत हो। पत्नी भी चार बार अल्लाह की क़सम खाकर गवाही देगी कि वह (पति) बिल्कुल झूठा है और पाँचवीं गवाही में यह कहेगी कि उसपर (उस स्त्री पर) अल्लाह का प्रकोप हो यदि वह (अर्थात् उसका पति अपने दावे में) सच्चा हो। लिआन के बाद उनमें सम्बन्ध-विच्छेद करा दिया जाएगा। बच्चा स्त्री के पास रहेगा। पति चूँकि बच्चे का बाप सिद्ध नहीं होता इसलिए वह और बच्चा एक दूसरे के वारिस नहीं हो सकते। विरासत का सम्बन्ध नसब (वंश) से होता है। उस बच्चे का नसब माँ से साबित है, इसलिए वह बच्चा और उसकी माँ एक-दूसरे के वारिस होंगे। यही आदेश व्यभिचार से उत्पन्न संतान के विषय में भी है।

(4) हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) का आज़ाद किया हुआ एक ग़ुलाम मरा, उसने कुछ माल छोड़ा था, लेकिन न तो उसने कोई नातेदार अपने पीछे छोड़ा और न औलाद छोड़ी। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "उसका छोड़ा हुआ माल उसकी बस्ती के आदमी को दे दो।"

(हदीस : अबू-दाऊद, तिरमिज़ी)

व्याख्या : क्योंकि इस आज़ाद किए हुए ग़ुलाम का कोई वांशिक वारिस नहीं था, इसलिए उसके माल का हक़दार मूलतः बैतुलमाल होता है। नबी (सल्ल॰) ने उसके माल को उसकी बस्ती के किसी ज़रूरतमन्द

व्यक्ति को दिला दिया। इसमें तरके के विभाजन की मूलात्मा का भी ध्यान रखा गया है।

(5) हज़रत अनस (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "किसी क़ौम का भाँजा उसी क़ौम में से है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : मतलब यह है कि यदि उस भांजे के ज़विल-फ़ुरूज़ और असबात मौजूद नहीं हैं तो मामूं उसका वारिस हो सकता है क्योंकि वह ज़विल-अरहाम में से है। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) और इमाम अहमद (रह॰) की दृष्टि में ज़विल-अरहाम उस स्थिति में मैयत के वारिस होते हैं जबकि ज़विल-फ़ुरूज़ और असबात मौजूद न हों।

(6) हज़रत अनस (रह॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "किसी क़ौम का मौला उसी क़ौम में से है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मौला से अभिप्रेत वह व्यक्ति है जिसने ग़ुलाम को आज़ाद किया है। मतलब यह हुआ कि आज़ाद किया हुआ ग़ुलाम का वारिस उसका मौला अर्थात् जिसने उसे आज़ाद किया, वह होगा। इसके विपरीत आज़ाद किया हुआ ग़ुलाम उस व्यक्ति का वारिस नहीं होता जिसने उसे आज़ाद किया है।

कुछ लोगों का कहना है कि मौला से तात्पर्य आज़ाद करनेवाला स्वामी नहीं, बल्कि वह ग़ुलाम है जिसे आज़ाद कर दिया गया हो। जिस क़बीले और व्यक्ति ने किसी ग़ुलाम को आज़ाद किया है उसकी जो हैसियत होगी वह हैसियत और दरजा उस स्वतंत्र होने वाले ग़ुलाम को दिया जाएगा।

(7) हज़रत बुरैदा (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने दादी और नानी छठा हिस्सा निर्धारित किया है जबकि माँ उसे महजूब न कर दे। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मैयत की माँ अगर जीवित नहीं है तो दादी और नानी को तरके से छठा हिस्सा मिलेगा। माँ की मौजूदगी में उनका मैयत के तरके में कोई हिस्सा न होगा।

(8) हज़रत जाबिर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "अगर बच्चे ने कोई आवाज़ निकाली हो (और फिर मर जाए) तो उसके जनाज़े की नमाज़ पढ़ी जाए और उसे वारिस क़रार दिया जाए।" (हदीस : इब्ने-माजा, दारमी)

व्याख्या : आवाज़ निकालना क्योंकि जीवन का लक्षण है, इसलिए उसका ज़िक्र किया गया। बच्चा पैदा होते समय माँ के पेट से अगर आधे से अधिक निकला और उसमें जीवन के लक्षण पाए गए, उदाहरणार्थ साँस, छींक, आवाज़ और हरकत, और फिर वह मर गया तो उसके जनाज़े की नमाज़ भी पढ़ेंगे और उसे वारिस बनाकर उसकी मीरास का बँटवारा होगा।

यहाँ यह धमदिश भी जान लेना चाहिए कि एक व्यक्ति मर जाता है और उसका वारिस अभी गर्भ में है तो उसकी प्रतीक्षा करेंगे। उसकी मीरास रोक रखी जाएगी। यदि वह जीवित पैदा हुआ तो वारिस ठहरेगा और इसके बाद इसकी मीरास उसके वारिसों की ओर स्थानान्तरित होगी और यदि जीवित पैदा नहीं होता तो वह वारिस नहीं होगा। मीरास दूसरे वारिसों में बाँटी जाएगी।

(9) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "दो भिन्न धर्म के अनुयायी एक-दूसरे के वारिस नहीं होते।"

(हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा, तिरमिज़ी)

व्याख्या : ग़ैर-मुस्लिम किसी मुसलमान का और मुसलमान किसी ग़ैर-मुस्लिम का वारिस नहीं हो सकता। इस्लाम में हक़ और मामलों का

आधार भी मूलतः नैतिकता ही है। मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम के बीच धार्मिक भेद के कारण जो दूरी पाई जाती है वह नैतिक दृष्टि से एक को दूसरे का वारिस होने में बाधक होती है। दुनिया में तो मानवता या सुशीलता आदि के अन्तर्गत एक-दूसरे का आदर करते हुए परस्पर एक दूसरे के साथ उपकार और सद्व्यवहार कर सकते हैं, लेकिन मरने के पश्चात वास्तविकता सामने आ जाती है और मुहलत या छूट का अवसर भी बीत चुका होता है। ईमान व इस्लाम के साथ दूसरे सम्बन्ध भी आदरणीय होते हैं, लेकिन अगर धर्म का नाता नहीं पाया जाता तो दूसरे तमाम नाते निरर्थक होकर रह जाते हैं। और यह नैतिक मान और धार्मिक गौरव के विरुद्ध है कि धर्म-भेद के बावुजूद आदमी एक-दूसरे का वारिस बन सके।

(10) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "क़ातिल (मक़तूल के माल का) वारिस नहीं होता।" (हदीस : तिरमिज़ी, इब्ने-माज़ा)

व्याख्या : अपने मूरिस (जिसकी सम्पत्ति में विरासत का हक़ है) की अगर किसी ने आकारण हत्या कर दी तो यह हत्या केवल एक व्यक्ति की हत्या नहीं है बल्कि हत्यारे ने उस रिश्ते की प्रतिष्ठा को ध्यान में नहीं रखा जो उन दोनों के बीच पाई जाती थी। इस स्थिति में उसके अपने निहत मूरिस का वारिस होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

(11) हज़रत अम्र-बिन-शुऐब अपने पिता (हज़रत शुऐब) से और वे दादा से रिवायत करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जो व्यक्ति किसी आज़ाद स्त्री या लौंडी से व्यभिचार करे तो (उसके परिणाम स्वरूप) जो बच्चा पैदा होगा वह हरामी होगा। न वह (बच्चा) किसी का वारिस होगा और न उसकी मीरास किसी को मिलेगी।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

व्याख्या : वारिस का मौलिक सम्बन्ध नसब (वंश) से है। व्यभिचारी और हरामी सन्तान के बीच सम्बन्ध स्थापित नहीं होता चाहे वह उसी व्यभिचारी के वीर्य से उत्पन्न हुआ हो। इसलिए व्यभिचार करनेवाला भी व्यभिचार से उत्पन्न हरामी सन्तान का वारिस नहीं हो सकता। अलबत्ता हरामी बच्चे की माँ उसकी वारिस होगी और वह अपनी माँ की मीरास पाएगा।

वसीयत

(1) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "किसी मुसलमान के पास कोई चीज़ हो जिसके विषय में वह वसीयत करनी चाहता है तो दो रातें भी न व्यतीत होने पाएँ कि लिखित वसीयत उसके पास मौजूद हो।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : वसीयत का अर्थ यह है कि कोई व्यक्ति अपने जीवन काल में अपने वारिसों से कह जाए कि मेरे बाद तुम्हें यह काम करना है, उदाहरणार्थ इतना धन सदक़ा करना है या मेरे ज़िम्मे कुछ ज़रूरी या अनिवार्य चीज़ें अदा करनी रह गई हैं उनका कफ़्फ़ारा अदा करना है। ऐसे अवसर पर अगर वह कुछ नसीहतें करता है तो उनको भी वसीयत के अर्थ में लिया जाएगा।

वसीयत के लिए आवश्यक है कि वसीयत करनेवाला आक़िल (मानसिक रूप से स्वस्थ) हो और जो वसीयत वह कर रहा है वैध और जाइज़ हो, अवैध और नाजाइज़ न हो। अवैध होने की स्थिति में वह लागू नहीं होगी। हज़रत उमर (रज़ि॰) का कथन है कि वसीयत करनेवाला अपनी वसीयत को वापस ले सकता है या उसमें परिवर्तन कर सकता है। जिस व्यक्ति के वारिस मौजूद हों वह अपने तरके से सदक़े आदि के लिए तिहाई माल से अधिक की वसीयत नहीं कर सकता।

(2) हज़रत सअद (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने मेरी बीमारपुर्सी की। इस अवसर पर मैंने कहा कि मैं अपने सारे माल के लिए वसीयत कर जाऊँ? आप (सल्ल॰) ने कहा, "नहीं।" मैंने कहा : तो फिर तिहाई के लिए? आप (सल्ल॰) ने कहा, "हाँ, और तिहाई भी बहुत है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : एक रिवायत के शब्द ये हैं : "जो मुसलमान वसीयत करनी चाहता है, वह दो रातें भी न गुज़ारे सिवाय यह कि उसके पास वसीयत लिखी हुई हो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)। मालूम हुआ कि जिसके ज़िम्मे वसीयत के योग्य हक़ और माल हैं उसके लिए आवश्यक है कि उन हक़ों और मालों के सम्बन्ध में लिखित वसीयत उसके पास मौजूद रहे। ऐसा न हो कि मौत अचानक आ जाए और वह वसीयत न लिख सके।

कुछ लोगों के विचार में वसीयत मुस्तहब (उचित) है वाजिब (अनिवार्य) नहीं है और कुछ के विचार में वाजिब (अनिवार्य) है। लेकिन अगर किसी व्यक्ति पर क़र्ज़ हो या कोई हक़ या अमानत हो तो सर्व सम्मति से वसीयत वाजिब है। अच्छा यह होगा कि वसीयत लिखकर उसपर गवाह बनाकर गवाहों के हस्ताक्षर भी ले लिए जाएँ।

इसी प्रकार की एक रिवायत में नबी (सल्ल॰) के ये शब्द भी उद्धृत किए गए हैं, "अगर तुम अपने वारिसों को अपने पीछे मालदार छोड़ जाओ तो यह इससे अच्छा है कि तुम उनको मुहताज छोड़ जाओ और वे लोगों के सामने हाथ फैलाते फिरें।"

हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) का कथन है कि काश लोग तिहाई से घटाकर चौथाई की वसीयत करें! क्योंकि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा है कि तिहाई बहुत है। सभी उलमा (विद्वान) तिहाई से कम की वसीयत करने को अच्छा समझते हैं। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) और हज़रत अली (रज़ि॰) ने पाँचवें हिस्से की वसीयत की थी और इब्ने-उमर

(रज़ि॰) और इसहाक़ ने चौथाई की। कुछ ने छठे भाग की और कुछ ने दसवें भाग की वसीयत की है। हज़रत अली (रज़ि॰), हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) और हज़रत आइशा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि जिस किसी के वारिसों की संख्या अधिक हो उसके लिए सिरे से वसीयत न करना ही मुस्तहब (उचित) है।

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "कोई पुरुष और स्त्री साठ साल अल्लाह के आज्ञापालन में व्यतीत कर देते हैं, फिर उनके मरने का वक़्त आता है, और वे वसीयत के द्वारा वारिसों को नुक़सान पहुँचा जाते हैं तो उन दोनों के लिए नरक अनिवार्य हो जाता है।"

(हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : नबी (सल्ल॰) एक पुरुष और स्त्री का उदाहरण देते हैं कि वे दोनों लम्बी अवधि तक ख़ुदा के आज्ञापालन और बन्दगी में लगे रहते हैं, लेकिन दुनिया से जाते-जाते अपनी वसीयतों में अन्याय से काम लेकर अपने वारिसों को हानि पहुँचा देते हैं। उनकी यह लम्बी अवधि तक अल्लाह की इबादत व आज्ञापालन उनके कुछ काम नहीं आने का, वे जहन्नम (नरक) के पात्र हो जाते हैं। अल्लाह के हक़ के साथ जब तक आदमी बन्दों के हक़ों को भी अदा करने की चिन्ता नहीं करता वह उस नैतिकता और चरित्र का व्यक्ति नहीं हो सकता जिसको ख़ुदा हम में देखना चाहता है। एक हदीस में तो स्पष्ट शब्दों में कहा गया है— "उस व्यक्ति में ईमान नहीं जिसमें अमानदारी नहीं पाई जाती और उस व्यक्ति का कोई दीन नहीं जो वचनबद्धता का पाबन्द नहीं।" (बैहक़ी : शोबुल ईमान)। मालूम हुआ कि दीन और ईमान का सम्बन्ध आदमी के पूरे जीवन से है। अगर वह जीवन के प्रत्येक मामले में सत्य और न्याय को ध्यान में नहीं रखता तो अभी उसने जाना ही नहीं कि दीन क्या है?

ऐसा रस्मी दीन जिसका उच्च चरित्र और नैतिकता से कोई सम्बन्ध न हो, अल्लाह के यहाँ उसका कोई मूल्य नहीं हो सकता।

इस हदीस में वसीयत के द्वारा वारिसों को नुक़सान पहुँचाने पर जहन्नम की अनिवार्यता की जो सूचना दी गई हैं उसके समर्थन में उल्लेखकर्ता हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) ने क़ुरआन की सूरा अन-निसा की उन आयतों का पाठ किया जिनमें कहा गया है कि वसीयत के द्वारा वारिसों को नुक़सान न पहुँचाना। और कहा गया है कि यह अल्लाह की निर्धारित की हुई सीमाएँ हैं। जो कोई अल्लाह और उसके रसूल की आज्ञा का पालन करेगा उसे अल्लाह ऐसे बाग़ों में दाख़िल करेगा जिनके नीचे नहरें बह रही होंगी, उनमें वह सदैव रहेगा, और यही बड़ी सफलता है (4/13)। उसके आगे की आयत में है कि जो अल्लाह और उसके रसूल की अवज्ञा करेगा और उसकी सीमाओं का उल्लंघन करेगा, उसको अल्लाह आग में डालेगा, जिसमें वह सदैव रहेगा, और उसके लिए अपमानजनक यातना है। (4/14)

अध्याय - 2

राजनीति और शासन

राजनीति और शासन

राजनीति और शासन मानव-जीवन का एक महत्वपूर्ण विभाग है। दुनिया में शान्ति की स्थापना की दिशा में शासन बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। लेकिन शासन पर यदि उन लोगों का अधिकार हो जो स्वेच्छाचारी और दुनिया के लोभी हैं तो उस शासन के द्वारा धरती में ऐसा फ़साद और बिगाड़ उत्पन्न हो सकता है जिसका सामान्य स्थिति में अनुमान नहीं किया जा सकता। इस्लाम ने जिस प्रकार जीवन के विविध विभागों में हमारा मार्गदर्शन किया है उसी प्रकार राजनीतिक मामलों में भी उसने हमें राह दिखाई है और वह अपने अनुयायियों को इसका पाबन्द ठहराता है कि वे जीवन के अन्य मामलों की तरह राजनीतिक मामलों में भी इस्लामी शिक्षाओं का पालन करें। इस्लाम, धर्म और राजनीति में कोई अन्तर नहीं करता।

इस्लामी शिक्षाओं की दृष्टि से जगत् के सम्पूर्ण राज्य का स्रष्टा, पालक और उसका वास्तविक शासक अल्लाह ही है। उसकी सत्ता और शासन में कोई उसका साझेदार नहीं है। वही अकेला सम्पूर्ण जगत् का शासक है। सारे ही इनसान अल्लाह के बन्दे (दास) हैं और उनकी हैसियत पालित और अधीनस्थ ग़ुलाम की है। क़ुरआन में है—

> "क्या तुम्हें नहीं मालूम कि आसमानों और ज़मीन की बादशाही अल्लाह ही की है।" (क़ुरआन, 2:107)

एक दूसरी जगह कहा गया है—

> "और न बादशाही में उसका कोई शरीक (साझी) है।"
> (क़ुरआन 25:2)

इसलिए अल्लाह ही को यह हक़ पहुँचता है कि हम उसके आदेशों का पालन बिना किसी आक्षेप के करें। आदेश देने और निर्णय करने का हक़ उसी को और सिर्फ़ उसी को प्राप्त है। इनसान की ज़िम्मेदारी यह है कि वह जी-जान से अपने रब और प्रभु का आज्ञापालन करे। क़ुरआन में है : "जान लो, सृष्टि और आदेश उसी के लिए है" (क़ुरआन, 7:54)।

अल्लाह के आदेशों से इनसान कैसे परिचित हो? अल्लाह के आदेश उसके रसूलों के द्वारा मानवों तक पहुँचे हैं। रसूल न सिर्फ़ यह कि अल्लाह की इच्छाओं और उसके आदेशों से लोगों को अवगत कराता है बल्कि वह अपने वचन और कर्म से अल्लाह के दिए हुए आदेशों और मार्गदर्शनों की व्याख्या भी करता है। रसूल वास्तव में धरती पर अल्लाह का प्रतिनिधि होता है। इसलिए उसके मार्गदर्शन में जीवन व्यतीत करने में ही हमारा कल्याण और मुक्ति है। अल्लाह के रसूल का विरोध वास्तव में अल्लाह के मुक़ाबिले में विद्रोह और उद्दण्डता के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। अल्लाह की उतारी हुई किताब और रसूल की सुन्नत (तरीक़ा) के आधार पर इस्लामी राज्य का गठन होता है। इस्लामी राजनीतिक दृष्टिकोण से अल्लाह की सम्प्रभुता के अन्तर्गत इस्लामी राज्य की स्थापना हो सकती है। अल्लाह के राज्य में उसी के दिए हुए आदेशों के अनुसार और उसकी निर्धारित की हुई मर्यादाओं का आदर करते हुए उसका उद्देश्य पूरा करना ही इस्लामी राज्य का वास्तविक दायित्व होता है। इस्लामी राज्य में सम्प्रभुता अल्लाह की होती है। उसमें इनसान की ख़िलाफ़त (शासन)। अल्लाह की सम्प्रभुता के अन्तर्गत ही होती है। वास्तविकता यह है कि इस्लामी समाज के हर व्यक्ति को ख़िलाफ़त के हक़ व अधिकार प्राप्त होते हैं। राज्य की व्यवस्था चलाने के लिए लोग अपने अधिकारों को अपने चुने हुए एक अध्यक्ष या अमीर को सौंप देते हैं, वह उनकी ओर से ख़िलाफ़त की ज़िम्मेदारियों को पूरा करने की कोशिश करता है।

सामान्य जनतांत्रिक देशों में संप्रभुता जनता की होती है और राज्य का कर्त्तव्य यह होता है कि वह जनता की इच्छा और आकांक्षा को पूरा करे। इसके विपरीत इस्लामी राज्य उस क़ानून का पाबन्द होता है जो क़ानून अल्लाह का दिया हुआ होता है।

इस्लामी राज्य में ख़िलाफ़त का अधिकारी कोई एक व्यक्ति, वर्ग या परिवार नहीं होता, बल्कि वह गरोह व समुदाय ख़िलाफ़त का अधिकारी होता है जिसने अल्लाह की सम्प्रभुता को स्वीकार करते हुए राज्य की स्थापना को व्यावहारिक रूप दिया हो। ईमानवालों के गरोह का प्रत्येक व्यक्ति ख़िलाफ़त में बराबर का भागीदार होता है। किसी व्यक्ति या वर्ग को यह अधिकार प्राप्त नहीं होता कि वह सामान्य मोमिनों से ख़िलाफ़त के अधिकार अपने हक़ में छीन ले। क़ुरआन में है—

> "अल्लाह ने उन लोगों से, जो तुममें ईमान लाए और उन्होंने सुकर्म किए, वादा किया है कि वह उन्हें धरती में अवश्य सत्ता प्रदान करेगा जैसे उसने उनको ख़िलाफ़त प्रदान की थी जो उनसे पहले थे, और उनके लिए अवश्य ही उनके उस दीन को स्थायित्व प्रदान करेगा जिसे उसने उनके लिए पसन्द किया है।" (क़ुरआन, 24:55)

इससे मालूम हुआ कि ईमानवालों का हर व्यक्ति ख़िलाफ़त में बराबर का हिस्सेदार है। एक दूसरे स्थान पर कहा गया है—

> "और याद करो जब मूसा ने अपनी क़ौम से कहा था : ऐ मेरे लोगो, अल्लाह की उस अनुकम्पा को याद करो जो तुम पर रही है, जबकि उसने तुममें नबी निश्चित किए और तुम्हें बादशाह बनाया।" (क़ुरआन, 5:20)

यह आयत भी बताती है कि सत्ता में सभी ईमानवालों की भागीदारी होती है, अलबत्ता नुबूवत में इस तरह हिस्सेदारी नहीं होती। अल्लाह जिसको चाहता है नुबूवत प्रदान करता है। नबी या रसूल का अनुसरण एवं आज्ञापालन करना ईमानवालों का अनिवार्य कर्तव्य होता है। नुबूवत और रिसालत के द्वारा प्राप्त मार्गदर्शन और आदेशों से लाभान्वित होने का हर व्यक्ति को अधिकार प्राप्त है।

इस्लामी राज्य का उद्देश्य इसके सिवा और कुछ नहीं होता कि भलाई फैले और धरती से ज़ुल्म व अन्याय का उन्मूलन हो। अतएव क़ुरआन में आया है–

> "निश्चय ही हमने रसूलों को स्पष्ट प्रमाणों के साथ भेजा, और उनके साथ किताब और तुला उतारी ताकि लोग इनसाफ़ पर क़ायम हों, और लोहा भी उतारा जिसमें बड़ी दहशत है और लोगों के लिए कितने ही लाभ हैं।"
>
> (क़ुरआन, 57:25)

एक अन्य स्थान पर कहा गया–

> "ये वे लोग हैं कि अगर धरती में हम उन्हें सत्ता प्रदान करें तो वे नमाज़ का आयोजन करेंगे और ज़कात देंगे, और भलाई का आदेश देंगे और बुराई से रोकेंगे, और सारे मामलों का अंतिम परिणाम अल्लाह ही के हाथ में है।"
>
> (क़ुरआन, 22:41)

इस्लाम ने भलाई और बुराई दोनों के स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किए हैं। अल्लाह की पसन्द, नापसन्द कोई पहेली नहीं है। इस्लामी राज्य युग और उस वातावरण को जो उसे प्राप्त हो, उसको अपने समक्ष रखते हुए सुधारात्मक कार्यक्रम निश्चित कर सकता है, और उसे ऐसा करना चाहिए। मानव-जीवन का कोई विभाग हो उसमें नैतिक सिद्धान्तों और

जीवन-मूल्यों को अनिवार्यतः ध्यान में रखना होगा। राज्य इस बात के लिए तैयार नहीं होगा कि देश या राष्ट्र के हित की दृष्टि से सच्चाई, ईमानदारी और न्याय की उपेक्षा करे और देश या राष्ट्र की आवश्यकताओं व हितों के उद्देश्य से झूठ, धोखा और अन्याय को स्वीकार करने पर तैयार हो सके। वह शक्ति को अत्याचार और क़हर ढाने का नहीं, बल्कि न्याय की स्थापना का साधन समझेगा। सत्ता और शक्ति को हमेशा एक अमानत और धरोहर समझेगा जिसका एक दिन उसे अल्लाह के पास हिसाब देना होगा।

व्यक्ति ही नहीं राज्य भी अगर किसी से कोई समझौता करता है तो उसे निभाया जाएगा। वह अपने अधिकारों को ही नहीं अपने कर्त्तव्यों को भी याद रखेगा। मानवाधिकार क्या हैं और नागरिता के अधिकार क्या होते हैं? ये सब उसपर स्पष्ट कर दिए गए हैं।

मानवता का आदर करना अनिवार्य है। मानव के प्राण और उसके धन की रक्षा अनिवार्य है। अकारण किसी का ख़ून नहीं बहाया जा सकता। स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों एवं बीमारों या आहत लोगों पर किसी भी दशा में हाथ नहीं उठाया जा सकता। स्त्री के सतीत्व की रक्षा हर हाल में की जाएगी। उसे अपमानित नहीं किया जा सकता। भूखे को रोटी और नंगे को कपड़ा चाहिए। बीमार या घायल व्यक्ति इलाज और तीमारदारी का पात्र होता है। राज्य इस सम्बन्ध में उदासीन नहीं रह सकता।

राज्य की सीमा के अन्तर्गत रहने-बसनेवालों का कर्त्तव्य होगा कि वे—

1. राज्य के आदेशों का पालन करें।
2. क़ानून और नियमों का पालन करें ताकि व्यवस्था बनी रह सके।
3. भलाई के कामों में सरकार के साथ सहयोग करें।
4. प्रतिरक्षा के सम्बन्ध में जान-माल से सहयोग करें।

जो ग़ैर-मुस्लिम इस्लामी राज्य की सीमा में रह रहे होंगे, जिनकी सुरक्षा की ज़िम्मेदारी इस्लामी राज्य ने ली हो, परिभाषा में उन्हें 'ज़िम्मी' कहा जाता है। उन ज़िम्मियों की जान, माल और आबरू की रक्षा उसी प्रकार की जाएगी जिस प्रकार सामान्य मुसलमानों की जान-माल और प्रतिष्ठा की रक्षा की जाती है।

फ़ौजदारी और दीवानी के क़ानूनों में मुस्लिम और ज़िम्मी के बीच कोई भेदभाव न होगा।

ज़िम्मियों के पर्सनल लॉ में राज्य किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा। वे इस मामले में पूर्णतः स्वतन्त्र होंगे।

वे अपने धार्मिक दृष्टिकोण, आस्थाओं और धार्मिक रीति-रिवाजों तथा पूजा और आराधना में स्वतन्त्र होंगे। ज़िम्मी को अपने विचार प्रकट करने का पूर्ण अवसर प्राप्त होगा।

राज्य का कार्य चलाने के लिए एक अमीर (अध्यक्ष) का निर्वाचन होगा। वह व्यक्ति अमीर के पद के लिए सबसे अधिक योग्य होगा जो ईश-परायणता, इस्लाम की मूलात्मा से परिचित होने तथा विचार और चिन्तन में सबसे बढ़कर हो और इन पहलुओं से अधिक से अधिक लोग उसपर भरोसा करते हों।

अमीर के सहयोग के लिए एक मजलिसे-शूरा (मंत्रणा समिति) होगी। शूरा के सदस्य भी लोगों द्वारा निर्वाचित होंगे। अमीर को शासन का अधिकार उसी समय तक प्राप्त रहेगा जब तक लोगों का उसपर भरोसा होगा। आम नागरिकों को भी इसका पूरा अधिकार प्राप्त होगा कि अगर वे आवश्यक समझें तो शासन या अमीर की आलोचनाएँ कर सकें।

ईश-प्रदत्त क़ानूनों में फेर-बदल नहीं किया जा सकता। अलबत्ता उनकी रौशनी में नई परिस्थितियों और समय की आवश्यकताओं को

ध्यान में रखते हुए नए क़ानून बनाए जा सकते हैं। इन मामलों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है जिनके सम्बन्ध में शरीअत ने स्पष्ट आदेश न देकर उनको हमारी बुद्धि और विवेक तथा मीमांसिक क्षमता के हवाले कर दिया है। इस प्रकार के मामलों एवं समस्याओं में मजलिसे-शूरा क़ानून बना सकती है। लेकिन आवश्यक है कि वे क़ानून इस्लाम की मूल आत्मा के अनुकूल हों।

इस्लामी राज्य में अदालत (न्यायपालिका) स्वतन्त्र होगी। वह व्यवस्थापिका के अधीन नहीं होगी, बल्कि वह सीधे अल्लाह के समक्ष उत्तरदायी होगी। अदालत के जजों आदि की नियुक्ति सरकार ही करेगी, लेकिन अदालत का निर्णय निष्पक्ष और बेलाग होगा। सरकार या सर्वोच्च पदाधिकारी के विरुद्ध भी मुक़द्मा क़ायम किया जा सकता है और अदालत सर्वोच्च पदाधिकारी के विरुद्ध भी फ़ैसला दे सकती है।

सारांश यह कि इस्लामी शासन एक ऐसे स्वतन्त्र राष्ट्र के द्वारा अस्तित्व में आता है जो अपनी इच्छा से अपने आपको अल्लाह के क़ानून के अधीन कर दे और उन आदेशों के अनुकूल शासन-कार्य चलाए जो अल्लाह ने अपनी किताब और अपने रसूल के द्वारा प्रदान किए हैं। यह राज्य वास्तव में एक सैद्धान्तिक राज्य है जो उन ही लोगों के द्वारा चलाया जा सकता है जो उसकी धारणाओं और सिद्धान्तों को सत्य स्वीकार करते हों, लेकिन वे सारे नागरिक अधिकार ग़ैर-मुस्लिम प्रजा को भी देता है जो वह उन लोगों को देता है जो इस्लामी राज्य के आधारभूत सिद्धान्तों और उसके नियमों को स्वीकार करते हैं।

सैद्धान्तिक राज्य होने के कारण राज्य रंग, नस्ल, भाषा और क्षेत्र के आधार पर पक्षपातों से अपने को अलग रखेगा और सिर्फ़ उच्चतम नियमों पर स्थापित होगा। इस्लामी राज्य जैसा कि कहा गया ख़ुदा के दिए हुए कानून का पाबन्द होता है। वह व्यक्तियों को उनके मौलिक अधिकारों से वंचित नहीं करता। इस प्रकार राज्य में व्यक्तिगत व्यक्तित्त्व

के विकास के पूरे अवसर प्राप्त होते हैं। भलाई और कल्याण के कामों में सरकार को भी उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त होता है। शासन व्यवस्था में व्यवधान उत्पन्न करने के बदले वे जान-माल से उसकी रक्षा करते हैं।

इस्लामी शासन : विशिष्ट विशेषताएँ

(1) हज़रत उम्मे-हुसैन (रज़ि॰) बयान करती हैं कि अंतिम हज के जनसमूह में सम्बोधित करके अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने बहुत-सी बातें बयान कीं। उनमें से एक बात यह मैंने सुनी। आप (सल्ल॰) कह रहे थे, "यदि काला नकटा ग़ुलाम तुमपर अधिकारी नियुक्त कर दिया जाए तो उसकी बात सुनो और उसकी आज्ञा का पालन करो जबकि वह अल्लाह की किताब (क़ुरआन) के अनुसार तुमपर शासन कर रहा हो।"

(हदीस : मुस्लिम, तिरमिज़ी)

व्याख्या : इस्लाम में सामूहिकता को आधारभूत महत्त्व प्राप्त है। यह एक स्पष्ट सत्य है कि सामूहिकता के बिना न किसी समाज की कल्पना सम्भव है और न उसके बिना किसी संगठन और राजनीतिक व्यवस्था की कल्पना की जा सकती है। सामूहिकता से दूर भागनेवाले व्यक्ति की नीति पूर्णतः इस्लाम के विरुद्ध है। हम देखते हैं कि विशुद्ध इबादत की रीति और पूजा में भी इस्लाम ने इनसान के सामूहिक पहलू का पूरा ध्यान रखा है। अतएव जमाअत से नमाज़ पढ़ने की हदीसों में बड़ी ताकीद की गई है। हज सारे संसार के मुसलमानों को एक साथ मिलकर करना होता है। इसी प्रकार रमज़ान के रोज़े भी एक साथ रखे जाते हैं। क़ुरआन में है, "रुकूअ़ करनेवालों के साथ रुकूअ़ करो," (2:43)। तिरमिज़ी में इब्ने-उमर (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "अल्लाह का हाथ जमाअत (समूह) पर होता है, जो कोई जमाअत से अलग हुआ वह अलग होकर जहन्नम की आग में गया।" सामूहिकता जब सत्ता के अधिकार से सम्पन्न होती है तो एक

ऐसी सत्ता और राज्य अस्तित्व में आता है जो धरती पर फ़ितना और बिगाड़ किसी क़ीमत पर सहन नहीं कर सकता। इस्लाम में सत्ता और राज्य कोई वर्जित वस्तु कदापि नहीं है। यहाँ दीन और सत्ता दो जुड़वाँ बच्चे स्वीकृत किए गए हैं। हज़रत दाऊद (अलै॰) का उल्लेख क़ुरआन में इन शब्दों के साथ किया गया है : "दाऊद ने जालूत को क़त्ल कर दिया और अल्लाह ने उसे राज्य और हिक्मत (तत्त्वदर्शिता) दी, और जो कुछ वह चाहे उससे उसको अवगत कराया। और (इस प्रकार राज्य की स्थापना करके) अगर अल्लाह इनसानों के एक गरोह को दूसरे गरोह के द्वारा हटाता न रहता तो धरती की व्यवस्था बिगड़ जाती। लेकिन अल्लाह दुनियावालों के लिए उदार अनुग्राही है," (क़ुरआन 2:251)। न्याय और इनसाफ़ की स्थापना क़ुरआन की निगाह में इस्लामी हुकूमत के मौलिक उद्देश्यों में से है। फिर हुकूमत की स्थापना और उसकी व्यवस्था क़ुरआन के आदेशों के अनुसार ही होना चाहिए। इस सम्बन्ध में विस्तार आगे आएगा।

अनुशासन, संगठन और आज्ञापालन के बिना हम किसी शासन की कल्पना भी नहीं कर सकते। शासन के अधिकारी या अमीर के आज्ञापालन में यदि कमी की जाएगी तो स्पष्ट है इससे शासन कमज़ोर ही नहीं होगा, बल्कि ऐसा शासन देर तक टिक ही नहीं सकता। इसलिए इस हदीस में कहा गया है कि तुम यह न देखो कि राज्य का अधिकारी काला है या उच्च कुल का नहीं है, वह कोई भी हो, यदि वह अमीर या राष्ट्राध्यक्ष है तो आवश्यक है कि उसके आज्ञापालन में सुस्ती कदापि न होने पाए।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "(इस्लामी राज्य के अधिकारी की बात) सुनना और उसका आज्ञापालन अनिवार्य है जब तक कि (अल्लाह की) अवज्ञा का आदेश न दिया जाए। अतः जब (अल्लाह की) अवज्ञा

का आदेश दिया जाए तो न सुनना है और न आज्ञापालन करना।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, अबू-दाऊद, तिरमिज़ी)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि किसी व्यक्ति के राष्ट्राध्यक्ष या नेता होने का यह अर्थ कदापि नहीं होता कि उसे यह अधिकार प्राप्त हो गया कि वह जो चाहे आदेश दे। उसे यह अधिकार कभी प्राप्त नहीं होता कि वह लोगों को किसी ऐसे काम के करने का आदेश दे जिसके करने में अल्लाह की अवज्ञा होती हो या वह काम गुनाह का हो। इस्लामी शासन में सत्ताधिकारी का कर्त्तव्य तो यह होता है कि वह लोगों को अल्लाह के आदेशों का पाबन्द बनाने का प्रयास करे। यदि वह अपने कर्त्तव्यों से विमुख नहीं है तो लोगों का कर्त्तव्य है कि वे राज्य के प्रमुख की बात सुनें और उसके आज्ञापालन को अपने लिए अनिवार्य समझें।

(3) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "जिस किसी को अपने अमीर की कोई बात अप्रिय हो तो उसे सब्र और धैर्य से काम लेना चाहिए, क्योंकि जिसने बालिश्त (बित्ता) भर भी सत्ता से विद्रोह किया तो वह अज्ञान की मौत मरा।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : संगठित व्यवस्था के अभाव में क़ोई जाति या राष्ट्र सही अर्थों में जीवित नहीं रह सकता। इसलिए व्यवस्था और राज्य का स्थायित्व अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए शासन के विद्रोह को इस्लामी नीति नहीं कहा जा सकता बल्कि उसे अज्ञान (इस्लाम के प्रतिकूल) ही से अभिहित किया जाएगा। हमारे किसी आचरण से यदि इस्लामी राज्य-व्यवस्था को थोड़ी भी हानि पहुँचती है तो यह जघन्य अपराध होगा। इसी लिए बालिश्त (बित्ता) भर भी सत्ता से विद्रोह को जाहिलियत (इस्लाम के प्रतिकूल) घोषित किया। अमीर और राज्याध्यक्ष की कोई

बात अप्रिय भी हो तो भी सब्र और धैर्य से काम लेना चाहिए और आज्ञापालन और वफ़ादारी में अन्तर नहीं आने देना चाहिए।

(4) हज़रत अबू-ज़र (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति जमाअत से बालिश्त भर भी अलग हुआ उसने इस्लाम का पट्टा उपनी गरदन से निकाल फेंका।"

(हदीस : मुसनद अहमद, अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस्लाम में इज्तिमाइयत (सामूहिकता) को मौलिक महत्त्व प्राप्त है और जमाअत के बिना हम किसी सामूहिकता की कल्पना भी नहीं कर सकते। इसलिए हर मोमिन व्यक्ति का कर्त्तव्य होता है कि वह जमाअत से कदापि विलग न हो। जमाअत को उसका सहयोग प्राप्त हो। फिर इस्लामी दृष्टिकोण से वास्तविक जमाअत वही है जो इस्लामी सिद्धान्तों पर क़ायम हो और धैर्य की स्थापना जिसका मूल उद्देश्य हो। मुसलमान यदि एक ऐसी जमाअत का रूप धारण करके जीवन नहीं व्यतीत करते जिसे इस्लाम की रौशनी में जमाअत कहा जा सके तो यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण होगा कि वे अपनी अस्ल हैसियत को भूल चुके हैं। ऐसी स्थिति में मुसलमानों का कर्त्तव्य होता है कि वे इस्लामी सामूहिकता को अस्तिव में ले आएँ। बिखरे हुए गरोह के बदले एक संगठित जमाअत का रूप धारण करें। उनका एक निर्वाचित नेता हो जिसके नेतृत्व में लोग जीवन व्यतीत कर सकें और अपने लिए कार्य-क्षेत्र निर्धारित कर सकें।

इसके अतिरिक्त यह बात भी सामने रहे कि जमाअत से जुड़े रहना आदमी के दीन व ईमान का रक्षक होता है। शैतान के लिए यह अत्यन्त सरल बात होती है कि वह ऐसे व्यक्ति को जो किसी व्यवस्था या संगठन के अन्तर्गत जीवन नहीं बिताता, उचक ले और सत्य-मार्ग से वंचित रहने पर उसे सन्तुष्ट कर दे और असत्य के आक्रमणों और शैतानी षड्यंत्रों से वह अपनी रक्षा न कर सके।

सकारात्मक एवं सैद्धान्तिक राज्य

(1) हज़रत अता-बिन-अबी-रबाह (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैं उबैद-बिन-उमैर लैसी (रज़ि॰) के साथ हज़रत आइशा (रज़ि॰) से मिलने के लिए गया। हमने उनसे हिजरत के विषय में पूछा। उन्होंने कहा कि "अब हिजरत नहीं है। पहले मुसलमान इस दशा में थे कि उनमें से कोई अपने दीन को लेकर अल्लाह और रसूल की ओर इस डर से हिजरत कर जाता था कि उसे अपने दीन के कारण कठोर विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। अब तो अल्लाह ने इस्लाम को प्रभुत्त्व प्रदान कर दिया। आज तो वह जहाँ चाहे आज़ादी के साथ अपने रब की इबादत कर सकता है (इसलिए अब हिजरत की ज़रूरत बाक़ी नहीं रही), अलबत्ता जिहाद और नीयत अब भी बाक़ी है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इस्लामी राज्य एक सैद्धान्तिक राज्य होता है। उसका सम्बन्ध उन व्यापक सिद्धान्तों से होता है जिनकी शिक्षा इस्लाम ने दी है। वह सीमित उद्देश्यों को लेकर और वंश, रंग और भाषा आदि के आधार पर स्थापित नहीं होता। उसके सिद्धान्त और उद्देश्य सार्वभौमिक होते हैं। इस्लामी राज्य के समक्ष पूरी मानव-जाति होती है। फिर उसके सामने मूलतः मानव-जीवन का सकारात्मक पक्ष होता है। वह मात्र किसी चीज़ की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप (चाहे वह बुराई ही क्यों न हो) अस्तित्त्व में नहीं आता। इस्लाम का प्रभुत्व वास्तव में सत्य और न्याय पर आधारित सार्वभौमिक सिद्धान्तों और जीवन-मूल्यों का प्रभुत्त्व होता है जिसके फलस्वरूप आदमी निर्भीक होकर अल्लाह के आज्ञापालन और बन्दगी में जीवन व्यतीत कर सकता है। अल्लाह के आज्ञापालन के मार्ग में कोई कठिनाई सामने नहीं आती और न अल्लाह की बन्दगी को अपराध ठहराकर किसी पर अत्याचार करना वैध किया जा सकता है। इस्लामी राज्य में अन्याय और अत्याचार के अवसर शेष नहीं रहते।

इस्लाम अपने सिद्धान्त, क़ानून और अपनी प्रकृति की दृष्टि से सत्ताधारी होने की अपेक्षा करता है। इस्लाम की विजय सत्य और न्याय की विजय है। इसी लिए हज़रत आइशा ने कहा : इस्लाम के प्रभुत्व के बाद हिजरत की आवश्यकता नहीं रहती। हिजरत तो अपने दीन व ईमान की सुरक्षा के लिए की जाती थी। इस्लामी राज्य में दीन व ईमान के लिए क्या ख़तरा हो सकता है! इस्लामी शासन में अल्लाह की इबादत और उसकी बन्दगी में क्या कठिनाई पेश आ सकती है कि आदमी घर-बार छोड़कर हिजरत के लिए बाध्य हो। मोमिन के लिए जो चीज़ हर हाल में ज़रूरी है वह यह है कि उसके इरादे हमेशा नेक हों। और उसके लिए यह भी ज़रूरी है कि जिहाद की भावना कभी मन्द न होने पाए। मालूम नहीं कब न्याय एवं सच्चाई के लिए जान-माल की क़ुरबानी देने की ज़रूरत पड़ जाए। अल्लाह की चाहत और सत्यप्रियता ही मोमिन की वास्तविक पहचान है। इसमें कभी भी अन्तर नहीं आना चाहिए।

(2) हज़रत ख़ब्बाब-बिन-अरत (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि हमने नबी (सल्ल॰) से शिकायत की। वे उस समय काबा की छाया में चादर सिर के नीचे रखकर लेटे हुए थे। हमने कहा कि क्या आप हमारे लिए (अल्लाह से) सहयता की याचना नहीं करते? क्या आप हमारे लिए दुआ नहीं करते कि इस ज़ुल्म और अत्याचार का अन्त हो जो मक्कावाले ईमानवालों पर कर रहे हैं? आप (सल्ल॰) ने कहा, "तुमसे पहले ऐसे लोग गुज़रे हैं कि उनमें से किसी के लिए ज़मीन में गड्ढा खोदा जाता, फिर उसको उस गड्ढे में खड़ा किया जाता, फिर आरा लाकर उसके सिर पर रखा जाता और उससे चीरकर उसके शरीर के दो टुकड़े कर दिए जाते। फिर भी वह अपने दीन से न फिरता। और उसके शरीर में लोहे के कंघे चुभोए जाते जो मांस को पार करके हड्डियों और पुट्ठों तक पहुँच जाते मगर वह अपने दीन से न फिरता। अल्लाह की क़सम! यह दीन प्रभुत्व सम्पन्न होकर रहेगा, यहाँ तक कि सवार सनुआ (यमन) से

हज़रमौत तक का सफ़र करेगा और उसे अल्लाह के सिवा किसी का डर न होगा या फिर होगा तो किसी को भेड़िए का कि कहीं वह उसकी बकरियों पर हमला न करे। लेकिन तुम लोग जल्दी कर रहे हो।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि ईमान की दौलत इतनी क़ीमती है कि अगर यह हाथ आ जाए तो समझिए कि आदमी ने सब कुछ पा लिया। हर प्रकार की यातना सहन करके यहाँ तक कि अपने प्राण देकर भी यदि कोई अपने ईमान को बचा सकता है तो उसे प्राण देकर अपने ईमान की रक्षा करनी चाहिए। पूर्वकाल में ऐसे ईमानवाले गुज़रे हैं जिन्हें वे सारी मुसीबतें और तकलीफ़ें झेलनी पड़ीं जिनकी कोई कल्पना कर सकता है, लेकिन कोई भी चीज़ उनको सत्य से विमुख न कर सकी।

इस हदीस में दीन के प्रभुत्व-सम्पन्न होने की जो सूचना दी गई थी वह अक्षरशः पूरी होकर रही। इस्लाम के प्रभुत्व से जहाँ बहुत-से लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं वहीं एक बड़ा लाभ यह प्राप्त होता है कि उससे राज्य में ऐसी शान्ति स्थापित होती है जिसकी सामान्य स्थिति में कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। इस हदीस में सूचना दी गई है कि यमन से बहरैन और हजरमौत के विस्तृत भू-भाग में इस्लाम से बैर रखनेवाली शक्तियों का ज़ोर शेष नहीं रहेगा और ऐसी शान्ति स्थापित होगी कि लोग स्वतन्त्रतापूर्वक अल्लाह की बन्दगी कर सकेंगे और दूर-दूर तक कहीं किसी प्रकार का भय और ख़तरा बाक़ी नहीं रहेगा।

इस्लामी शासन के उद्देश्य

(1) अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "न्यायशील शासक अल्लाह के यहाँ प्रकाश के मिम्बरों (मंचों) पर रहमान के दाहिने हाथ की ओर होंगे और उसके दोनों ही हाथ दाहिने हैं। वे हाकिम जो अपने आदेशों

में, अपने लोगों में और अपने अधीनस्थ मामलों में न्याय करते हैं।"
(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : "न्यायशील शासक रहमान के दाहिने हाथ की तरफ़ होंगे" यह इस बात का प्रमाण है कि उनका पद ख़ुदा के यहाँ अत्यन्त उच्च है।

"अल्लाह के दोनों ही हाथ दाहिने हैं" यह इसलिए कहा कि कहीं कोई यह न समझ ले कि दाहिना बाएँ के मुक़ाबले में है और बायाँ दाहिने के मुक़ाबले में कमज़ोर होता है। अल्लाह हर प्रकार की कमी और कमज़ोरियाँ से मुक्त है। हाथ की वास्तविकता क्या है? इसका सच्चा ज्ञान अल्लाह ही को हो सकता है।

न्यायशील शासक शासन से सम्बन्धित जो मामले होते हैं उनको पूरा करने में न्याय को ध्यान में रखते हैं। हक़ के अदा करने में न्याय और इनसाफ़ को हरगिज़ विस्मृत नहीं करते। जो चीज़ भी उनके संरक्षण में होती है उदाहरणार्थ, वक़्फ़ की जायदाद, यतीमों और दीन-दुखियों की देख-रेख आदि इन सबमें वे अपने कर्त्तव्यों को भलीभाँति जानते हैं और अपने दायित्वों को निभाने में वे कोई कमी नहीं करते।

इस हदीस से मालूम हुआ कि न्याय की स्थापना इस्लामी शासन के उद्देश्यों में से एक महत्त्वपूर्ण और मौलिक उद्देश्य है।

(2) हज़रत माक़िल-बिन-यसार (रज़ि॰) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना, "जिस किसी बन्दे को अल्लाह प्रजा की देख-रेख सौंपे और वह भलाई और शुभेच्छा के साथ देख-रेख न करे तो वह जन्नत (स्वर्ग) की महक भी न पाएगा।"
(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : शासक अगर अपनी प्रजा का शुभ-चिन्तक नहीं है तो यह ऐसा अन्याय है कि इस अन्याय को बाक़ी रखनेवाला किसी प्रकार भी इसका पात्र नहीं हो सकता कि उसे जन्नत की सुगन्ध भी मिल सके

या वह जन्नतवालों के साथ शाश्वत स्वर्ग में प्रवेश पा सके और आनन्दमय शाश्वत जीवन उसके हिस्से में आए।

यह हदीस बताती है कि इस्लामी शासन जनता का शुभ-चिन्तक होता है। इसका काम जनता की भलाई है न कि उसको मुसीबत में रखना।

(३) हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "तुमपर ऐसे शासक नियुक्त होंगे जो अच्छे काम भी करेंगे और बुरे काम भी करेंगे। जिसने इनकार किया वह ज़िम्मेदारी से मुक्त हो गया और जिस किसी ने दिल से (उनके बुरे कर्मों को) बुरा जाना वह सुरक्षित रहा। किन्तु जो उनके कामों पर राज़ी रहा और उनकी पैरवी की (वे न ज़िम्मेदारी से मुक्त होंगे और न उनके लिए कोई सुरक्षा है)।" सहाबा (रज़ि॰) ने कहा कि क्या हम उन (शासकों) से युद्ध करें? कहा, "नहीं, जब तक कि वे नमाज़ क़ायम करें। नहीं, जब तक कि वे नमाज़ क़ायम करते हों।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम हुआ कि जिसने बुरे कामों का समर्थन नहीं किया बल्कि उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई, उसकी अल्लाह के यहाँ पकड़ न होगी। और जिस किसी ने बुराई को बुराई नहीं समझा, बुराइयों में हाकिम का अनुसरण किया, वह गुनाह के वबाल से हरगिज़ बच नहीं सकता।

नमाज़ का क़ायम करना भी इस्लामी शासन के उद्देश्यों में से एक मौलिक और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। क़ुरआन ने भी इस्लामी हुकूमत के मूल उद्देश्यों पर प्रकाश डाला है, जैसा कि कहा गया है, "निश्चय ही हमने अपने रसूलों को स्पष्ट प्रमाणों के साथ भेजा और उनके साथ किताब और तुला उतारी ताकि लोग इनसाफ़ पर क़ायम हों और लोहा भी उतारा जिसमें बड़ी दहशत है और लोगों के लिए कितने ही लाभ

हैं।" (क़ुरआन, 57:25)। अर्थात् अल्लाह ने न्यायसंगत व्यवस्था भी और न्याय पर आधारित मार्गदर्शन भी अवतरित किया और लोहा अर्थात् शक्ति और राजनीतिक बल भी प्रदान किया और इसका मूल उद्देश्य यह रहा है कि मानव-जीवन में न्याय की स्थापना हो और अन्याय का उन्मूलन हो।

"ये वे लोग हैं कि अगर धरती में हम उन्हें सत्ता प्रदान करें तो ये नमाज़ का आयोजन करेंगे और ज़कात देंगे और भलाई का आदेश देंगे और बुराई से रोकेंगे।" (क़ुरआन, 22:41)

इस आयत में बताया गया है कि इस्लामी हुकूमत का मूल उद्देश्य यह होता है कि नमाज़ क़ायम करने और ज़कात अदा करने की व्यवस्था की जाए। नेकियाँ और भलाइयाँ विकसित हों और बुराइयों को दबा दिया जाए। नेकियाँ और भलाइयाँ अल्लाह को प्रिय हैं और बुराइयाँ उसे बहुत ही अप्रिय हैं।

इस्लामी राज्य के मौलिक तत्त्व

जगत् और जीवन के प्रति धारणा

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, आप मुझे कुछ शब्दों का आदेश दीजिए जिनको मैं सुबह-शाम पढ़ा करूँ। आप (सल्ल॰) ने कहा, "क़ुलिल्लाहुम-म फ़ातिरस्समावाति वल्-अर्ज़ि आलिमल् ग़ै-बि वश्शहादति रब-ब क़ुल्लि शैइन व-मलीक-हू अश-ह-दु अल्ला इला-ह इल्ला अन्-त अऊज़ु बि-क मिन् शर्रि नफ़-सी व शर्रिश्शैतानि व शिर्किही।"

('कहो, ऐ अल्लाह, आकाशों और धरती के निर्माण करनेवाले, प्रत्यक्ष और परोक्ष के जाननेवाले, हर चीज़ के रब और मालिक, मैं इसकी गवाही देता हूँ कि तेरे सिवा कोई माबूद नहीं, मैं तेरी पनाह माँगता हूँ बचने के लिए अपने मन की बुराई से, शैतान की बुराई से और उसके शिर्क से।")

आपने कहा, "इन शब्दों को सुबह-शाम और जब बिस्तर पर जाओ, पढ़ा करो।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : नबी (सल्ल॰) ने जो दुआ हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) को सिखाई है और जिसे सुबह-शाम और सोते समय पढ़ने को कहा है, उस दुआ से स्पष्ट है कि जगत् और इनसान की ज़िन्दगी के विषय में इस्लाम की धारणा क्या है। इस्लाम की मौलिक शिक्षा यह है कि यह जगत् अल्लाह के बिना कदापि नहीं है, बल्कि इसका एक सृष्टिकर्ता है, उसके ज्ञान एवं इच्छा और उसी की योजना के अन्तर्गत

यह जगत् अस्तित्व में आया है। वही अल्लाह वास्तव में अपने विस्तृत जगत् का अधीश और वैध शासक है। इनसान को भी उसी की बन्दगी और ग़ुलामी में अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। जब सबका स्रष्टा वही है तो आदेश देने का अधिकार भी उसी को प्राप्त है। क़ुरआन में है, "सावधान! उसी की सृष्टि है और आदेश भी।" (7:54)

विश्व का स्रष्टा ही मनुष्य का भी स्रष्टा और रब है। "निश्चय ही तुम्हारा स्वामी और पालनहार वही अल्लाह है जिसने आकाशों और धरती को पैदा किया," (क़ुरआन, 7:54)। यह जगत् न तो बिना ईश्वर का है और न यह अपने आप अस्तित्व में आ गया है। इसका एक स्रष्टा और अधीश है। उसी ने अपनी योजना के अनुसार इसका सृजन किया और इसके एक कोने में इनसान को आबाद किया है। उसी के समक्ष अन्त में हम सबको उपस्थित होना है। यह ऐसा सत्य है जिसका एहसास आदमी को हर समय यहाँ तक कि सोते समय भी होना चाहिए। हमारा स्रष्टा और हमारा प्रभु ही हमें हर प्रकार की बुराई से बचाकर हमें सीधे मार्ग पर चलने का सौभाग्य प्रदान कर सकता है और वही हमें कुफ़्र और शिर्क अर्थात अधर्म और बहुदेववाद से सुरक्षित रख सकता है। इसलिए हमारी आशाएँ अल्लाह ही से होनी चाहिएँ।

अल्लाह की सम्प्रभुता

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "अल्लाह क़ियामत के दिन धरती को अपनी मुट्ठी में ले लेगा और आकाश को अपने दाहिने हाथ में लपेटेगा और कहेगा कि मैं बादशाह हूँ, धरती के बादशाह कहाँ हैं?" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : जैसे कोई व्यक्ति एक गेंद अपने हाथ में ले ले, इसी प्रकार वह धरती को अपने कब्ज़े में ले लेगा और आकाश उसके हाथ में ऐसे लिपटे होंगे जैसे लिपटा हुआ रूमाल किसी ने अपने हाथ में ले रखा हो। उस समय यह वास्तविकता दिन के उजाले की तरह स्पष्ट होगी कि

सारा जगत् अल्लाह ही के प्रभुत्व के अधीन है। इसी लिए वास्तविक शासक उसके सिवा कोई दूसरा नहीं हो सकता। उस दिन वह प्रत्यक्ष रूप से कहेगा कि जिस किसी को सन्देह एवं भ्रम हो वह देख ले कि जगत् के राज्य का अधीश और शासक वास्तव में कौन है। धरती में जो अपनी बादशाही और शहनशाहियत का दम भरते थे आज वे कहाँ हैं? उनका तेज और दबदबा क्या हुआ?

जो तथ्य आख़िरत में प्रकट होगा वह अगर दुनिया की ज़िन्दगी ही में आदमी पर प्रकट हो जाए तो वह हरगिज़ जगत् के प्रभु के मुक़ाबिले में विद्रोह की नीति नहीं अपना सकता। यह हदीस बताती है कि जगत् का सम्राट और शासक अल्लाह ही है। इसलिए जगत् में सम्प्रभुता (Sovereignty) भी अल्लाह के सिवा किसी अन्य की नहीं हो सकती। किसी व्यक्ति या गरोह को सिरे से यह हक़ नहीं पहुँचता कि सम्प्रभुता में उसका कोई हिस्सा या भागीदारी हो। क़ुरआन में भी कहा गया है, "क्या तुम जानते नहीं कि आकाशों और धरती की बादशाही अल्लाह की है?" (2:107)। "सावधान रहो, उसी की सृष्टि है और उसी का हुक्म भी है।" (क़ुरआन, 7:54)

अल्लाह सम्प्रभुता के समस्त गुणों से विभूषित है। सारे अधिकार वास्तव में एक अल्लाह ही में केन्द्रित हैं। वह सब पर प्रभुत्व रखनेवाला, अवगुणों से मुक्त और सबका निरीक्षक है। "उसे अपने बन्दों पर पूरा अधिकार प्राप्त है और वह तत्त्वदर्शी, ख़बर रखनेवाला है।" (क़ुरआन, 6:18)। "जो कुछ वह करता है उसकी उससे पूछ-गच्छ नहीं, लेकिन उनसे (दूसरों से) पूछ-गच्छ होगी," (क़ुरआन, 21:23)। अर्थात् वह किसी के सामने उत्तरदायी नहीं लेकिन दूसरे सभी उत्तरदायी हैं।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) और हज़रत ज़ैद-बिन-ख़ालिद (रज़ि॰) से उल्लिखित है, वे बयान करते हैं कि हम नबी (सल्ल॰) के पास थे

तो आप (सल्ल॰) ने कहा, "मैं तुम्हारे बीच अवश्य ही अल्लाह की किताब के अनुसार फ़ैसला करूँगा।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् सर्वोपरि क़ानून (Supreme Law) अल्लाह ही का है। रसूल तो अल्लाह के क़ानून को मानवों तक पहुँचाने में केवल माध्यम होता है। रसूल वास्तव में अल्लाह की वैधानिक सम्प्रभुता (Legal Sovereignty) का प्रतिनिधि मात्र है। वह किसी भी फ़ैसले में मनमानी नहीं करता। उसका फ़ैसला अल्लाह की किताब और उसके आदेश के अनुसार ही होगा। इसी लिए उसका आज्ञापालन वास्तव में अल्लाह का आज्ञापालन है। क़ुरआन में एक स्थान पर कहा गया कि "जिस किसी ने रसूल का आज्ञापालन किया उसने वास्तव में अल्लाह का आज्ञापालन किया," (क़ुरआन, 4:80)। क़ुरआन में एक और जगह कहा गया है, "अतः तुम्हें तुम्हारे रब की क़सम, ये मोमिन नहीं हो सकते जब तक कि (ऐ नबी) उनके बीच जो झगड़ा उठे उसमें ये तुमसे फ़ैसला न कराएँ। फिर तुम जो फ़ैसला करो उसपर ये अपने दिल में कोई तंगी न पाएँ और पूरी तरह स्वीकार कर लें।" (क़ुरआन, 4:65)

रसूल का आज्ञापालन

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मेरी उम्मत के सभी लोग जन्नत में दाख़िल होंगे सिवाय उसके जिसने इनकार किया।" लोगों ने अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल, और कौन इनकार करेगा? आप (सल्ल॰) ने कहा, "जिसने मेरा आज्ञापालन किया वह जन्नत में प्रवेश करेगा और जिस किसी ने मेरी अवज्ञा की उसने इनकार किया (वह जन्नत में प्रवेश न पाएगा)।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि अल्लाह के रसूल की अवज्ञा एक प्रकार से उसका इनकार है। इस इनकार के बाद वह जन्नत और अल्लाह के इनामों का हक़दार नहीं रह जाता। जन्नत मूलतः उन लोगों

के लिए है जिनका जीवन अल्लाह का आज्ञापालन होता है। अल्लाह का आज्ञापालन और उसकी बन्दगी कैसे की जाए? यह अल्लाह के रसूल के द्वारा ज्ञात होता है, इसलिए रब की बन्दगी के लिए रसूल का आज्ञापालन अपरिहार्य है।

इस्लामी शासन-व्यवस्था में क्योंकि अल्लाह के दिए हुए आदेशों और क़ानूनों को व्यवहार में लाना होता है और ये आदेश और क़ानून रसूल ही के द्वारा हमें मिले हैं, और रसूल ने अपने वचन और व्यवहार से उन आदेशों और क़ानूनों का स्पष्टीकरण भी कर दिया है, इसलिए रसूल के आज्ञापालन से न कोई व्यक्ति आज़ाद हो सकता है और न किसी इस्लामी राज्य के लिए यह वैध हो सकता है कि वह रसूल के आज्ञापालन से अपने को स्वतन्त्र रखे।

(2) हज़रत मालिक-बिन-अनस (रज़ि॰) से एक मुरसल रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, मैं तुम्हारे बीच दो चीज़ें छोड़े जा रहा हूँ, जब तक उन्हें थामे रहोगे कदापि गुमराह न होगे— अल्लाह की किताब (क़ुरआन) और उसके रसूल की सुन्नत।"

(हदीस : मुवत्ता)

व्याख्या : "अर्थात् इस्लामी शिक्षाओं और इस्लामी आदेशों और क़ानूनों और नियमों का मूल आधार किताब और सुन्नत है। इनमें से किसी को भी छोड़ा नहीं जा सकता। वैचारिक और व्यावहारिक हर प्रकार की गुमराही और पथभ्रष्टता से सुरक्षित रहने का बस यही एक मात्र उपाय है कि क़ुरआन और सुन्नत (अर्थात रसूल के तरीक़े) को मज़बूती से थामा जाए और इनकी रौशनी और मार्गदर्शन में सारे मामलों का (चाहे वे व्यक्तिगत हों या सामूहिक या राजनीतिक) फ़ैसला किया जाए। पथभ्रष्टता से सुरक्षित रहने के लिए आवश्यक है कि अल्लाह की किताब का पालन करने के साथ नबी (सल्ल॰) की सुन्नत और आप (सल्ल॰) के तरीक़े का भी अनुपालन किया जाए। आप (सल्ल॰) अल्लाह

की किताब के व्याख्याकार हैं। आपका जीवन और आपका व्यवहार क़ुरआन के स्पष्टीकरण के सिवा और कुछ नहीं है। आपका एक महत्त्वपूर्ण दायित्व यह भी रहा है कि आप (सल्ल॰) लोगों को किताब (क़ानून) और हिक्मत (तत्त्वदर्शिता) की शिक्षा दें। (क़ुरआन, 2:129, 3:164, 62:2)। फिर आप (सल्ल॰) से बेपरवाह होकर कोई व्यक्ति कैसे सीधी राह पा सकता है और उसपर क़ायम रह सकता है?

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिसने मेरा आज्ञापालन किया उसने अल्लाह का आज्ञापालन किया और जिस किसी ने मेरी अवज्ञा की उसने अल्लाह की अवज्ञा की और जिसने मेरे (नियुक्त किए हुए) हाकिम और अधिकारी का आज्ञापालन किया उसने वास्तव में मेरा आज्ञापालन किया और जिस किसी ने मेरे (नियुक्त किए हुए) हाकिम की अवज्ञा की उसने वास्तव में मेरी अवज्ञा की।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अल्लाह का आज्ञापालन रसूल के आज्ञापालन के बिना सम्भव नहीं। किसी भी मामले में अल्लाह को क्या पसन्द है और किस चीज़ को वह नापसन्द करता है, यह हमें सिर्फ़ ख़ुदा के रसूल के द्वारा ही मालूम हो सकता है। इस पहलू से रसूल का आज्ञापालन वास्तव में अल्लाह का आज्ञापालन है। इससे मालूम हुआ कि जो लोग दुनिया में अल्लाह की मुहब्बत का दावा करते हैं और अल्लाह के पैग़म्बर को नहीं पहचानते और न पैग़म्बर की लाई हुई शरीअत का आदर करते हैं, उनका दावा सिर्फ़ दावा है। अल्लाह के यहाँ उसका कोई मूल्य नहीं हो सकता।

इस हदीस से यह भी मालूम हुआ कि न्यायप्रिय अधिकारी और हाकिम का आज्ञापालन भी ज़रूरी है, क्योंकि इसके बिना इस्लामी व्यवस्था की स्थापना सम्भव नहीं। हाकिम भी इसका पाबन्द है कि वह

आदेशों को लागू करने में अल्लाह के रसूल द्वारा लाई हुई शरीअत का पूरा ध्यान रखे। वह ऐसे आदेश न दे जो इस्लाम के विरुद्ध और इस्लामी शरीअत के प्रतिकूल हों।

(4) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "तुम मुझे छोड़ दो जब तक कि मैं तुम्हें छोड़े रखूँ (अर्थात् अनावश्यक प्रश्न मुझसे न किया करो)। तुमसे पहले की क़ौमें अपने प्रश्नों और अपने नबियों से मतभेद करने के कारण तबाह हुई हैं। जब मैं तुम्हें किसी चीज़ से रोकूँ तो उससे बचो और जब मैं तुम्हें किसी बात का आदेश दूँ तो उसको करो जितना तुमसे हो सके।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इस हदीस से कई महत्त्वपूर्ण बातें मालूम होती हैं। इस हदीस से स्पष्ट है कि दीन में तंगी और संकीर्णता नहीं, बड़ी गुंजाइश पाई जाती है। इस गुंजाइश के मूल्य को न समझना नाशुक्री है। अल्लाह का रसूल जिन बातों में हमें छूट देता है, हमें छोड़े रखता है, हमारी कोई पकड़ नहीं करता, उसकी क़द्र करनी चाहिए। गुंजाइश के मुक़ाबिले तंगी को प्राथमिकता देना नाशुक्री के सिवा और क्या होगा। रसूल से सवाल कर-करके आदेशों में गुंजाइश के दायरे को तंग करना शरीअत की प्रकृति के प्रतिकूल है और यह स्वयं अपने ऊपर भी ज़ुल्म है। उचित नीति यही है और यही वास्तव में तक़वा (ईश परायणता) है कि अल्लाह का रसूल जिससे हमें रोके उससे हम रुक जाएँ और जिस बात का हमें वह आदेश दे उसे पूरा करें।

पूर्ववर्ती क़ौमों की तबाही के कारणों में से एक बड़ा कारण यह रहा है कि उन्होंने अपने रसूलों से अनावश्यक प्रश्न करके आदेशों में पाई जानेवाली गुंजाइश को क्षति पहुँचाई। फिर नबियों के दिए हुए आदेशों पर चलने से कतराते भी रहे। इस प्रकार सीधी राह से विचलित होकर रहे। वे अपने आपको नबियों की अभिरुचि और उनके स्वभाव और

उनकी लाई हुई शरीअत के अनुसार ढाल न सके। इसका परिणाम यह हुआ कि वे क़ौमें ख़ाक में मिला दी गईं और उनपर आँसू बहानेवाला कोई न रहा।

खिलाफ़त (प्रतिनिधित्व)

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) से रिवायत करते है कि आप (सल्ल॰) ने कहा, "बनी-इसराईल में मामलों का उपाय और व्यवस्था पैग़म्बर करते थे। जब एक पैग़म्बर की मृत्यु हो जाती तो उसका उत्तराधिकारी कोई दूसरा नबी हो जाता। (इस प्रकार एक के बाद दूसरे पैग़म्बर आते रहे) लेकिन मेरे बाद कोई नबी आनेवाला नहीं है। अलबत्ता मेरे बाद ख़लीफ़ा और अमीर होंगे और बहुत होंगे।" सहाबा ने कहा कि फिर आप हमें क्या आदेश दे रहें हैं? कहा, "पहले अमीर की बैअ़त (आज्ञापालन का वचन) पूरी करो फिर (दूसरे ज़माने में) पहले अमीर की, और उनका हक़ अदा करो, अल्लाह ने लोगों की देखभाल और शासन की जो ज़िम्मेदारी उन्हें सौंपी है उसके सम्बन्ध में वह स्वयं उनसे पूछ लेगा।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् बनी-इसराईल में नेतृत्त्व और क़ौम के नायकत्व का दायित्त्व पैग़म्बर निभाते रहे हैं। राजनीतिक मामले हों या सामाजिक समस्याएँ सारे ही मामलों में क़ौम का मार्गदर्शन उन ही के ज़िम्मे था। अतएव हज़रत दाऊद (अलैहि॰) और हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) जैसे शासक उनके यहाँ हुए हैं जिनकी वास्तविक हैसियत नबी की थी। एक नबी के दुनिया से प्रस्थान करने के पश्चात् नबी उसकी जगह ले लेता था। इस प्रकार क़ौम का नेतृत्त्व मूलतः उनके नबी ही करते रहे हैं। नबी (सल्ल॰) कहते हैं कि मेरी हैसियत उम्मत (अनुयायी समुदाय) के नेता और इमाम की है। सामाजिक और सांस्कृतिक हों या आर्थिक और राजनीतिक समस्त मामलों की निगरानी मेरे ज़िम्मे है। ख़ुदा के रसूल की

हैसियत से इस्लामी राज्य की बागडोर भी मेरे हाथों में है लेकिन नुबूवत और पैग़म्बरी का क्रम मुझपर समाप्त हो रहा है। मेरे बाद किसी नबी के आने की सम्भावना अब नहीं है। अब नेतृत्त्व और राज्य-व्यवस्था के संभालने का दायित्व उन ख़लीफ़ाओं का होगा जो मेरे बाद होंगे। वे नबी नहीं होंगे। उनकी हैसियत शासकों और ख़लीफ़ाओं की होगी। उनका यह दायित्व होगा कि वे मेरे प्रस्तुत किए हुए मार्गदर्शन के अनुसार राज्य की व्यवस्था करें। न्याय और शान्ति की स्थापना करें। ख़ुदा की धरती से अन्याय और उपद्रव को दूर करें। धरती में न्यायपरक शासन-प्रणाली के स्थायित्व और उसकी स्थापना के लिए प्रयत्नशील रहें।

नबी (सल्ल०) ने यह जो कहा कि तुम पहले अमीर की बैअ़त पूरी करो, फिर उसके बाद जो अमीर नियुक्त हो उसका आज्ञापालन करो। इसका मतलब यह हुआ कि क्रमशः एक के बाद दूसरे ख़लीफ़ा या अमीर नियुक्त होंगे, तुम भी क्रमशः एक के बाद दूसरे का आज्ञापालन करो। यदि किसी समय एक से अधिक व्यक्ति खलीफ़ा होने का दावा करने लगें तो जो पहले ख़लीफ़ा नियुक्त हुआ हो उसका आज्ञापालन करो। तुम्हारे लिए आवश्यक है कि तुम उन ख़लीफ़ाओं के हक़ अदा करो जो क्रमशः होंगे। अगर वे तुम्हारे हक़ के अदा करने में कमी करते हैं तो अल्लाह के यहाँ उनकी पकड़ होगी।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जिस किसी ने मेरा आज्ञापालन किया उसने अल्लाह का आज्ञापालन किया और जिसने मेरी अवज्ञा की उसने वास्तव में अल्लाह की अवज्ञा की और जिसने अमीर (इस्लामी शासक) का आज्ञापालन किया उसने मेरा आज्ञापालन किया और जिस किसी ने अमीर की अवज्ञा की उसने मेरी अवज्ञा की।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् इस्लामी राज्य के जो अमीर (राज्याध्यक्ष) हों अनका आज्ञापालन तुम्हारे लिए अनिवार्य है। सुनने और आज्ञापालन के बिना किसी शासन की कल्पना नहीं की जा सकती और न्याय पर आधारित शासन के बिना धरती में शान्ति की स्थापना संभव नहीं। न्यायपरक शासन-व्यवस्था के बिना धरती को बचाए रखने के लिए आवश्यक है कि राज्याध्यक्ष की आज्ञा का पालन किया जाए। उसकी अवज्ञा या विद्रोह की स्थिति उत्पन्न करके शासन को कमज़ोर और निष्क्रिय बनाने की कोशिश एक घोर अपराध है। अमीर के आज्ञापालन को रसूल के आज्ञापालन की संज्ञा दी गई है। रिसालत का यह उद्देश्य कदापि नहीं हो सकता कि धरती में गड़बड़ी उत्पन्न हो और शान्ति भंग होकर रह जाए। शान्ति के बिना न जनता को सुख-चैन मिल सकता है और न वह ज्ञान और आध्यात्मिक और भौतिक दृष्टि से जीवन में उन्नति कर सकती है।

इमारत (राज्याध्यक्षता)

इमारत की इच्छा

(1) हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-समुरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने मुझसे कहा, "राज्याध्यक्षता की इच्छा न करो। इसलिए कि यदि माँगने से तुम्हें राज्याध्यक्षता मिली तो तुम उसी के हवाले कर दिए जाओगे और अगर बिना माँग किए तुम्हें वह मिले तो (उसकी ज़िम्मेदारी पूरी करने के लिए) अल्लाह की ओर से तुम्हारी सहायता की जाएगी।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : राज्याध्यक्षता और शासन की ज़िम्मेदारियाँ आसान नहीं होतीं कि उसकी माँग की जाए। ये ज़िम्मेदारियाँ इतनी कठिन और भारी होती हैं कि जब तक अल्लाह का सहयोग और समर्थन प्राप्त न हो तो कोई उसकी ज़िम्मेदारी पूरी नहीं कर सकता। अल्लाह की सहायता और ताईद के लिए आवश्यक है कि उसकी इच्छा और माँग के बिना किसी को राज्याध्यक्ष की ज़िम्मेदारी सौंपी गई हो। इस रूप में अल्लाह का समर्थन और उसकी सहायता प्राप्त हो जाती है और अल्लाह की ओर से उसे इसका सौभाग्य प्राप्त होता है कि वह निजी स्वार्थों और उद्देश्यों में पड़ने के बजाय न्याय और इनसाफ़ को स्थापित करे और अध्यक्षता की समस्त ज़िम्मेदारियों को, जैसा कि इनका हक़ है, अदा कर सके।

(2) हज़रत अबू-मूसा (रज़ि॰) से उल्लिखित है, वे बयान करते हैं कि मैं नबी (सल्ल॰) की सेवा में उपस्थित हुआ, मेरे साथ मेरे दो चचेरे भाई भी थे। उनमें से एक ने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, मुझे उन अधिक्षेत्रों में से जो प्रतापवान अल्लाह ने आपको प्रदान किए हैं, किसी की अध्यक्षता प्रदान करें। दूसरे व्यक्ति ने भी ऐसा ही

कहा। आप (सल्ल०) ने कहा, "अल्लाह की क़सम हम यह सेवा उसको नहीं सौंपते जो उसकी माँग करे और न किसी ऐसे व्यक्ति को सौंपते हैं जो उसका लोभी हो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : राज्याध्यक्षता या शासन की ज़िम्मेदारी इतनी बड़ी और गम्भीर होती है कि कोई ऐसा व्यक्ति जिसको उस ज़िम्मेदारी का पूरा एहसास हो और वह सही अर्थों में अल्लाह से डरनेवाला हो, कभी भी इस ज़िम्मेदारी के बोझ को उठाने के लिए स्वयं आगे नहीं बढ़ सकता। यदि कोई व्यक्ति राज्याध्यक्षता का आकांक्षी है और इसके लिए प्रयासरत है तो इसका अर्थ इसके सिवा और कुछ नहीं कि उसे या तो पदों की ज़िम्मेदारियों और उनकी गम्भीरता का एहसास नहीं है या वह सत्ता की हवस में पड़ गया है। इनमें से जो बात भी हो राज्याध्यक्षता के लिए किसी की अयोग्यता के लिए पर्याप्त है।

एक और हदीस में है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "लोगों में सबसे अच्छा तुम उसे पाओगे जो इस (राज्याध्यक्षता और पद) को अत्यन्त अप्रिय समझता हो।" (हदीसः बुख़ारी, मुस्लिम)

अमीर (राज्याध्यक्ष) का चुनाव

(1) हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि०) बयान करते हैं कि उन्होंने हज़रत उमर (रज़ि०) का दूसरा भाषण सुना जबकि वे मिम्बर पर बैठे। यह नबी (सल्ल०) के देहान्त का दूसरा दिन था। उन्होंने भाषण दिया और अबू-बक्र (रज़ि०) चुप थे, बोल नहीं रहे थे। हज़रत उमर (रज़ि०) ने कहा, "मुझे यह आशा थी कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) जीवित रहेंगे यहाँ तक कि आपका देहान्त हमारे बाद होगा। उनका उद्देश्य यह था कि आप (सल्ल०) सबके बाद प्रस्थान करेंगे। फिर यदि मुहम्मद (सल्ल०) मृत्यु को प्राप्त हो गए तो सर्वोच्च अल्लाह ने तुम्हारे समक्ष प्रकाश उत्पन्न कर दिया है जिसके द्वारा तुम्हें मार्गदर्शन मिलेगा। उसी के द्वारा तुम्हें मार्गदर्शन

मिलता है जिससे अल्लाह ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को मार्ग दिखाया। और निस्सन्देह रसूल (सल्ल०) के सहाबी अबू-बक्र (रज़ि०) जो गुफा में दो में दूसरे साथी थे, अतः वे मुसलमानों में तुम्हारे मामलात के मालिक होने के ज़्यादा हक़दार हैं। अतः उठो और उनके हाथ पर बैअत करो।"

उनमें से एक जमाअत इससे पहले सक़ीफ़ा-बनी-साइदा ही में बैअत कर चुकी थी और आम लोगों की बैअत मिम्बर पर हुई।

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : शासन-व्यवस्था को क़ायम रखने और राज्य की व्यवस्था को ठीक रखने के लिए आवश्यक होता है कि मुसलमानों का एक अमीर हो और अमीर या राष्ट्राध्यक्ष उस व्यक्ति को बनाया जाए जो तक़वा (ईश-परायणता), ईमानदारी, सूझ-बूझ और निर्णय-शक्ति आदि हर दृष्टि से इस महत्त्वपूर्ण पद की गरिमा के योग्य हो। हज़रत उमर (रज़ि०) आम मुसलमानों में यह स्पष्ट कर देना चाहते थे कि नबी (सल्ल०) की मृत्यु के बाद हममें से जो सबसे बढ़कर अध्यक्षता पद के योग्य है वे हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) हैं। इसलिए सारे ही मुसलमानों को उनकी अध्यक्षता पर अपनी सहमति प्रकट करनी चाहिए। अतएव हज़रत उमर का समर्थन सभी लोगों ने किया और आम बैअत हुई। इससे पहले सक़ीफ़ा-बनी-साइदा में एक जमाअत हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) की ख़िलाफ़त पर अपनी सहमति प्रकट कर चुकी थी। लेकिन फिर भी आवश्यक था कि सारे ही मुसलमानों को विश्वास में लिया जाए ताकि क़ौम में किसी प्रकार का असन्तोष और शिकायत न पाई जाए।

इस्लामी दृष्टिकोण से सत्ता में सारे ही मुसलमानों का हिस्सा होता है। ख़िलाफ़त और शासन में वास्तव में सभी सम्मिलित होते हैं। लेकिन यह व्यवस्था की अपेक्षा होती है कि उनका एक प्रतिनिधि या अमीर हो। अमीर देखने में एक होता है लेकिन विहित रूप में इस अध्यक्षता और शासन में सभी सम्मिलित होते हैं। यही वास्तविक लोकतंत्र है। अलबत्ता

नुबूवत का मामला इससे बिल्कुल भिन्न होता है। नुबूवत में किसी पहलू से कोई नबी का साझी नहीं होता। नबी तो बस वही व्यक्ति होता है कि जिसको अल्लाह नुबूवत के पद के लिए चुन लेता है। नबी के अपने रिश्तेदार और निकट-सम्बन्धी भी नबी की नुबूवत में साझीदार नहीं होते। यह अलग बात है कि अल्लाह उनमें से किसी को स्वयं नुबूवत से सम्मानित करे।

(2) हज़रत आइशा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने अपनी बीमारी में, जिससे आपका देहांत हुआ, कहा, "(ऐ आइशा), अपने पिता अबू-बक्र और अपने भाई (अब्दुर्रहमान-बिन-अबू- बक्र) को मेरे पास बुला दो ताकि मैं एक लेख (ख़िलाफ़त के सम्बन्ध में) लिखा दूँ। मुझे भय है कि (ख़िलाफ़त की) कामना करनेवाला कोई व्यक्ति इसकी कामना करे और कोई कहनेवाला कहने लगे कि मैं उसका हक़दार हूँ। हालाँकि वह उसका हक़दार न हो और अल्लाह को और मोमिनों को अबू-बक्र के सिवा कोई स्वीकृत न होगा।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस रिवायत से मालूम हुआ कि अपनी उस बीमारी में जिसमें नबी (सल्ल॰) का देहांत हुआ नबी (सल्ल॰) ने यह इरादा किया था कि अपने बाद ख़िलाफ़त के लिए हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) को नामांकित कर दें और दस्तावेज़ इस सम्बन्ध में लिख दें। लेकिन फिर आपको यक़ीन हो गया कि ईश्वरेच्छा यही है कि आपके बाद मुसलमान अबू-बक्र ही को ख़लीफ़ा निर्वाचित करेंगे। वे किसी दूसरे को खलीफ़ा निर्वाचित नहीं करेंगे। इसलिए दस्तावेज़ लिखाने की आवश्यकता महसूस नहीं की और उचित यही मालूम हुआ कि बिना किसी नामांकन के मुसलमानों के चुनाव के द्वारा अबू-बक्र ख़लीफ़ा हों।

इस हदीस से मालूम होता है ख़लीफ़ा नियुक्त करने की एक विधि नामांकन और उत्तराधिकार चयन भी हो सकता है और चुनाव के द्वारा भी ख़लीफ़ा की नियुक्ति हो सकती है। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) ने अपने बाद हज़रत उमर (रज़ि.) को ख़लीफ़ा नामांकित किया तो बहुत सम्भव है कि नबी (सल्ल.) का इरादा उनके सामने रहा हो और इसे नामांकन की वैधता का प्रमाण ठहराया हो।

क़ुरआन में है—

> "और याद करो जब मूसा ने अपनी क़ौम से कहा था : ऐ मेरे लोगो, अल्लाह की उस कृपा को याद करो जो तुमपर रही है, जैसा कि उसने तुममें नबी नियुक्त किए और तुम्हें बादशाह बनाया।" (क़ुरआन, 5:20)

इस आयत पर विचार करें। बनी-इसराईल से अल्लाह के अनुग्रह का वर्णन किया जा रहा है कि किस प्रकार अल्लाह की उनपर कृपाएँ रही हैं। एक ओर तो उन्हें शासक बनाया और दूसरी ओर उनके अन्दर नबियों को भेजा। बनी-इसराईल के समस्त ही लोग नबी न थे। इसलिए उनसे कहा कि तुममें नबियों को नियुक्त किया। लेकिन शासन-सत्ता के बारे में यह नहीं कहा कि तुममें शासक बनाए बल्कि इसके बजाय कहा कि तुम्हें शासक (बादशाह) बनाया। हालाँकि बनी-इसराईल के समस्त लोग शासक या बादशाह नहीं थे। इसके बावजूद बादशाहत और शासन को सबसे सम्बद्ध करने का कारण यह है कि शासन में सभी सम्मिलित होते हैं। व्यवस्था की दृष्टि से क़ौम का एक व्यक्ति शासन के प्रतिनिधित्व का दायित्व निभाता है, जबकि नुबूवत में किसी प्रकार की साझेदारी (Sharing) की गुंजाइश नहीं होती।

अमीर या ख़लीफ़ा शासन-व्यवस्था की अपेक्षा के रूप में सबकी ओर से एक महत्त्वपूर्ण ज़िम्मेदारी का पद स्वीकार करता है। वह शासन के पद पर आसीन होकर अपने लिए अधिक से अधिक भोग विलास की

सामग्री जुटाने में नहीं लग जाता। विलासिता का जीवन व्यतीत करने के बजाय वह स्वयं को लोगों का सेवक समझता है। उसका प्रयास यह होता है कि उसके शासन में किसी व्यक्ति पर कोई अन्याय एवं अत्याचार न हो। प्रगति के अवसर सबको उपलब्ध हों और कोई भी जीवन की मौलिक आवश्यकताओं से वंचित न रहने पाए। यह चिन्ता उसे बेचैन रखती है जबकि आम लोग निश्चिन्त होकर सो रहे होते हैं। उत्तरदायित्व के एहसास से उसकी नींद उड़ जाती है। उसे यह चिन्ता लगी रहती है कि वह किस प्रकार लोगों को विभिन्न परेशानियों से बचाए। वह लोगों की परिस्थितियों से अवगत रहने की चेष्टा करता है ताकि उनकी आवश्कताओं से अवगत हो सके। फिर वह लोगों की संसारिक भलाई ही के लिए नहीं बल्कि वह उनकी पारलौकिक सफलता के लिए भी चिन्तित रहता है और इसके लिए उचित और प्रभावी उपाय सोचता और उनको व्यवहार में लाता है।

सर्वोत्तम नेतृत्व

(1) हज़रत औफ़-बिन-मालिक अशजई (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "तुम्हारे सर्वोत्तम शासक वे हैं जिनसे तुम प्रेम करो और वे तुममे प्रेम करें। तुम उनके लिए दुआ करो और वे तुम्हारे लिए दुआ करें और तुम्हारे शासकों में निकृष्टतम शासक वे हैं जिनसे तुम्हें द्वेष हो और उन्हें तुमसे द्वेष हो और तुम उनपर लानत करो और वे तुम पर लानत करें।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि सर्वोत्तम शासक प्रजा के लिए अभिशाप नहीं होता। लोगों से उसके और उससे लोगों के सम्बन्ध अत्यन्त मधुर होते हैं। वह अपनी प्रजा से प्रेम करता है और प्रजा भी उसे अपने प्राणों से बढ़कर समझती है और अल्लाह से उसके लिए दुआएँ करती है। इसके विपरीत सबसे बुरा शासक वह है जिससे लोग अत्यन्त घृणा करते

हों और उसमें भी लोगों के प्रति शत्रुता और द्वेष का भाव पाया जाता हो। लोग दुआ के बदले उसपर लानत भेजते हों और वह भी लोगों पर लानतें बरसाता रहता हो। अब आप स्वयं सोच सकते हैं कि ऐसे शासक से यह आशा कदापि नहीं की जा सकती कि वह जनता की कोई सेवा कर सकता है और लोगों का सहयोग प्राप्त करने में कभी उसे सफलता मिल सकती है।

(2) हज़रत उमर-बिन-ख़त्ताब (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "क़ियामत के दिन अल्लाह के बन्दों में अल्लाह के यहाँ पद और प्रतिष्ठा की दृष्टि से सबसे अच्छा व्यक्ति न्यायप्रिय व मृदुल स्वभाव का शासक होगा। और क़ियामत के दिन अल्लाह के यहाँ सबसे बुरा व्यक्ति ज़ालिम और कठोर शासक होगा।" (हदीस : बैहक़ी)

व्याख्या : यह एक महत्त्वपूर्ण हदीस है। इससे सिद्ध होता है कि इस्लाम संन्यास की शिक्षा देने के लिए नहीं आया है। यही कारण है कि आदर्श व्यक्ति उसको ठहराया जा रहा है जिसके हाथ में सत्ता की बागडोर हो लेकिन वह न्याय और इनसाफ़ पर क़ायम हो और मृदुलता उसका स्वभाव हो। इसके विपरीत अल्लाह की दृष्टि में सबसे बुरा व्यक्ति उस शासक को ठहराया जा रहा है जो ज़ालिम और प्रजा के लिए क्रूर स्वभाव का हो।

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "अल्लाह क़ियामत के दिन सात प्रकार के लोगों को अपनी छाया में स्थान प्रदान करेगा जिस दिन कि उसकी छाया के अतिरिक्त कोई छाया न होगी : न्यायप्रिय शासक, वह नवयुवक जो अल्लाह ही की बन्दगी करते हुए जवान हुआ हो, वह व्यक्ति जिसने अल्लाह को अकेले में याद किया और उसकी आँखों से आँसू छलक पड़े, वह व्यक्ति जिसका मन मस्जिद में लगा रहता

है, वे दो व्यक्ति जो परस्पर अल्लाह के लिए प्रेम करें, वह व्यक्ति जिसे उच्च कुल और पदवाली सुन्दर नारी अपनी ओर बुलाए और वह कहे कि मैं अल्लाह से डरता हूँ (इसलिए बुरा काम नहीं कर सकता) और वह व्यक्ति जो छुपाकर इस तरह सदक़ा (दान) करे कि उसके बाएँ हाथ को पता न हो कि उसके दाएँ हाथ ने क्या किया।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इस हदीस में न्यायप्रिय शासक की गणना उन सात प्रकार के लोगों में की गई है जो अल्लाह के विशिष्ट प्रिय होंगे और क़ियामत की कठिनाइयों और विपत्तियों से सुरक्षित होंगे। क़ियामत के दिन जिनको अल्लाह अपनी दयालुता की छाया में ले लेगा और उन्हें किसी प्रकार की परेशानी और कठिनाई का सामना न करना पड़ेगा। न्यायप्रिय शासक का दर्जा और स्थान क्या है, इसका अनुमान इससे कीजिए कि उसकी गणना उन युवकों में की जाएगी जिसकी उठान अल्लाह की बन्दगी में हुई हो और वह उन पवित्र लोगों में सम्मिलित समझा जाएगा जो अल्लाह की याद में आँसू बहाते हैं। और उसकी गणना ऐसे लोगों में होगी जो अल्लाह के डर से गुनाहों और पापों से दूर रहते हैं। कोई गुनाह चाहे उसमें कितना ही आकर्षण क्यों न हो और वह वासना की दृष्टि से चाहे कितना ही सुखकर प्रतीत हो रहा हो, अपने को जो उससे दूर रखते हैं और न्यायप्रिय शासक को उन लोगों में गिना जाएगा जो सत्य सौन्दर्य को ऐसा पहचानते हैं कि उनमें दिखावा और नामवरी की इच्छा का लेशमात्र भी न पाया जाता हो।

(4) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "न्यायप्रिय शासक अल्लाह के यहाँ प्रकाश के मिम्बरों पर रहमान के दाहिने हाथ की ओर होंगे और अल्लाह के दोनों ही हाथ दाहिने हैं। जो अपने आदेशों,

अपने परिवार-जनों और अपने अधीनस्थ मामलों में न्याय और इनसाफ़ करते हैं।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : न्यायप्रिय शासक अन्धकार के पुजारी नहीं होते। वे अत्याचार और अन्याय के पक्षधर नहीं होते। इसलिए जिन मंचों और मिम्बरों पर उन्हें स्थान मिलेगा वे मिम्बर भी प्रकाशमान और रौशन होंगे। प्रतिष्ठा और पद के अधिकारी हमेशा दाहिनी ओर जगह पाते हैं। अल्लाह के यहाँ भी वे उसके दाहिने हाथ की ओर होंगे। यह जो कहा कि रहमान के दोनों ही हाथ दाहिने हैं, यह इसलिए कहा कि किसी को यह भ्रम न हो कि यहाँ दाहिना बाएँ के विपक्ष में प्रयुक्त हुआ है। बायाँ हाथ दाहिने के मुक़ाबिले में कमज़ोर होता है और अल्लाह हर प्रकार की कमज़ोरियों और खोटों से मुक्त है। रहमान के दाहिने हाथ से तात्पर्य क्या है? इसकी वास्तविकता अल्लाह ही को मालूम है। वैसे हाथ का प्रयोग शक्ति और सामर्थ्य के लिए भी होता है।

न्यायप्रिय शासक वास्तव में वही होते हैं जो हमेशा और हर मामले में न्याय को ध्यान में रखते हैं। राज-काज का मामला हो या अपने अधीनस्थ लोगों के अधिकारों का मामला हो, वे हर मामले में न्याय और इनसाफ़ से काम लेते हैं। जो व्यक्ति और जो लोग उनकी देख-रेख में काम करते हैं उनके सम्बन्ध में भी वे अपने कर्त्तव्यों को ख़ूब समझते हैं और उनको निभाने की पूरी कोशिश करते हैं।

निकृष्टतम नेतृत्व

(1) हज़रत आइज़-बिन-अम्र (रज़ि॰) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना : "शासकों में सबसे बुरा शासक वह है जो अत्याचारी हो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : शासक के हाथ में चूँकि सत्ता की शक्ति होती है, वह सत्ताधारी होता है, इसलिए वह यदि अत्याचारी हुआ तो उसका अत्याचार

अन्य सामान्य अत्याचारियों से कहीं अधिक बढ़ा हुआ होगा। शासक में यदि कुछ दूसरी त्रुटियाँ और ख़ामियाँ हैं, लेकिन वह अत्याचारी नहीं है तो उससे उतनी हानि की आशंका नहीं रहती जितनी हानि किसी अत्याचारी शासक के द्वारा पहुँच सकती है। इसलिए उसका सबसे बुरा शासक होने में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता।

(2) हज़रत मअक़िल-बिन-यसार (रज़ि॰) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना, "जो शासक भी शासन और नेतृत्व प्राप्त करके अपनी प्रजा पर शासन करे और उसकी मृत्यु इस दशा में आए कि वह विश्वासघाती और ज़ालिम हो तो अनिवार्य ही अल्लाह उसके लिए जन्नत निषिद्ध कर देगा।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् विश्वासघाती और अत्याचारी शासक यदि अपने अत्याचार से नहीं रुकता यहाँ तक कि मृत्यु ही आकर लोगों को उससे छुटकारा दिलाती है तो ऐसे ज़ालिम और विश्वासघाती व्यक्ति के लिए अल्लाह की जन्नत में कोई जगह नहीं। उसे ठिकाना दोज़ख़ (नरक) ही में मिल सकता है।

(3) हज़रत मअक़िल-बिन-यसार (रज़ि॰) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना, "जिस बन्दे को भी अल्लाह प्रजा की देख-रेख की ज़िम्मेदारी सौंपे और वह हितैषिता के साथ देख-रेख न करे तो अनिवार्यतः वह जन्नत की सुगन्ध न पा सकेगा।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : शासक को प्रजा का हितैषी होना चाहिए। वह यदि अपनी प्रजा का बुरा चाहता है, दयालुता के बजाय लोगों के लिए मुसीबत होता है तो उसके अकृतज्ञ होने में कोई सन्देह नहीं। अल्लाह ने तो उसे अपने बन्दों की सेवा और रक्षा का काम सौंपा था और वह अपनी ज़िम्मेदारियों को बिल्कुल भुला बैठा। ऐसा अकृतज्ञ व्यक्ति

परलोक में अल्लाह के अनुग्रह और कृपाओं से वंचित रहेगा। ऐसा व्यक्ति जन्नत (स्वर्ग) तो क्या जन्नत की सुगन्ध तक नहीं पा सकता।

(4) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "मेरी उम्मत में से जो व्यक्ति भी मुसलमानों के किसी मामले का ज़िम्मेदार बना, फिर उसने उस प्रकार से उनकी रक्षा नहीं की जिस प्रकार वह अपनी और अपने घरवालों की रक्षा करता है तो निश्चय ही वह जन्नत की सुगन्ध तक न पा सकेगा। (हदीस : तबरानी मोजम सग़ीर)

व्याख्या : इस्लामी दृष्टिकोण से शासक का कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा को अपने परिवारजनों की तरह प्रिय समझे। जिस तरह कोई व्यक्ति अपने और अपने प्रियजनों के साथ अच्छा व्यवहार करता है, ठीक उसी तरह उसके लिए आवश्यक है कि उसका व्यवहार अपनी प्रजा के साथ अच्छा हो और वह प्रजा की रक्षा एवं सेवा में कोई कमी न रहने दे। अब अगर वह अपनी ज़िम्मेदारियों को भूलकर लोगों की रक्षा करने से कतराता है तो उसे जान लेना चाहिए कि आख़िरत (परलोक) में वह अल्लाह की कृपा का किसी प्रकार हक़दार नहीं हो सकता। आख़िरत में वह अल्लाह की जन्नत के निकट भी नहीं फटक सकता।

अमीर का दायित्त्व

(1) हज़रत इब्ने-अबी-बुरदा (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने उनके दादा अबू-मूसा (रज़ि॰) और मआज़ (रज़ि॰) को (अधिकारी और हाकिम बनाकर) यमन भेजा तो कहा, "आसानी का मामला करना, कठिनाइयों में न डालना। ख़ुशख़बरी देना, घृणा पैदा न करना, परस्पर सहमति और एकता क़ायम रखना, मतभेद पैदा न करना।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : शासक जिस पद पर होता है उसकी दृष्टि से उसकी ज़िम्मेदारी है कि उसका व्यवहार प्रजा के साथ कठोरता के बजाय नर्मी का हो। उसका कर्त्तव्य है कि वह लोगों को कठिनाइयों से निकाले, न कि उसके कारण लोग कठिनाइयों में पड़ जाएँ। उसकी उपस्थिति लोगों के लिए ख़ुशख़बरी का कारण हो। वह ऐसी नीति कदापि न अपनाए कि लोग विरक्त हों और उसको अपने लिए मुसीबत समझने लगें। दीन की हैसियत वास्तव में ख़ुशख़बरी या शुभ-सूचना की है। लोग दीन और ईमान को नेमत के बजाय अप्रिय बोझ समझने लगें तो यह उनकी नासमझी है और अगर इसमें हाकिम की ग़लत नीति की भूमिका हो तो जान लें कि हाकिम दीन के सही प्रतिनिधित्व में असमर्थ है। शासक की यह भी एक महत्त्वपूर्ण ज़िम्मेदारी है कि वह लोगों में परस्पर सहमति और एकता के वातावरण को बनाए रखे। वह लोगों को गुटों में बँटने और मतभेद में पड़ने से बचाए। फूट और गुटबन्दी वास्तव में एक घोर अपराध है। शासक की ज़िम्मेदारी है कि वह इस सम्बन्ध में अत्यन्त संवेदनशील हो। वह लोगों को गुटबन्दी और मतभेद के रोग से सुरक्षित रखे।

(2) हज़रत आइशा (रज़ि.) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने कहा, "ऐ अल्लाह, जिस किसी को मेरे समुदाय के मामले में से किसी का ज़िम्मेदार बनाया गया फिर वह लोगों को कठिनाई में डाल दे, उसे तू भी कठिनाई में डाल और जिस किसी को मेरे समुदाय के मामलों में से किसी मामले का ज़िम्मेदार बनाया गया और उसने लोगों के साथ नरमी का मामला किया तो उसके साथ तू भी नरमी का मामला कर।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि नबी (सल्ल.) को अपनी उम्मत (मुस्लिम समुदाय) से कितना प्रेम है। आप (सल्ल.) के लिए यह बात असह्य है कि शासक या संरक्षक का मामला लोगों के साथ नरमी और

स्नेह का न हो और वह लोगों को कठिनाइयों में डाल दे। इसी लिए आपके शुभ मुख से दुआ के शब्द उस शासक के लिए निकले हैं जिसका व्यवहार प्रजा के साथ स्नेह और नरमी का हो।

(3) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "सावधान! तुममें से प्रत्येक अपने अधीनस्थ का निरीक्षक है और तुममें से प्रत्येक अपने अधीनस्थ के विषय में उत्तरदायी है। अतः राज्य का अध्यक्ष जो लोगों का निरीक्षक है वह अपने अधीन (प्रजा) के बारे में उत्तरदायी है। पुरुष अपने परिवार के लोगों का उत्तरदायी है, उससे उसके अधीनस्थ के विषय में पूछा जाएगा। स्त्री अपने पति के घर की और उसके बच्चों की देख-भाल करनेवाली है, उससे इनके विषय में पूछा जाएगा। और ग़ुलाम अपने स्वामी के धन की देख-भाल करनेवाला है। वह उसके बारे में उत्तरदायी है। सावधान! तुममें से हर एक रखवाला है और तुममें से हर एक अपने अधीनस्थ के विषय में उत्तरदायी है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि हममें से प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी हैसियत से ज़िम्मेदार है और उसे अपनी ज़िम्मेदारी का पूरा-पूरा एहसास होना चाहिए। क़ियामत के दिन हर एक से उसकी ज़िम्मेदारी के विषय में पूछा जाएगा कि उसने उसे कहाँ तक पूरा किया। राज्य के अधिकारी से यदि प्रजा के बारे में पूछा जाएगा कि उसने कहाँ तक अपनी प्रजा की देख-भाल का हक़ अदा किया तो पुरुष से उसके परिवारजनों के बारे में और औरत से पति के घर और बच्चों की देख-भाल के बारे में पूछा जाएगा कि उसने इसका कहाँ तक ध्यान रखा। इसी प्रकार ग़ुलाम और नौकर से पूछा जाएगा कि उसने अपने स्वामी के माल की रक्षा और देख-भाल की या नहीं। तात्पर्य यह कि हर व्यक्ति किसी न किसी हैसियत से देख-भाल करनेवाला और रखवाला

है। उसे अपनी ज़िम्मेदारी की ओर से कदापि असावधान नहीं रहना चाहिए।

(4) हज़रत अमीर मुआविया (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "ऐ मुआविया, यदि तुम्हें अधिकारी व हाकिम नियुक्त किया जाए तो अल्लाह का डर रखना और न्याय के दामन को हरगिज़ न छोड़ना।" (हदीस : मुसनद अहमद)

हज़रत मुआविया (रज़ि॰) कहते हैं कि मुझे बराबर यह ध्यान रहा कि नबी (सल्ल॰) के कथनानुसार अनिवार्यतः इमारत (अध्यक्ष पद) की ज़िम्मेदारी का बोझ मुझपर डाला जाएगा, यहाँ तक कि मुझपर वह डाला गया।

व्याख्या : यह हदीस वास्तव में एक भविष्यवाणी है। अतएव यह भविष्यवाणी पूरी हुई। हज़रत मुआविया (रज़ि॰) के हाथ में शासन की बागडोर आई। नबी (सल्ल॰) ने हज़रत मुआविया (रज़ि॰) को जो नसीहत की वह यह कि हुकूमत हाथ में आए तो तुम अल्लाह से ग़ाफ़िल न हो जाना, अल्लाह से डरते रहना और सदैव न्याय और इनसाफ़ से काम लेना।

सामूहिक व्यवस्था

(1) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति अपने अमीर (अधिकारी) के अन्दर कोई ऐसी बात देखे जो उसे अप्रिय हो तो उसे चाहिए कि सब्र से काम ले, क्योंकि जो व्यक्ति जमाअत (समूह) से एक बालिश्त भी अलग हुआ और वह (इसी हाल में) मर गया तो वह अज्ञान की मौत मरा।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इस्लाम में सामूहिक व्यवस्था को मौलिक महत्त्व प्राप्त है। इसी लिए इस्लाम सामूहिक व्यवस्था को सुदृढ़ से सुदृढ़ देखना चाहता

है। सुदृढ़ संगठन के बिना यह मुस्लिम समुदाय वह महान कार्य नहीं कर सकता जिसके लिए उसे अस्तित्व में लाया गया है, बल्कि सुदृढ़ संगठन के बिना समुदाय का स्वयं अपना अस्तित्व ही ख़तरे में पड़ सकता है। इसलिए सामूहिक व्यवस्था को प्रत्येक स्थिति में क़ायम रखना ज़रूरी है। इमाम या अमीर और नेतृत्व के बिना सामूहिक व्यवस्था की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सामूहिक व्यवस्था को क्षति न पहुँचे इसके लिए अमीर की कुछ कमज़ोरियों और त्रुटियों को सहन करना चाहिए और धैर्य तथा बुद्धिमानी के साथ कोशिश करनी चाहिए कि वे कमज़ोरियाँ दूर हो जाएँ। लेकिन इसके बजाए अगर कोई इमाम या अमीर से निराश होकर अपने को इमाम या अमीर के आज्ञापालन से अलग कर लेता है और मुसलमानों के संगठन से अलग हो जाता है और वर्तमान समूह एवं एकता के विरोध में कमर कस लेता है और इसी स्थिति में उसको मौत आ जाती है तो उसकी मौत इस्लाम पर नहीं, अज्ञानता पर होगी। इस्लाम में सामूहिक संगठन का महत्व इतना अधिक है कि उससे एक बालिश्त भी अलग होना इस्लामी दृष्टिकोण से किसी ज़ुल्म से कम नहीं।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति (अमीर के) आज्ञापालन से निकल जाए और जमाअत से अलग हो जाए तो ऐसे व्यक्ति की मौत अज्ञानता की मौत होगी और जो व्यक्ति अंधे झंडे के अन्तर्गत युद्ध करे, (आज्ञानतापूर्ण) पक्षपात से उत्तेजित हो या पक्षपात की ओर बुलाए या पक्षपात का समर्थन करे, फिर इसी दशा में मारा गया तो वह अज्ञानता की हालत में मारा गया। और जो कोई मेरे समुदाय के विरुद्ध विद्रोह करे, हाल उसका यह हो कि वह नेक व बद सबको मारता है और मोमिन का कोई आदर नहीं करता और किसी को वचन देता है तो उस वचन को पूरा नहीं करता है, तो ऐसा व्यक्ति मुझसे नहीं और न मैं उससे हूँ।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् ज्ञान और सूझ-बूझ के बिना जो झंडा उठाया जा रहा हो और सामूहिक संगठन को छिन्न-भिन्न करने के लिए युद्ध किया जा रहा हो तो जो व्यक्ति उस युद्ध में शामिल होता है उसे जान लेना चाहिए कि वह इस्लाम के लिए नहीं, जाहिलियत और अज्ञान के समर्थन में लड़ने जा रहा है।

अर्थात जो व्यक्ति इस्लामी शुऊर से बेपरवाह होकर अज्ञानतापूर्ण भावनाओं से उद्वेलित हो या इस्लाम के बजाय अज्ञानतापूर्ण पक्षपात की ओर लोगों को बुलाए और अज्ञानतापूर्ण पक्षपात के समर्थन में दौड़-भाग कर रहा हो और इसी हालत में मारा जाए तो उसकी मृत्यु जाहिलियत या अज्ञान ही की मृत्यु होगी।

नबी (सल्ल॰) स्पष्ट रूप से एलान कर रहे हैं कि उस व्यक्ति से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है जो आपके समुदाय से विद्रोह करे, न उसे नेक और बद का कुछ ख़याल हो, न वह मोमिन और ग़ैर-मोमिन में कोई अन्तर करता हो। किसी को क़त्ल करने में उसे कोई संकोच न हो और न उसे इसकी परवाह हो कि किसी से किए हुए समझौते और उसे दिए हुए वचन को पूरा करना उसके लिए ज़रूरी है। पक्षपात में वह इतना अंधा हो गया हो कि वचन भंग करने को वह सिरे से बुरा ही न समझता हो।

(3) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना है, "जो अपना हाथ आज्ञापालन से हटा ले वह क़ियामत के दिन अल्लाह से इस हाल में मिलेगा कि उसके पास (अपनी इस नीति के पक्ष में) कोई दलील न होगी और जो व्यक्ति इस हालत में मर जाए कि उसकी गरदन में बैअत का पट्टा न हो तो उसकी मौत जाहिलियत की मौत होगी।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : कोई सामूहिक संगठन हाकिम का आदेश सुनने और उसके आज्ञापालन के बिना नहीं रह सकता। अब यदि कोई व्यक्ति अमीर (अधिकारी) के आज्ञापालन को अपने लिए ज़रूरी नहीं समझता और अपने को आज्ञापालन से अलग कर लेता है तो क़ियामत के दिन वह अपनी इस नीति के पक्ष में कोई दलील और प्रमाण न ला सकेगा। वह अल्लाह के यहाँ पूर्णतः अपराधी ठहरेगा।

इस्लामी जीवन का एक स्पष्ट लक्षण यह है कि आदमी इमाम या अमीर के नेतृत्व को स्वीकार करता हो। अमीर के हाथ पर बैअत करने को अपने लिए अनिवार्य ठहराता हो। यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि उसे किसी अमीर की इताअत की कोई आवश्यकता नहीं है और इसी हालत में उसकी मौत आ जाती है तो यह मौत अनिवार्यतः जाहिलियत की मौत होगी। अल्लाह के यहाँ वह कदापि सफल और प्रतिष्ठित नहीं हो सकता।

(4) उम्मुल-मोमिनीन हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "तुमपर ऐसे अमीर भी नियुक्त किए जाएँगे जिनके अच्छे काम भी तुम देखोगे और बुरे काम भी तुम देखोगे। जिसने इंनकार किया वह ज़िम्मेदारी से मुक्त हो गया और जिसने उसे बुरा समझा वह सुरक्षित रहा। किन्तु जो (अधिकारी के बुरे कर्म पर) राज़ी हुआ और उसका अनुसरण किया, वह तबाह हुआ।" सहाबा ने कहा कि क्या उनके विरुद्ध युद्ध न करें? आप (सल्ल॰) ने कहा, "नहीं, जब तक वे नमाज़ अदा करते रहें; नहीं, जब तक वे नमाज़ अदा करते रहें।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् जिसने बुराई को बुराई कहा और उसके विरुद्ध आवाज़ उठाई उसने अपना कर्त्तव्य पूरा किया और जिस किसी में इतना साहस न हुआ कि वह बुराई को खुल्लम-खुल्ला बुराई कह सके मगर

अपने दिल में उसने बुराई को नापसन्द किया तो ऐसा व्यक्ति भी बुराई में सम्मिलित होने के दण्ड से सुरक्षित रहा। लेकिन अगर कोई व्यक्ति शासक के बुरे कर्म पर राज़ी रहा और उसका आज्ञापालन किया तो वह कदापि बुराई के दण्ड से बच नहीं सकता। वह किसी तरह भी अपने को ज़िम्मेदारी से मुक्त नहीं ठहरा सकता।

इस हदीस से मालूम हुआ कि अप्रिय बातों के बावुजूद शासन के विरुद्ध जंग करना वैध न होगा, क्योंकि यह कार्यवाही उस बुराई से बड़ी बुराई और तबाही का कारण बन सकती है जिसे दूर करने के लिए यह कार्यवाही की जा रही है। जहाँ तक सम्भव हो जो शासन-व्यवस्था क़ायम है उसे बाक़ी रखा जाए और जो ख़राबियाँ उत्पन्न हो गई हों उनके सुधार की कोशिश की जाए। युद्ध या सत्ता-परिवर्तन के लिए कोई कार्यवाही तो अन्तिम उपाय है। जब शासन बिल्कुल ही इस्लाम के उच्च उद्देश्यों को भुला बैठे यहाँ तक कि नमाज़ के आयोजन की उपेक्षा करने लगे और किसी पहलू से भी वह इसकी गुंजाइश बाक़ी न रखे कि उसे इस्लामी शासन कहा जा सके, इस्लाम की जगह असत्य की सत्ता अगर क़ायम हो जाती है तो फिर उससे निकलने के लिए प्रयास करना मुसलमानों का कर्त्तव्य हो जाता है। उन्हें अपनी ओर से स्थिति के अनुसार इसके लिए कोई प्रभावकारी उपाय अपनाने का अधिकार प्राप्त होगा। वर्तमान में इसके लिए प्रभावकारी उपाय यह है कि समाज के अन्दर वह चेतना और इस्लामी स्प्रिट पैदा करने की कोशिश की जाए कि इस्लामी शासन के सिवा कोई भी शासन-प्रणाली उसके लिए स्वीकार्य न हो सके।

अमीर का सम्मान

(1) हज़रत अबू-मूसा अशअरी (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "निस्सन्देह अल्लाह की प्रतिष्ठा में से है बूढ़े मुसलमान और उस क़ुरआन के धारक का सम्मान जो न

उसमें अतिशयोक्ति से काम लेता हो और न उसमें कोई और कमी करता हो, और उस हाकिम का सम्मान जो न्यायशील हो।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : जो लोग आदर और सम्मान के योग्य हों उनका आदर करना आवश्यक है। यही इस्लामी सभ्यता की अपेक्षा भी है। समाज यदि आदरणीय व्यक्तियों का मान-सम्मान नहीं करता तो इसका अर्थ इसके सिवा और क्या होगा कि समाज में अभी इस्लामी मूल्यों की समझ पैदा नहीं हो सकी है। अल्लाह की महानता और बड़ाई का एहसास उसकी स्मृति के साथ उभर कर सामने आता है। इसी लिए अल्लाह की महानता का कोई इनकार नहीं करता, लेकिन अल्लाह के बन्दों के हक़ को साधारणतः हम भुला बैठते हैं। अगर किसी व्यक्ति को किसी पहलू से कोई श्रेष्ठता प्राप्त है तो यह श्रेष्ठता सम्मान की अपेक्षा करती है। किसी श्रेष्ठ व्यक्ति का सम्मान न करने का अर्थ यह होता है कि उसको यह पसन्द नहीं कि अल्लाह किसी को श्रेष्ठता प्रदान करे। यह तो स्वयं ख़ुदा की मनाही और उसकी महानता का इनकार है। अल्लाह के साथ अनुकूलता और एकात्मता का अर्थ तो यह होता है कि हम प्रत्येक उस व्यक्ति की श्रेष्ठता को स्वीकार करें जिसको जीवन में कोई श्रेष्ठता और विशिष्टता प्राप्त हो।

वृद्धावस्थावाला व्यक्ति अपनी उम्र की दृष्टि से इसका हक़दार है कि उसका आदर किया जाए। जिस व्यक्ति को क़ुरआन से लगाव होता है और वह क़ुरआन के पठन-पाठन आदि के नियमों का ध्यान रखता है, वह न तो क़ुरआन के पढ़ने में उसके सौन्दर्य और गरिमा को क्षति पहुँचाता है और न वह उसका अर्थ लेने में कभी सत्य और न्याय की उपेक्षा करता है। ऐसा व्यक्ति भी हमारे लिए आदरणीय है। जितना हम क़ुरआन को महत्व दे रहे होंगे उतना ही अधिक हम क़ुरआन में व्यस्त रहनेवाले ऐसे लोगों का सम्मान करेंगे। इसी प्रकार वह शासक या

हाकिम भी श्रेष्ठ है जिसका शासन न्याय और इनसाफ़ के लिए होता है। अपने व्यक्तित्व की दृष्टि से ऐसे शासक मानव के लिए आदर्श होते हैं। उनका आज्ञापालन ही नहीं आदर और सम्मान भी आवश्यक है।

एकता

(1) हज़रत यहया-बिन-सईद ने हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि॰) से जब वे उनके साथ वलीद के पास जा रहे थे यह कहते हुए सुना कि नबी (सल्ल॰) ने अनसार को बहरैन की जागीर उनके नाम लिखने के लिए बुलाया तो अनसार ने कहा कि नहीं सिवाय यह कि हमारे भाई मुहाजिरीन को भी ऐसी ही जागीर प्रदान करें। आप (सल्ल॰) ने कहा, "अगर तुम्हें स्वीकार नहीं तो सब्र करना यहाँ तक कि मुझसे (हौज़े-कौसर पर) मिलो। क्योंकि मेरे बाद तुम्हारे मुक़ाबले में दूसरों को प्राथमिकता दी जाएगी।"

(हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अनसार को अपने भाई मुहाजिरीन से जो प्रेम था और उन्हें अपने मुहाजिर भाइयों की जितनी चिन्ता रहती थी उसका अन्दाज़ा अनसार के इस बयान से भली-भाँति किया जा सकता है। उन्हें यह स्वीकार नहीं हुआ कि मुहाजिरीन से हटकर उनको कोई जागीर या सम्पत्ति दी जाए। ऐसी क़ुरबानी और त्याग की मिसालें क़ौमों के इतिहास में नहीं मिलतीं।

नबी (सल्ल॰) के इस कथन का मतलब यह है कि ऐ अनसार! तुम्हारे अन्दर त्याग और बलिदान का जो गुण पाया जाता है उसे किसी दशा में भी कदापि न त्यागना। क़ौम और समाज की एकता के लिए आवश्यक है कि उसके हर वर्ग में त्याग की भावना पाई जाए। अगर प्रत्येक वर्ग में यह गुण न हो तो कम से कम उस वर्ग में तो यह गुण पाया जाना ही चाहिए जिसे किसी मरहले में नज़रअन्दाज़ किया जा रहा

हो। क्योंकि इसके बिना समुदाय की एकता और उसकी संगठन-शक्ति शेष नहीं रह सकती।

नबी (सल्ल॰) अनसार को वसीयत करते हैं कि दुनिया से मेरे चले जाने के बाद इसकी अधिक सम्भावना है कि तुम्हारे मुक़ाबले में दूसरों को प्राथमिकता दी जाए तो ऐसे अवसर पर तुम्हारा दिल न टूटे और तुम्हारा साहस बना रहे, तुम्हारी उपेक्षा की जाए तो इसके विरुद्ध तुम्हारी ओर से कोई प्रदर्शन (Agitation) नहीं होना चाहिए। जब आख़िरत में हौज़े-कौसर पर तुम मुझसे मिलोगे तो तुम्हारे दिल में कोई मलाल और शिकायत होगी भी तो वह दूर हो जाएगी। वास्तविक जीवन तो आख़िरत का जीवन ही है। तुम्हारे समक्ष वही रहे।

शूराइयत (विचार-विमर्श प्रणाली)

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जब तुम्हारे नेता और अधिकारी वे लोग हों जो तुममें सबसे अच्छे लोग हों, और तुम्हारे धनी लोग उदार व दानशील हों और तुम्हारे मामले परस्पर विचार-विमर्श से तय पाते हों तो उस समय धरती की पीठ तुम्हारे लिए उसके पेट से बेहतर होगी।" (हदीस : तिरमिज़ी)

व्याख्या : एक आदर्श राज्य उसी को कहेंगे जिसमें नेतृत्व और शासन के पद पर ऐसे लोग आसीन हों जो अपने चरित्र, नैतिक और वैचारिक गुणों की दृष्टि से सबमें श्रेष्ठ हों अन्यथा राज्य की बरबादी और तबाही निश्चित है। आदर्श समाज के लिए आवश्यक नहीं कि उस समाज में प्रत्येक व्यक्ति सम्पन्न हो। आदर्श (Ideal) समाज में धनी और ग़रीब हर प्रकार के लोग पाए जा सकते हैं। आदर्श समाज को जो चीज़ आदर्श बनाती है वह यह है कि उसके सम्पन्न लोग सिर्फ़ अपने हाल में मस्त नहीं रहते कि उन्हें दूसरों की चिन्ता ही न हो, बल्कि उन्हें निर्धनों और अभावग्रस्त लोगों का भी पूरा ध्यान रहता है। वे दानशील

होते हैं। दूसरों की आवश्यकताओं को पूरा करने से उन्हें आत्मिक सुख और आनन्द प्राप्त होता है। इसी को वे अपनी सम्पत्ति और वैभव का फल समझते हैं।

आदर्श समाज में बुरे और अपराधी लोग भी पाए जा सकते हैं, लेकिन वे स्वतन्त्र दनदनाते नहीं फिरते। समाज में वर्चस्व और प्रभुत्व सज्जनता और नेकी को प्राप्त होता है। बुराई बेक़ाबू नहीं बल्कि नियंत्रण में रहती है।

शासन हो या कोई अन्य संगठन, उसके स्थायित्व के लिए एकता, सहमति और वैचारिक सामंजस्य आवश्यक है। स्थायित्व के लिए आवश्यक है कि सामूहिक मामलों में दमनकारी अहंकार के बदले परामर्श और मंत्रणा-प्रणाली की व्यवस्था हो। मामले और महत्त्वपूर्ण बातें पारस्परिक विचार-विमर्श से तय की जाती हों। इस प्रकार समस्याओं के सभी पक्ष सामने आ जाते हैं। इस प्रकार फैसले में ग़लती की सम्भावना बहुत ही कम रह जाती है। फिर जिस फ़ैसले और निर्णय को अधिक लोगों का समर्थन प्राप्त होता है, उसका महत्त्व सभी की दृष्टि में बढ़ा हुआ होता है। इस प्रकार समाज में असन्तोष और किसी बिखराव के अवसर शेष नहीं रहते। ख़ुद नबी (सल्ल॰) को अल्लाह ने आदेश दिया था कि आप पेश आनेवाले मामलों और जटिल समस्याओं के सम्बन्ध में मोमिनों से विचार-विमर्श कर लिया करें। (क़ुरआन 3:159)

मुसलमानों में वे सभी गुण पाए जाते हों जिनका उल्लेख इस हदीस में किया गया है तो फिर धरती की पीठ उसके पेट से बेहतर है। अर्थात् ऐसे समाज और ऐसे राज्य में जीवन-यापन करना हर दृष्टि से शुभ है। अन्यथा धरती की पीठ के मुक़ाबले में उसका पेट अर्थात् ऐसे समाज के जीवन के मुक़ाबले में मृत्यु ही को अच्छा कहा जाएगा।

शासन-व्यवस्था

बैअ़त (वचन-बद्धता)

(1) हज़रत उबादा-बिन-सामित (रज़ि॰) बयान करते हैं कि हमने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से ख़ुशी और नाख़ुशी हर हाल में सुनने और और आज्ञापालन करने पर बैअ़त की थी और इस बात पर कि हम ख़िलाफ़त के मामले में किसी हक़दार व्यक्ति से कोई झगड़ा नहीं करेंगे और जहाँ भी होंगे सत्य को क़ायम रखेंगे या सत्य ही कहेंगे और अल्लाह के मामले में किसी निन्दक की निन्दा से हम डरेंगे नहीं। (हदीस : बुख़ारी)

उल्लेखकर्त्ता को सन्देह है कि आपने "सत्य को क़ायम रखेंगे" या "सत्य ही कहेंगे" कहा।

व्याख्या : कोई भी शासन-व्यवस्था आदेशों को सुनने और उनका अनुपालन करने के अभाव में स्थिर नहीं रह सकती। इसलिए नबी (सल्ल॰) ने आदरणीय सहाबा (रज़ि॰) से सुनने और आज्ञापालन करने की बैअ़त ली थी कि वे हर हाल में शासनाधिकारी का आदेश सुनेंगे और उसे व्यवहार में लाएँगे। अधिकारी या अमीर की अवज्ञा से अपने को दूर रखेंगे। हालात जैसे भी हों, ख़ुशी के या नाख़ुशी के, सुनने और आज्ञापालन करने के भाव में कोई अन्तर नहीं आने देंगे। ख़िलाफ़त के योग्य जो व्यक्ति भी हो उसकी राह में रुकावट खड़ी नहीं करेंगे। उसकी ख़िलाफ़त को दिल से स्वीकार करेंगे। जहाँ और जिस हाल में होंगे सत्य की स्थापना ही उनका मूल लक्ष्य होगा और मुख से सत्य ही कहेंगे।

अन्तिम चीज़ जिसका बैअ्त में उल्लेख है, वह यह है कि अल्लाह के मामले में किसी निन्दक की परवाह नहीं करेंगे। अर्थात् किसी की निन्दा के डर से अल्लाह का आज्ञापालन और उसके दीन के अनुपालन से विमुख हों, ऐसा नहीं होगा।

इस्लामी राज्य में अमीर या ख़लीफ़ा को केन्द्रीय स्थान प्राप्त होता है। उसके एकत्व को हर प्रकार के बिखराव से सुरक्षित रखना ईमानवालों का कर्त्तव्य होता है। दृष्टि में सदैव सत्य की स्थापना का लक्ष्य हो। ख़लीफ़ा या अमीर से बैअ्त मात्र सत्य की स्थापना के लिए ही करनी चाहिए। इसका उत्प्रेरक कोई भौतिक लाभ कदापि नहीं होना चाहिए। अतएव एक हदीस में आया है कि तीन व्यक्ति ऐसे हैं जिनसे क़ियामत के दिन अल्लाह बात करनी नहीं चाहेगा और न उन्हें पवित्रता प्रदान करेगा। उनके लिए दुखद यातना निश्चित है। उनमें से एक "वह व्यक्ति है जो तात्कालिक अधिकारी से सिर्फ़ सांसारिक लाभ के लिए बैअ्त करता है। यदि उसने उसके आशानुकूल कुछ दे दिया तो उसने उसके साथ वफ़ादारी की नीति अपनाई अन्यथा उसने वफ़ादारी से हाथ खींच लिया। (हदीस : बुख़ारी)

अमीर के आज्ञापालन और वफ़ादारी का मतलब यह कदापि नहीं होता कि आदमी सत्य बात न कहे। हज़रत उमर (रज़ि॰) जैसे ख़लीफ़ा की नीति के विषय में सन्देह हुआ तो मिम्बर पर उन्हें टोक दिया गया और उन्होंने इसे बुरा नहीं माना।

शासन के अधिकार और कर्त्तव्य

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिस किसी ने मेरी आज्ञा का पालन किया, उसने अल्लाह की आज्ञा का पालन किया और जिसने मेरी अवज्ञा की उसने अल्लाह की अवज्ञा की। और जिस किसी ने अपने अमीर की आज्ञा का पालन किया उसने वास्तव में मेरी आज्ञा का

पालन किया और जिसने अमीर की अवज्ञा की उसने वास्तव में मेरी अवज्ञा की। इमाम (शासनाधिकारी) ढाल के समान है जिसके नेतृत्व में (जिसकी सत्ता की छत्र-छाया में) युद्ध किया जाता है और जिसके द्वारा सुरक्षा और शान्ति प्राप्त की जाती है। अतः अगर वह (शासनाधिकारी) अल्लाह से डरते हुए कार्य संभाले तो इसके कारण इसका बड़ा बदला मिलेगा, और यदि अल्लाह से डरते हुए शासन-कार्य न सँभाले तो इसका गुनाह उसकी गरदन पर होगा।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् अमीर या शासक का यह हक़ है कि उसका आदेश सुना जाए और उसके आज्ञापालन को अपना कर्तव्य समझा जाए। अमीर के बिना किसी संगठित शक्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती और संगठित शक्ति के बिना कोई भी समुदाय या राष्ट्र हो उसका अस्तित्व हमेशा ख़तरे में रहेगा। कोई भी लड़ाई इमाम या अमीर या शासक के बिना नहीं लड़ी जा सकती। शक्तिशाली अमीर जिसको जनता का समर्थन प्राप्त होता है वास्तव में एक सुदृढ़ और स्थायी राज्य का प्रतीक होता है। शासक का आज्ञापालन कितना अधिक महत्त्व रखता है इसका अनुमान इससे कर सकते हैं कि शासक के आज्ञापालन को नबी (सल्ल॰) अपना आज्ञापालन और उसकी अवज्ञा को अपनी अवज्ञा ठहरा रहे हैं। और यह स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि रसूल का आज्ञापालन वास्तव में अल्लाह का आज्ञापालन है और उसकी अवज्ञा अल्लाह की अवज्ञा है। इसे कोई हल्की बात न जाने।

अमीर का भी कर्त्तव्य होता है कि वह अपने राज्य में हमेशा न्याय को अपने समक्ष रखे। अन्याय एवं अत्याचार को वह किसी दशा में भी स्वीकार न करे। अल्लाह का डर और उसकी पकड़ का भय उसके दिल में सदैव बना रहे।

(2) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "सुनना और आज्ञापालन करना (अर्थात् अमीर के आदेश को सुनना और उसका आज्ञापालन करना) प्रत्येक दशा में मुस्लिम व्यक्ति पर अनिवार्य है। चाहे (आदेश) पसन्द हो या नापसन्द, जब तक किसी गुनाह का आदेश न दिया जाए, और जब गुनाह का आदेश दिया जाए तो न सुनना है और न आज्ञापालन करना।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् अमीर के आदेश को सुनने और उसका पालन करने में कदापि कमी नहीं करनी चाहिए। शासक का आदेश पसन्द हो या नापसन्द, हर हाल में उसका पालन करना है। एक मुस्लिम व्यक्ति का कर्त्तव्य यही होता है। हाँ, अमीर यदि गुनाह का आदेश देने लगे तो गुनाह में उसके आदेश का पालन नहीं किया जाएगा। बुख़ारी और मुस्लिम की एक हदीस में है कि "गुनाह में आदेश का पालन वैध नहीं। आज्ञापालन तो केवल भलाई और नेकी के कामों में वैध है।"

गुनाह के कामों में अमीर के आदेश का पालन न करने का यह अर्थ नहीं होता कि उसके विरुद्ध विद्रोह किया जाए और उसके विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी जाए। लड़ाई तो अन्तिम उपाय है और उसकी कुछ प्रमुख शर्तें हैं। उन शर्तों को पूरा किए बिना युद्ध करना विनाश के सिवा और कुछ नहीं हो सकता।

(3) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "सत्ता को वास्तव में धरती में अल्लाह की छाया की हैसियत प्राप्त है। उसके बन्दों में से प्रत्येक पीड़ित उसकी शरण लेता है। जब सत्ताधारी न्याय करता है तो वह अल्लाह के यहाँ इसका बदला पाने का अधिकारी होता है और प्रजा के लिए अनिवार्य हो जाता है कि वह (अल्लाह के प्रति) आभार प्रकट करे, और इसके विपरीत जब वह अन्याय और अत्याचार करता है

तो वह गुनाह का बोझ अपने सिर लेता है। प्रजा के लिए उस समय आवश्यक होता है कि वह धैर्य से काम ले।" (हदीस : बैहक़ी)

व्याख्या : जिस प्रकार छाया आदमी को सूरज के ताप से बचाती है, ठीक उसी प्रकार इस्लामी सत्ता की हैसियत उस छाया की-सी है जो अल्लाह तुम्हारे आराम और शान्ति के लिए प्रदान करता है। इस सत्ता का मूल उद्देश्य यह होता है कि लोगों की रक्षा हो। उत्पीड़ित की फ़रियाद सुनी जाए और उसके साथ न्याय हो और अत्याचारी के अत्याचार और उत्पीड़न से उसको मुक्त किया जाए। जो सत्ता उत्पीड़ित को शरण न दे सके और जिसकी छाया में अल्लाह के बन्दों को आराम और चैन प्राप्त न हो उसका अल्लाह की निगाह में कोई मूल्य नहीं हो सकता। उसकी हैसियत लोगों के लिए सर्वथा एक यातना की है। उससे अल्लाह के बन्दों को जितनी जल्द छुटकारा मिल सके, अच्छा है।

सत्ताधारी व्यक्ति की यह ज़िम्मेदारी होती है कि वह अपने अधिकार-क्षेत्र में न्याय की स्थापना करे, जनता पर किसी प्रकार का अत्याचार न होने दे। अगर वह अपनी यह ज़िम्मेदारी पूरी करता है तो वह निश्चय ही अल्लाह के यहाँ इसके प्रतिदान का पात्र है। इस स्थिति में प्रजा का भी कर्त्तव्य होता है कि उसके मूल्य को समझे। यह उसके एक जीवन्त समुदाय होने का लक्षण होगा।

सत्ताधारी यदि अपने कर्त्तव्य को नहीं समझता और अल्लाह के बन्दों पर अन्याय और अत्याचार करता है तो वास्तव में वह स्वयं अपना बुरा करता है। वह अपने सिर पर गुनाह का बोझ उठाता है। अल्लाह की पकड़ से वह किसी प्रकार बच नहीं सकता। ऐसी स्थिति में जनता का कर्त्तव्य है कि वह अनुशासन (Discipline) को बनाए रखे और धैर्य से काम ले। अल्लाह निश्चय ही अत्याचार को सहन नहीं करता। वह उनके लिए मुक्ति की कोई न कोई राह अवश्य निकालेगा।

(4) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "उसकी क़सम जिसके हाथ में मुहम्मद के प्राण हैं, धरती पर जो कोई भी मोमिन (ईमानवाला) व्यक्ति है, समस्त लोगों में उससे सबसे निकट मैं हूँ। अतः तुममें से जो कोई क़र्ज़ या बाल-बच्चे छोड़ जाए, मैं उसका वली (अभिभावक) हूँ (अर्थात् क़र्ज़ अदा करना और उसके बच्चों का पालन-पोषण मेरे ज़िम्मे है)। और उसमें से जो कोई माल और दौलत छोड़ जाए तो वह उसके वारिस को मिलेगा, जो भी वारिस हो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : एक उल्लेख में नबी (सल्ल॰) ने अपने बारे में यह भी कहा है, "मुझे हर मोमिन व्यक्ति से उससे अधिक सम्बन्ध है जितना उसको अपने आप से सम्बन्ध प्राप्त है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

इससे मालूम हुआ कि हुकूमत की ज़िम्मेदारी है कि वह किसी को भी असहाय दशा में न छोड़े। इस्लामी राज्य में हर एक को यह विश्वास होना चाहिए कि उसकी समस्याएँ केवल उसकी नहीं, बल्कि वे पूरे समुदाय की समस्याएँ हैं। यदि वह क़र्ज़दार होकर मरता है तो हुकूमत उस क़र्ज़ को अदा करेगी। अगर वह अपने पीछे छोटे और कमज़ोर बच्चे छोड़ता है जिनकी देखभाल करनेवाला कोई नहीं तो हुकूमत का संरक्षण उन्हें प्राप्त होगा। इस्लामी हुकूमत वही है जिसमें मरनेवाले को मरते समय यह चिन्ता न हो कि उसके बाद उसके बच्चों का क्या होगा।

अगर मरनेवाला अपने पीछे धन और सम्पत्ति छोड़कर जाता है तो यह धन और सम्पत्ति उसके वारिसों को मिलेगी। हुकूमत को उसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं। यह है वह न्यायपरक शासन-व्यवस्था जिसकी सामान्य स्थिति में कल्पना भी नहीं की जा सकती।

(5) हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि मैंने अपने इस घर में अल्लाह के रसूल (रज़ि॰) को यह कहते हुए सुना, "ऐ अल्लाह,

जो कोई व्यक्ति मेरी उम्मत (समुदाय) का हाकिम हो और वह लोगों के साथ कठोर व्यवहार करे, तो तू भी उसके साथ कठोरतापूर्ण व्यवहार कर, और जो कोई व्यक्ति मेरी उम्मत का हाकिम हो और वह लोगों के साथ नरमी की नीति अपनाए तो तू भी उसके साथ नरमी कर।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि हुकूमत को अपनी प्रजा के लिए सर्वथा दया रूप होना चाहिए। कठोरता उसके लिए शोभनीय नहीं।

जिनका व्यवहार जनता के साथ कठोरता और निष्ठुरता का होता है, ऐसे शासकों से नबी (सल्ल॰) कितने अप्रसन्न हैं वह इस हदीस से स्पष्ट है।

नागरिकता

(1) हज़रत तमीम दारी (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने तीन बार कहा, "दीन नसीहत (शुभ चिन्ता) है।" हमने कहा कि किसकी? कहा, "अल्लाह की, उसकी किताब की, उसके रसूल की, मुसलमानों के इमामों की और उनमें सबकी।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यह एक अत्यन्त संग्राहक हदीस है। इसपर गहन विचार करने की आवश्यकता है। नसीहत शब्द का प्रयोग अरबी भाषा में खोट, मिलावट और ख़ियानत के विलोम के रूप में होता है। 'नसीहतुल-अस्ल' कहते हैं जब शहद को मोम से पूर्णतः साफ़ कर दिया जाए। नसीहत का अर्थ है निष्ठापूर्वक शुभेक्षा और वफ़ादारी। अल्लाह के साथ शुभेक्षा का अर्थ यह है कि बन्दा अपने और अल्लाह के मध्य कोई खोट न रहने दे। वह अल्लाह के तेजस्व और सौन्दर्य गुण को स्वीकार करे। उसके अधिकारों का आदर करे। तत्परता के साथ उसके आदेशों का पालन करे और उसने जिन बातों से रोका है उनसे बचे। अल्लाह की किताब के साथ शुभचिन्ता तो यह है कि नियमानुसार आदर के साथ उसे पढ़ा जाए। उसकी शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार में कार्यरत रहें। उसके आदेशों का पालन करें और सम्पूर्ण जगत् को उसके प्रकाश की ओर आमंत्रित करें।

रसूल के प्रति शुभचिन्ता और ख़ैरख़ाही यह है कि उस पर ईमान लाएँ। उसके साथियों, सहयोगियों और उसके परिवार-जनों से प्रेम करें। उनका सदैव आदर करें और उसके लाए हुए दीन (धर्म) की स्थापना में सक्रिय रहें।

मुसलमानों के इमामों या शासकों के प्रति ख़ैरख़ाही यह है कि उनकी आज्ञा का पालन किया जाए। उनके आदेशों के सुनने और मानने में कोई कमी न होने पाए। कोई ऐसी नीति न अपनाएँ जिससे सत्ता की स्थिरता को क्षति पहुँच सकती हो।

समान्य मुसलमानों के प्रति ख़ैरख़ाही यह है कि उनमें ज्ञान का प्रचार किया जाए। उन्हें कष्ट और तकलीफ़ से बचाएँ। उनकी इज़्ज़त व प्रतिष्ठा को अपनी इज़्ज़त और प्रतिष्ठा समझें। उनके ऐबों और दोषों पर परदा डालें। उनकी भलाई का यदि ध्यान रखा जाए तो समाज में परनिन्दा, चुग़ली, ईर्ष्या और अहंकार आदि बीमारियाँ कभी जन्म नहीं ले सकतीं।

शुभचिंता और ख़ैरख़ाही नबियों की दावत का विशेष अंग रही है। हज़रत नूह (अलैहि॰) हों या हज़रत हूद (अलैहि॰) और हज़रत सालेह (अलैहि॰), सभी ने इसे पूर्णतः स्पष्ट किया है कि वे अपनी क़ौम के शुभचिन्तक हैं। क़ौम पर यातना आने के अवसर पर हज़रत सालेह क़ौम को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि "ऐ मेरी क़ौम के लोगो; मैं तो तुम्हें अपने रब का सन्देश पहुँचा चुका और मैंने तुम्हारा भला चाहा, लेकिन तुम्हें तो अपने शुभचिंतक पसन्द ही नहीं आते।"

(क़ुरआन, 7:79)

कारणवश यह तो सम्भव है कि कुछ कार्य छूट जाएँ या स्थगित हो जाएँ। उदाहरणार्थ, कोई हज न कर सके या जिहाद में सम्मिलित न हो, किन्तु शुभचिन्ता की किसी भी स्थिति में उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतएव क़ुरआन में आया है : "न तो कमज़ोरों के लिए कोई दोष की बात है और न बीमारों के लिए और न उन लोगों के लिए जिन्हें ख़र्च करने के लिए कुछ प्राप्त नहीं, जबकि वे अल्लाह और उसके रसूल के प्रति शुभचिन्तक और निष्ठावान हों। उत्तमकारों पर आरोप की कोई गुंजाइश नहीं है। अल्लाह तो बड़ा ही क्षमाशील, अत्यन्त दयावन्त है।"

(क़ुरआन 9:91)

(2) हज़रत उबादा-बिन-सामित (रज़ि॰) कहते हैं कि हम लोगों ने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से इस पर बैअत की कि सुनेंगे और आज्ञापालन करेंगे, चाहे तंगी की हालत हो या सम्पन्नता की, ख़ुशी की हालत में भी और अप्रिय दशा में भी, और इस हालत में भी कि हमारे मुक़ाबले में दूसरों को प्राथमिकता दी जा रही हो और इस बात पर कि जो व्यक्ति सत्ताधारी होंगे उनसे सत्ता छीनने का प्रयास नहीं करेंगे सिवाय इस स्थिति में कि सत्ताधारी से खुल्लम-खुल्ला कुफ़्र का प्रदर्शन हो रहा हो। उस समय अल्लाह की ओर से उसके लिए हमारे पास तर्क होगा और इसपर (हमने आपसे बैअत की अर्थात् वचनबद्ध हुए) कि हम जहाँ कहीं भी होंगे, सत्य कहेंगे। अल्लाह के विषय में किसी निन्दक की निन्दा से नहीं डरेंगे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि इस्लामी राज्य के नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे अल्लाह के अनुग्रह का मूल्य समझें। अराजकता, उपद्रव, फ़साद और बिगाड़ के मुक़ाबले में शासन-व्यवस्था एक बड़ी चीज़ और अल्लाह का अनुग्रह है। इसलिए शासन-व्यवस्था को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाने से अपने आपको सदैव दूर रखें। सुनने और आज्ञापालन को अपना प्रथम कर्त्तव्य समझें। उत्तेजना के अवसर आ सकते हैं, ऐसे अवसरों पर कदापि उत्तेजित न हों। यथासंभव अनुशासन को बनाए रखें और इसके लिए बड़ी से बड़ी क़ुरबानी देने के लिए तैयार रहें। अगर किसी वर्ग विशेष के लोगों के साथ कुछ अन्याय भी हो रहा हो और उनके अधिकारों की उपेक्षा की जा रही हो तो भी बड़े और महान उद्देश्य के लिए उसकी परवाह न करें और कभी भी विद्रोहात्मक नीति न अपनाएँ। यह और बात है कि असत्य और अधर्म ही से उनका पाला पड़ जाए। समझौते की कोई गुंजाइश ही बाक़ी न रहे। किन्तु इसके लिए भी कुछ नियम और मर्यादाएँ हैं जिनका ध्यान रखना आवश्यक है। याद रहे, जिस कार्यवाही का परिणाम मात्र रक्तपात और

उपद्रव और बिगाड़ हो, उस कार्यवाही का समर्थन नहीं किया जा सकता।

(3) हज़रत उम्मे-हुसैन से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "अगर किसी नकटे और कनकटे ग़ुलाम को भी तुम्हारा अमीर (शासक) बना दिया जाए और वह अल्लाह की किताब के अनुसार तुमपर शासन करे तो तुम उसकी सुनो और उसकी आज्ञा का पालन करो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् कोई कुरूप ग़ुलाम ही क्यों न तुम्हारा अमीर (अधिकारी) हो, तुम्हारा कर्त्तव्य है कि उसकी आज्ञा का पालन करने से न बचो। तुम उसके असुन्दर रूप को नहीं, उसके पद को देखो और अपना कर्त्तव्य पूरा करो। अधिकारी का भी कर्त्तव्य है कि वह अल्लाह की किताब के अनुसार शासन करे। अर्थात् राज्य में न्याय की स्थापना करे। नमाज़ क़ायम करे और ज़कात की व्यवस्था को सुदृढ़ बनाए ताकि ज़रूरतमन्दों की ज़रूरतें पूरी हो सकें।

(4) हज़रत नवास-बिन-सिमआन (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "किसी सृष्ट-जीव (मनुष्य) के किसी ऐसे आदेश का पालन वैध नहीं जिससे सृष्टिकर्त्ता की अवज्ञा होती हो।" (हदीस : शरहुस्सुन्नह्)

व्याख्या : यह एक महत्त्वपूर्ण हदीस है। इसमें इस्लाम के एक मौलिक सिद्धान्त का उल्लेख किया गया है और वह यह है कि किसी का आज्ञापालन और आदेशानुसरण उसी सीमा तक वैध है जब तक उससे अल्लाह की अवज्ञा न होती हो। शासक के लिए ऐसा आदेश जारी करना वैध नहीं जिसपर चलना स्पष्टतः अल्लाह की अवज्ञा हो। मनुष्य सृष्टिकर्त्ता नहीं, वह अल्लाह का सृष्ट-जीव और ग़ुलाम है। अल्लाह ही उसे पालता और बढ़ाता है। किसी सृष्ट-जीव की अपेक्षा और आदेश को सृष्टिकर्त्ता की अपेक्षा और उसके आदेश के मुक़ाबले में

प्राथमिकता देना न्याय ही के नहीं, बल्कि बुद्धि और विवेक के भी विरुद्ध है।

(5) हज़रत कअब-बिन-उजूरा (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "मैं तुम्हारे लिए मूर्ख और अधम लोगों की सत्ता से अल्लाह की पनाह माँगता हूँ।" कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, यह क्या है? (अर्थात् यह सत्ता कब और कैसे स्थापित होगी) आप (सल्ल०) ने कहा, "ये अमीर (अधिकारी) मेरे बाद होंगे। जो व्यक्ति उनके पास जाए और उनके झूठ में उनका समर्थन करे और उनकी अन्यायपूर्ण कार्यवाहियों में उनको अपना सहयोग दे तो ऐसे लोगों का मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं और न मेरा उनसे कोई सम्बन्ध है। और न वे (क़ियामत में) हौज़े-कौसर पर मेरे पास आएँगे। और जो व्यक्ति न तो उन (ऐसे अधिकारियों) के पास जाए और न उनके झूठ में उनका समर्थन करे और न उनके अन्यायपूर्ण कामों में उन्हें अपना सहयोग दे तो ऐसे ही लोग हैं जो मेरे हैं और मैं उनका हूँ और वे हौज़ पर मेरे पास आएँगे।" (हदीस : तिरमिज़ी, नसई)

व्याख्या : इस हदीस में यह ख़बर दी गई है कि नबी (सल्ल०) के बाद उम्मत में ऐसे शासक भी होंगे जो बुद्धि और विवेक से वंचित होंगे। वे मंद-बुद्धि के होंगे। सज्जनता की अपेक्षा अधमता उनके यहाँ अधिक पाई जाएगी। वे लोगों के लिए वास्तव में कड़ी परीक्षा होंगे। कुछ भौतिकवादी अपने निजी स्वार्थ के लिए उनके पास पहुँचेंगे और उनकी हाँ में हाँ मिलाएँगे। उनकी ग़लत नीति को उचित ठहराएँगे। उनके झूठ को सत्य सिद्ध करने में अपनी सारी बैद्धिक क्षमता लगा देंगे। वे उनके अन्यायपूर्ण व्यवहार में उनके सहायक होंगे। नबी (सल्ल०) कहते हैं कि उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, वे मेरी शिक्षा और मार्गदर्शन से बहुत दूर जा पड़े होंगे।

इसके विपरीत उस समय जिन लोगों की नीति यह नहीं होगी, न तो वे ऐसे शासकों के पास अपनी दुनिया बनाने और उनका सामीप्य प्राप्त करने के उद्देश्य से जाएँगे और न उनके झूठ को सच कहेंगे और न उनके अन्याय में उनका साथ देंगे, उन ही लोगों के विषय में नबी (सल्ल॰) कहते हैं कि वे मुझसे सम्बन्ध रखते होंगे। मेरी लाई हुई शिक्षा की मर्यादा का ध्यान रखनेवाले वास्तव में यही लोग होंगे। क़ियामत के दिन यही लोग मुझसे मिलेंगे और मेरे हौज़े-कौसर से प्यास बुझाएँगे।

(6) हज़रत अलक़मा-बिन-वायल हज़्रमी अपने बाप से रिवायत करते हैं कि उन्होंने कहा कि सलमा-बिन-यज़ीद जोफ़ी (रज़ि॰) ने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से पूछा कि ऐ अल्लाह के नबी, अगर हम पर ऐसे अधिकारी नियुक्त हों जो अपना हक़ हमसे माँगें और हमारा हक़ हमें न दें तो आप हमें क्या आदेश देते हैं? नबी (सल्ल॰) ने उत्तर नहीं दिया। फिर पूछा, फिर जवाब न दिया। फिर दूसरी या तीसरी बार पूछा तो अशअस-बिन-क़ैस ने सलमा को खींच लिया और कहा कि सुनो और आज्ञापालन करो। उनपर उनके कर्मों का बोझ है और तुमपर तुम्हारे कर्मों का बोझ है।

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : जहाँ प्रजा का कर्त्तव्य होता है कि वह अधिकारियों के हक़ का ख़याल रखे वहीं अधिकारियों की भी ज़िम्मेदारी होती है कि वे प्रजा के हक़ अदा करने में किसी प्रकार की कमी न करें। लेकिन ऐसे अधिकारी हो सकते हैं जो अपना हक़ तो माँगें लेकिन प्रजा के बारे में उनका जो दायित्व होता है उसे वे एकदम भूल जाएँ। स्पष्ट है यह एक अत्यन्त दुखद स्थिति होगी। हज़रत सलमा-बिन-यज़ीद जोफ़ी (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) से पूछते हैं कि जब ऐसी स्थिति सामने आ जाए तो मुसलमानों को क्या करना चाहिए? अर्थात् क्या उस समय इसकी वैधता नहीं हो जाती कि ऐसे अधिकारियों के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठा

लिया जाए और उनके आज्ञापालन से हाथ खींच लिया जाए? नबी (सल्ल०) इस प्रश्न के उत्तर में चुप रहे। अन्ततः प्रश्नकर्ता सहाबी को एक दूसरे सहाबी अशअस-बिन-क़ैस (रज़ि०) ने अपनी ओर खींच लिया। मतलब यह था कि नबी की संगत में रहकर दीन के मिज़ाज व उसकी प्रकृति को समझने में यदि तुम असमर्थ रहे तो सुन लो। ऐसी दुखद स्थिति का अगर सामना करना पड़े फिर भी तुम्हारे लिए अनिवार्य है कि तुम आदेशों को सुनो और आज्ञा का पालन करो। तुम अपने कर्मों के ज़िम्मेदार हो, तुम्हें अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहिए। अधिकारी अपने कर्मों के ज़िम्मेदार हैं। अल्लाह के यहाँ उनके कर्मों के तुम उत्तरदायी नहीं हो।

इस हदीस से सिद्ध होता है कि इस्लाम अत्यन्त शन्तिप्रिय धर्म है। सलाह और भलाई, त्याग और बलिदान और दूरदर्शिता को इस्लाम जो इतना महत्त्व देता है उसके मर्म और रहस्यों को समझने की आवश्यकता है।

(7) हज़रत अबू-मरयम अज़दी बयान करते हैं कि मैं मुआविया (रज़ि०) के पास गया। उन्होंने कहा कि अच्छा हुआ तुम हमारे पास आए ऐ अमुक व्यक्ति के पिता! (यह अरबवासियों का मुहावरा है)। मैंने कहा कि मैंने एक हदीस सुनी है जिससे आपको अवगत करा रहा हूँ। मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना है : "जिस किसी को प्रतापवान अल्लाह मुसलमानों के किसी काम पर नियुक्त करे, फिर वह लोगों की आवश्यकताएँ पूरी न करे जबकि वे मुहताज हों और दरिद्रता की स्थिति में हों तो अल्लाह तआला उस (ज़िम्मेदार) की हाजत और ज़रूरत को पूरा न करेगा और न उसकी दरिद्रता को दूर करेगा।" यह सुनकर हज़रत मुआविया (रज़ि०) ने एक व्यक्ति को नियुक्त किया कि वह लोगों की आवश्यकताओं पर नज़र रखे। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : मालूम हुआ कि अधिकारियों का अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वे ज़रूरतमंदों की ज़रूरतें पूरी करने के प्रति कदापि असावधान न हों। किसी भी राज्य की जनता का यह हक़ है कि सरकार उसकी आवश्यकताओं और उसकी परेशानियों को दूर करने की चिन्ता करे। अन्यथा अल्लाह के प्रकोप से शासक बच नहीं सकते। अल्लाह को भी इसकी कोई परवाह न होगी कि वे किस हाल में हैं और किस कठिनाई में पड़े हुए हैं। वह उन्हें उनकी कठिनाइयों से कदापि मुक्त न करेगा।

अहले-ज़िम्मा या ग़ैर-मुस्लिमों के अधिकार

(1) हज़रत अबू-बकरह (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिस किसी ने अकारण किसी ऐसे व्यक्ति की हत्या कर दी जिससे अनुबंध और समझौता हुआ हो, तो अल्लाह उसके लिए जन्नत निषिद्ध कर देगा।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस्लामी हुकूमत का जिससे समझौता हो उसे मुआहिद कहते हैं। जो व्यक्ति इस्लामी राज्य के अधिक्षेत्र (दारुल-इस्लाम) में रहता है, हुकूमत के नियमों का पालन करता है, जिसे पारिभाषिक रूप में ज़िम्मी कहते हैं, उसकी हैसियत भी मुआहिद की है, और मुआहिद में वे लोग भी शामिल हैं जो यद्यपि दारुल-इस्लाम में नहीं रहते लेकिन उन्होंने इस्लामी हुकूमत से संधि कर रखी है कि वे इस्लामी हुकूमत के विरुद्ध किसी को अपना सहयोग नहीं देंगे और न इस्लामी हुकूमत के विरुद्ध युद्ध करेंगे।

मुआहिद के साथ जो समझौता हुआ हो उसका पालन करना ज़रूरी है। अब अगर कोई मुआहिद को अकारण क़त्ल कर देता है तो वह अल्लाह की कृपा का नहीं, प्रकोप का पात्र हो जाता है। सहीह बुख़ारी में हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति किसी मुआहिद को क़त्ल करेगा वह जन्नत की सुगन्ध भी न पा सकेगा, जबकि जन्नत की सुगन्ध चालीस

बरस की दूरी से महसूस होती है। कुछ हदीसों में पाँच सौ बरस के शब्द आए हैं। वास्तव में इन संख्याओं से अभिप्रेत किसी समय-सीमा का निर्धारण नहीं है बल्कि इससे अभिप्रेत दूरी की दीर्घता पर बल देना है। यह अन्तर व्यक्तियों के कर्मों और पदों के पारस्परिक अन्तर के कारण भी पाया जा सकता है। जिनके पद अत्यन्त उच्च होते हैं, उन्हें दूर के फ़ासलों से भी जन्नत की ख़ुशबू आने लगती है।

(2) सफ़वान-बिन-सुलैम अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के सहाबा के कुछ बेटों से रिवायत करते हैं कि उन्होंने अपने बापों से सुना कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिसने उस (ग़ैर-मुस्लिम) पर अत्याचार किया जिससे समझौता या संधि हो चुकी हो या उसके अधिकारों को क्षति पहुँचाई, या उसकी शक्ति से अधिक उसपर ज़िम्मेदारी का बोझ डाला या बिना उसकी इच्छा के कोई चीज़ उसससे ले ली, तो मैं क़ियामत के दिन ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध प्रदर्शन करूँगा।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : यह हदीस अत्यन्त स्पष्ट है। मालूम हुआ कि मुआहिद हो या ज़िम्मी, उसके अधिकारों की सुरक्षा अनिवार्य है। न तो उसके अधिकारों में कोई कमी की जा सकती है और न उसकी शक्ति से बढ़कर उसपर कोई बोझ डाला जा सकता है। यहाँ तक कि उसकी इच्छा और ख़ुशी के बिना उसकी कोई चीज़ भी नहीं ली जा सकती।

(3) हज़रत हिलाल, सक़ीफ़ (नामक क़बीला) के एक व्यक्ति और वे जुहैना के एक व्यक्ति से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "शायद तुम एक क़ौम से लड़ोगे। फिर तुम्हें उस पर प्रभुत्त्व प्राप्त होगा। फिर उस क़ौम के लोग अपने धन के द्वारा ख़ुद को और अपनी औलाद को तुमसे बचा लेंगे। (सईद की रिवायत में है) फिर वे एक निश्चित धन पर तुमसे विधिवत

समझौता कर लेंगे तो निश्चित धन से अधिक कदापि उनसे
लेना, क्योंकि यह तुम्हरे लिए वैध न होगा।" (हदीस : अबू-दाऊद

व्याख्या : इस हदीस में ज़िम्मियों के अधिकारों की रक्षा की ताकी
की गई है। वे जिज़या इसी लिए तो देते हैं कि उनके प्राण और उन
धन की रक्षा की जाएगी। उनके साथ किसी प्रकार का अत्याचार वैध
होगा। उनसे निर्धारित राशि से अधिक वुसूल करने की कोशिश कदा
वैध नहीं है।

वास्तव में ग़ैर-मुस्लिम प्रजा तीन प्रकार की हो सकती है। ए
प्रकार के ग़ैर-मुस्लिम वे हैं जो किसी सुलह या संधि के द्वारा इस्ला
शासन के अधीन हो गए हों। दूसरे प्रकार के ग़ैर-मुस्लिम वे हैं जो यु
में पराजित हो गए हों। तीसरे प्रकार के ग़ैर-मुस्लिम वे हैं जो युद्ध औ
सुलह के अलावा किसी और रूप से इस्लामी राज्य में सम्मिलित हुए हो

जो ग़ैर-मुस्लिम युद्ध के बिना या युद्ध के दौरान अधीनता औ
आज्ञापालन स्वीकार कर लें और इस्लामी राज्य से कुछ शर्तें तय कर
ऐसी स्थिति में इस्लामी हुकूमत का कर्त्तव्य है कि वह उन शर्तों का पू
ध्यान रखे और उनसे बाल बराबर भी अलग न हटे।

जो लोग अन्त तक युद्ध से हटे नहीं और मुसलमानों से युद्ध क
रहे, यहाँ तक कि खुली पराजय के बाद ही हथियार डाले हों, इस प्रक
के पराजित और अधीन लोगों की हैसियत ज़िम्मी की होती है। ज़िम्मि
को इस्लाम ने जो अधिकार प्रदान किए हैं वे अत्यन्त उदारतापूर्ण
उनसे एक प्रकार का कर लिया जाएगा जिसे 'जिज़या' कहते हैं।
जिज़या उस संरक्षण का शुल्क होता है जो ग़ैर-मुस्लिमों को इस्ला
शासन के द्वारा प्राप्त होता है और यह शुल्क भी समर्थ और वयर
पुरुषों से ही लिया जाता है। यह कोई जुर्माना या दण्ड-राशि नहीं
अगर हुकूमत किसी समय उनकी सुरक्षा में अपने को असमर्थ पाएगी
जिज़या वापस कर दिया जाएगा। इसके विपरीत ज़कात समर्थ मुस्लि

पुरुष और नारी दोनों ही से ली जाती है और उसकी दर भी जिज़या से कहीं अधिक है।

ज़िम्मी के प्राण और उसके धन की रक्षा करना इस्लामी राज्य का कर्त्तव्य होता है। राज्याधिकारी या मुसलमानों के लिए यह वैध न होगा कि वे ज़िम्मियों की सम्पत्ति पर क़ब्ज़ा करें या उनको अपना ग़ुलाम बनाएँ। वे अपनी भूमि के मालिक होंगे और उनके बाद उनकी मिल्कियत उनके वारिसों या उत्तराधिकारियों की ओर हस्तान्तरित होगी। उन्हें अपनी सम्पत्ति में हिबा (दान), बिक्री और रहन आदि के समस्त अधिकार प्राप्त होंगे। इस्लामी हुकूमत को यह अधिकार न होगा कि वह उन्हें उनकी अपनी सम्पत्ति से बेदख़ल कर सके।

जिज़या की मात्रा ज़िम्मी की आर्थिक स्थिति को देखते हुए निश्चित की जाएगी। ग़रीबों से बहुत कम लिया जाएगा। जिनकी आय का कोई साधन नहीं है, जिनका काम दूसरों के सहयोग और दान से चलता हो उनसे कोई जिज़या नहीं लिया जाएगा। जिज़या निर्धारित करने में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाएगा कि जिज़या अदा करना उनके लिए कठिन न हो, बल्कि आसानी के साथ वे उसे अदा कर सकें।

यह जिज़या स्त्रियों, अंधों, विकलांगों, विवश्ताग्रस्त और वयोवृद्धों पर न लगाया जाएगा और संन्यासियों और पूजा-गृहों के सेवक भी इससे मुक्त होंगे। इसी प्रकार लौंडी और ग़ुलाम से भी जिज़या नहीं लिया जाएगा। जिज़या उनपर लगाया जाएगा जिन्होंने युद्ध किया हो, जिन्होंने युद्ध न किया हो उनपर जिज़या नहीं लगाया जाएगा।

ज़िम्मी के रक्त का मूल्य मुसलमान के रक्त के बराबर समझा जाएगा। कोई मुसलमान अगर किसी ज़िम्मी की हत्या कर देता है तो उसका 'क़िसास' लिया जाएगा। दण्ड-संहिता का क़ानून भी ज़िम्मी और मुसलमान दोनों के लिए समान है। अपराधों पर जो सज़ा मुसलमान को दी जाएगी वह सज़ा ज़िम्मी को भी देंगे। दीवानी के अधिकार भी समान

रहेंगे। जो व्यापार के तरीक़े अवैध हैं वे उनके लिए भी अवैध रहेंगे। वे सूअर भी पाल सकते हैं। व्यापार के सामानों पर मुसलमान व्यापारियों की तरह उनसे भी टैक्स लिया जाएगा। आर्थिक कारोबार और व्यापार, उद्योग-धंधे और दूसरे समस्त व्यवसायों के द्वार ग़ैर-मुस्लिमों के लिए भी उसी प्रकार खुले होंगे जिस प्रकार मुसलमानों के लिए खुले होंगे। आर्थिक क्षेत्र में आगे बढ़ने और प्रयास करने का अधिकार समान रूप से उन्हें भी प्राप्त होगा।

ज़िम्मियों को अपनी आस्था और धारणा के अनुकूल जीवन यापन करने का पूरा अधिकार प्राप्त होगा। उनकी अपनी बस्तियों में अपने धार्मिक रीति-रिवाजों को अपनाने और उत्सवों के मनाने की उन्हें पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। उन्हें अपनी बस्तियों में उपासना-गृह के निर्माण का पूरा हक़ होगा। मुस्लिम नगरों में भी जो उनके प्राचीन उपासना-गृह होंगे उन्हें कोई क्षति नहीं पहुँचाई जाएगी।

जिज़या और कर आदि की वुसूली के सम्बन्ध में ज़िम्मियों के साथ कठोर नीति अपनाना वैध न होगा। उनके साथ नर्म व्यवहार की बड़ी ताकीद की गई है। जो ज़िम्मी मुहताज और निर्धन हो जाएँगे उनसे जिज़या नहीं लिया जाएगा, बल्कि इसके विपरीत इस्लामी हुकूमत अपने राजकोश से उनके लिए सहायता राशि निर्धारित करेगी।

ज़िम्मियों से सैन्य सेवा नहीं ली जाएगी। देश की सुरक्षा का भार केवल मुसलमानों पर होगा। ज़िम्मियों से यह अनुबन्ध सामयिक नहीं, बल्कि सदैव के लिए होगा।

(4) हज़रत अली (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "क़िसास और दियत में सब मुसलमान बराबर हैं और मुसलमानों में से कोई साधारण व्यक्ति भी किसी को अमान (शरण) दे और किसी से कोई समझौता करे तो उसे पूरा किया जाए और अगर किसी दूर के रहनेवाले मुसलमान ने कोई अनुबन्ध किया है तो

उसे तोड़ा न जाए। और सभी मुसलमान ग़ैरों के मुक़ाबले में एक हाथ की हैसियत रखते हैं। ख़बरदार, किसी काफ़िर के बदले में किसी मुस्लिम को क़त्ल न किया जाए और न उस (ज़िम्मी) को मारा जाए जब तक कि वह अनुबन्ध के अन्तर्गत है।"

(हदीस : अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : अर्थात् इस सम्बन्ध में उच्च और निम्न श्रेणी या धनी और निर्धन या स्त्री और पुरुष में कोई अन्तर नहीं है। ऐसा नहीं होगा कि यदि किसी प्रभावशाली व्यक्ति ने किसी साधारण व्यक्ति की हत्या कर दी है तो उसका क़िसास नहीं लिया जाएगा। इसी प्रकार यह भी वैध नहीं है कि हैसियतवाले व्यक्ति के क़िसास के मुक़ाबले में कम हैसियतवाले व्यक्ति के क़िसास की मात्रा कम कर दी जाए। अज्ञानकाल में यह रिवाज था कि अगर कोई हैसियतवाला कम हैसियतवाले व्यक्ति को क़त्ल कर देता तो उसे क़िसास में क़त्ल नहीं करते थे। इस्लाम ने इस अन्तर को समाप्त कर दिया।

साधारण मुसलमान भी अगर किसी को अमान (शरण या अभय दान) देता है तो उसका आदर किया जाएगा और समस्त मुसलमानों का यह कर्त्तव्य होगा कि वे उसका आदर करें। यह कदापि न सोचें कि अमान देनेवाला कोई बड़ी हैसियत का व्यक्ति नहीं है। इसी प्रकार दूर रहनेवाले मुसलमान ने अगर किसी व्यक्ति को अमान दे रखी हो तो उसका भी आदर किया जाएगा।

मुसलमानों में परस्पर ऐसी एकात्मता और एकता होनी चाहिए मानो उनकी हैसियत एक हाथ की है जिसमें किसी भेद या असहयोग का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। किसी भाई ने यदि किसी ग़ैर-मुस्लिम को अमान दे रखी है तो वह अमान सबकी ओर से मानी जाएगी।

"किसी काफ़िर के बदले में किसी मुस्लिम को क़त्ल न किया जाए।" यहाँ काफ़िर से अभिप्रेत मुसलमानों के मुक़ाबले में लड़नेवाला

ग़ैर-मुस्लिम है। रहा ज़िम्मी काफ़िर तो इस्लामी क़ानून की दृष्टि में उसके ख़ून का मूल्य वही है जो एक मुसलमान के ख़ून का मूल्य होता है। यदि कोई मुसलमान किसी ज़िम्मी को अनाधिकृत रूप से क़त्ल कर देता है तो क़ातिल को क़िसास में क़त्ल किया जाएगा यद्यपि वह मुसलमान है। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) का मत यही है। क़बीला बकर-बिन-वायल के एक मुसलमान ने हीरा के एक ईसाई को क़त्ल कर दिया। हज़रत उमर (रज़ि॰) के पास मुक़द्दमा पेश हुआ तो उन्होंने हुक्म दिया कि क़ातिल को मक़तूल (जिसकी हत्या की गई) के वारिस के हवाले कर दिया जाए। क़ातिल को उन्हें सौंप दिया गया और वह क़िसास में क़त्ल कर दिया गया।

ज़िम्मी जब जिज़या अदा करता है और इस्लामी राज्य का वफ़ादार नागरिक बनकर रह रहा है और इस्लामी हुकूमत ने उसके प्राण और धन की सुरक्षा का वचन दे रखा है तो उसका ध्यान रखना अनिवार्य है।

(5) हज़रत जाबिर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि हम अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के साथ युद्ध के लिए यात्रा करते थे और हमें मुशरिकों (बहुदेववादियों) के बरतन मिलते तो उनसे जल पीते और उनको अपने काम में लाते और आप (सल्ल॰) इसमें कोई दोष न बताते।

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : ग़ैर-मुस्लिम भी मनुष्य हैं। इसलिए उनके बरतनों और दूसरी चीज़ों को काम में लाने में कोई दोष नहीं समझना चाहिए। ग़ैर-मुस्लिमों के छूने से कपड़े और बरतन आदि अपवित्र नहीं हो जाते कि उनसे लाभ न उठाया जाए। इस्लाम अनुचित घृणा और अज्ञान जन्य पक्षपात का समर्थन नहीं करता।

न्याय-व्यवस्था

न्यायाधीश का पद

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिस किसी को लोगों का क़ाज़ी (न्यायाधीश) बनाया गया उसे बिना छुरी के ज़िबह किया गया।"

(हदीस : मुसनद अहमद, तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : न्यायाधीश का पद बड़े ही उत्तरदायित्व का पद है। जिस व्यक्ति को यह पद सौंपा जाता है, वास्तव में वह बड़ी परीक्षा में डाल दिया जाता है। छुरी से ज़िबह होने में क्षण भर की पीड़ा सहनी पड़ती है। लेकिन क़ाज़ी के पद की ज़िम्मेदारी ऐसी है कि इसमें आदमी को हर समय यह चिन्ता लगी रहती है कि कहीं उससे किसी मुक़द्दमे के फ़ैसले में कोई कोताही हुई तो उसका परिणाम कितना संतापजनक होगा। छुरी प्रकट रूप में दिखाई नहीं देती किन्तु उस व्यक्ति को ज़िबह किया हुआ ही समझना चाहिए जिसे न्यायधीश के पद का भार सौंपा गया हो।

(2) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) और हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जब किसी हाकिम ने फ़ैसला करने का इरादा किया और इस सिलसिले में इजतिहाद किया और उसका फ़ैसला ठीक हुआ तो उसे दोहरा इनाम मिलेगा और यदि उसने फ़ैसला करने का इरादा किया और इस सिलसिले में इजतिहाद किया किन्तु ठीक परिणाम तक पहुँचने में चूक गया तो उसे एक इनाम मिलेगा।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : मतलब यह है कि अदालत के समाने यदि कोई मामला या अभियोग ऐसा आ जाता है जिसके सिलसिले में क़ुरआन और हदीस और फ़िक़ह (इस्लामी धर्म-शास्त्र) में कोई स्पष्ट मार्गदर्शन नहीं मिलता तो इस अवसर पर इजतिहाद की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार के अवसर पर इस्लामी शिक्षाओं की मूलात्मा और पूर्व कालिक विद्वानों के फ़ैसलों के दृष्टांतों के प्रकाश में हाकिम को पूर्ण रूप से सोच-विचार से काम लेना चाहिए। अब यदि वह सोच-विचार और चिन्तन-मनन के बाद अत्यन्त ईमानदारी के साथ किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है और उसका दिल सन्तुष्ट होता है कि उसका फ़ैसला न्यायानुकूल है तो वह अपने फ़ैसले को लागू कर सकता है। उसका फ़ैसला यदि ठीक और शरीअत के मन्तव्य के अनुकूल हुआ तो उसे (मरने के बाद) दोहरा प्रतिदान और पुण्य प्राप्त होगा। लेकिन फ़ैसला करने में इजतिहाद और चिन्तन के उपरान्त भी यदि उससे चूक हो गई और वह इस्लामी शरीअत के मन्तव्य तक पहुँचने में असमर्थ रहा, तो इस रूप से भी उसे एक प्रतिदान मिलेगा। इसलिए कि अपनी हद तक चिन्तन-मनन करने में उसने कोई कमी नहीं की। अब यदि फ़ैसला करने में उससे ग़लती होती है तो उसकी पकड़ न होगी। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि ऐसी बातें और मामले जो इस्लामी क़ानून के मूल स्रोत (अर्थात क़ुरआन व हदीस) में स्पष्ट रूप से उल्लिखित नहीं हैं, उनमें क़ाज़ी या जज को इजतिहाद करने का अधिकार प्राप्त है। इस हदीस से यह भी मालूम हुआ कि इजतिहाद करनेवाले से चूक भी हो सकती है। जहाँ वह शरीअत के मन्तव्य तक पहुँच सकता है वहीं इसकी भी सम्भावना है कि वह चूक जाए और वह शरीअत के मन्तव्य तक न पहुँच सके। लेकिन इस रूप में भी वह अल्लाह का आज्ञाकारी माना जाएगा और बदला पाने और पुण्य की प्राप्ति का अधिकारी ठहरेगा। इसलिए कि इनसान की ज़िम्मेदारी यही है कि वह सत्य तक पहुँचने की पूरी कोशिश करे। अगर वह सत्य को पा लेता है और शरीअत के मन्तव्य तक पहुँच जाता है

तो इसे वह अल्लाह की कृपा और अनुग्रह समझे और अगर वह शरीअत के मन्तव्य को समझने में असमर्थ रहा तो उसकी पकड़ नहीं होगी। इससे यह भी मालूम हुआ कि इस्लाम में संकीर्णता और कठोरता नहीं पाई जाती। इस्लाम के धर्मशास्त्रियों के मतभेद इसका प्रमाण हैं कि शरीअत में कोई तंगी नहीं। इस्लाम स्वाभाविक धर्म है। इसलिए इसमें उन ग़लतियों पर भी इनाम मिलता है जिनके पीछे असावधानी, धृष्टता और जड़ता न पाई जाती हो।

जब किसी चीज़ का आदेश दीन (धर्म) के मूल स्रोतों में स्पष्ट रूप से उल्लिखित न होगा तो अनिवार्यतः सोच-विचार से काम लेना होगा। यह काम क़िबला की तलाश की तरह है। जिस प्रकार क़िबला की दिशा मालूम न हो और नमाज़ का समय आ जाए तो नमाज़ नहीं छोड़ेंगे, बल्कि सोच-विचार और अपनी खोज के अनुसार क़िबले की दिशा निर्धारित कर लेंगे और उसी ओर मुँह करके नमाज़ अदा कर लेंगे। यह नमाज़ दुरुस्त मानी जाएगी यद्यपि जिधर मुँह करके नमाज़ पढ़ी गई है वास्तव में उधर क़िबला न हो। इसी प्रकार क़ियास और अनुमान पर अमल करनेवाला दीन ही पर अमल करनेवाला समझा जाएगा यद्यपि क़ियास करने में वह ग़लती ही क्यों न कर गया हो।

(3) हज़रत अनस (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति न्यायाधीश के पद का इच्छुक होगा और उसे तलब करके प्राप्त करेगा तो उसको उसके उसी मन के हवाले कर दिया जाएगा, और जिस किसी को इसके लिए बाध्य किया गया हो तो अल्लाह उसके लिए एक फ़रिश्ता भेजेगा जो (उसका मार्गदर्शन करेगा और) उसे ठीक-ठीक चलाएगा।"

(हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : मतलब यह है कि न्यायाधीश का पद कोई तलब करने की चीज़ नहीं है। जिस किसी व्यक्ति को इस पद की ज़िम्मेदारी का पूरा

एहसास होगा वह कदापि इसकी इच्छा और अभिलाषा नहीं कर सकता। ऐसा व्यक्ति यदि इस पद को प्राप्त करने में सफल भी हो जाता है, फिर भी अल्लाह की विशिष्ट सहायता से वह वंचित ही रहता है। ऐसी स्थिति में आदमी का अपना मन ही उसका मार्गदर्शक होता है। जो अपने मन ही के अधीन जी रहा हो, उसकी स्थिति कितनी ख़तरनाक होती है, प्रत्येक व्यक्ति आसानी से इसे समझ सकता है।

इसके विपरीत एक वह व्यक्ति है जिसने इस पद के लिए कोई कामना नहीं की और न वह इसके लिए प्रयासरत रहा, बल्कि उसे इस पद को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया तो इस रूप में अल्लाह की विशेष सहायता उसके साथ होती है। यहाँ तक कि एक फ़रिश्ता उसके मार्गदर्शन के लिए नियुक्त कर दिया जाता है जो अप्रत्यक्ष रूप से उसकी सहायता करता है। फिर उसका कोई काम मन के वशीभूत होकर सम्पन्न नहीं होता। उसके किए हुए फ़ैसले ठीक और दुरुस्त होते हैं। उनके पीछे कोई ग़लत प्रकार की प्रेरणा काम नहीं करती।

(4) हज़रत अली (रज़ि०) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल०) ने कहा, "जब तुम्हारे पास दो आदमी अपना झगड़ा लेकर आएँ तो तुम पहले के पक्ष में कोई फ़ैसला न करो जब तक कि दूसरे की बात न सुन लो। क्योंकि इससे सही फ़ैसला करने में तुम्हें सहायता मिलेगी।" (हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : यह आदेश नबी (सल्ल०) ने हज़रत अली को उस अवसर पर दिया है जब आप (सल्ल०) ने उन्हें क़ाज़ी बनाकर यमन भेजने का निश्चय किया था। यह आवश्यक है कि किसी मुक़द्दमे में मुद्दआ अलैह (प्रतिवादी) को इसका पूरा अवसर मिलना चाहिए कि वह अपनी सफ़ाई में जो कुछ कहना चाहता हो वह कह सके। मुद्दआ अलैह के बयान से पहले केवल मुद्दई (वादी) के दावे पर कोई फ़ैसला करना न्याय के

बिल्कुल विरुद्ध है। दोनों पक्षों की बातें सामने आ जाने से किसी निष्कर्ष तक पहुँचने में आसानी भी होती है।

(5) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने आदेश दिया कि मुक़द्दमे के दोनों ही पक्ष हाकिम के सामने बैठें। (हदीस : मुसनद अहमद, अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् किसी भी पक्ष के साथ विशिष्ट व्यवहार न करे। दोनों पक्षों के साथ उसका व्यवहार समान हो। दोनों पक्षों के बैठने के स्थान में कोई अन्तर न हो। किसी को किसी पर प्राथमिकता न दी जाए। कोई न्यायाधीश यदि किसी पक्ष का विशेष आदर व आवभगत करता और उसको अधिक महत्व देता है तो उस न्यायाधीश से इसकी आशा कैसे की जा सकेगी कि उसका फ़ैसला बेलाग और पक्षपात से बिलकुल मुक्त होगा और उसका फ़ैसला किसी सम्बन्ध आदि से कदापि प्रभावित न होगा।

(6) हज़रत अबू-बकरह् (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना, "कोई हाकिम दो पक्षों के बीच ऐसी स्थिति में कदापि फ़ैसला न करे जबकि वह क्रोध में हो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : क्रोध में साधारणतया आदमी इस स्थिति में नहीं होता कि किसी मुक़द्दमे में गम्भीरतापूर्वक सोच-विचार करके उसका न्यायपूर्ण फ़ैसला कर सके। क्रोध की तरह सख़्त बीमारी या भूख प्यास की दशा में भी, बल्कि मौसम यदि अत्यन्त विषम हो तो इस स्थिति में भी फ़ैसला न करे, क्योंकि इन स्थितियों में इसकी आशंका रहती है कि अपने पर पूरा नियंत्रण न हो या मस्तिष्क पूर्णतः काम न कर रहा हो और फ़ैसला करने में किसी पक्ष के साथ अन्याय और ज़्यादती हो जाए।

(7) हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "मैं एक इनसान हूँ और तुम अपने झगड़े लेकर मेरे पास आते हो, सम्भव है तुममें कोई व्यक्ति अपने तर्क प्रस्तुत करने में दूसरे से बढ़कर वाक्पटु हो और मैं उसका बयान सुनकर उसी के अनुसार फ़ैसला कर दूँ। अतः जिस किसी के पक्ष में किसी ऐसी चीज़ का फ़ैसला कर दूँ जो वास्तव में (उसकी नहीं बल्कि) उसके भाई की हो तो वह उसे न ले। क्योंकि इस रूप में अस्ल में उसके हक़ में (जहन्नम की) आग के एक टुकड़े का फ़ैसला कर रहा हूँगा।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् मैं भी एक मनुष्य हूँ, कोई परोक्ष ज्ञाता परमेश्वर नहीं हूँ। इसलिए इसकी सम्भावना है कि किसी पक्ष की वाक्पटुता और उसके तर्कों से प्रभावित होकर मैं किसी चीज़ का फ़ैसला उसी के पक्ष में कर दूँ और वह (विवादित) चीज़ उसे दिला दूँ। हालाँकि वास्तव में वह चीज़ उसकी नहीं है। ऐसी स्थिति में मेरे दिलाने से वह चीज़ उसकी नहीं हो जाएगी। अगर वह उसको लेता है तो उसे समझ लेना चाहिए कि वह उसके लिए जहन्नम की आग के एक टुकड़े के अतिरिक्त कुछ और नहीं है।

(8) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने मुद्दआ अलैह (प्रतिवादी) को क़सम का आदेश दिया। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : यदि कोई व्यक्ति अदालत में किसी के विरुद्ध दावा दायर करता है तो क़ाज़ी सिर्फ़ उसके दावे पर फ़ैसला नहीं कर देगा। इस्लामी क़ानून की दृष्टि से उसे अपने दावे के पक्ष में प्रमाण और साक्ष्य प्रस्तुत करना होगा। अगर वह प्रमाण और साक्ष्य प्रस्तुत न कर सके तो मुद्दआ अलैह से कहा जाएगा कि वह अगर इस दावे को ग़लत समझता है तो शपथ के साथ यह बयान दे कि यह दावा ग़लत है।

अगर वह शपथ के साथ बयान दे देता है तो दावा ख़ारिज कर दिया जाएगा और फ़ैसला मुद्दआ अलैह के पक्ष में होगा। यदि मुद्दआ अलैह शपथ से इनकार करता है तो फिर मुद्दई के दावे को ठीक समझा जाएगा और फ़ैसला उसी के पक्ष में होगा।

(9) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "अगर लोगों की मात्र उनके दावे पर उनकी माँग पूरी कर दी जाए तो लोग दूसरे आदमियों के विरुद्ध ख़ून और माल के (झूठे) दावे करने लगेंगे (अतः मुद्दई का दावा बिना गवाही के विश्वसनीय नहीं) लेकिन मुद्दआ अलैह से क़सम लेना आवश्यक है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् मात्र दावे पर फ़ैसला नहीं किया जाएगा। अगर ऐसा होने लगे तो फिर कितने लोग झूठे दावे करने लग जाएँ और यह दावा माल का भी हो सकता है और ख़ून का भी। इसलिए कोई दावा गवाही के बिना विश्वसनीय नहीं माना जाएगा।

हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) की यह रिवायत बैहक़ी में भी सही सनदों के साथ उल्लिखित है। बैहक़ी की रिवायत में ये शब्द भी मिलते हैं : "सुबूत व गवाही पेश करना मुद्दई के ज़िम्मे है और क़सम वह खाएगा जो इनकार करे" अर्थात् मुद्दआ अलैह।

(10) हज़रत बुरैदा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "क़ाज़ी तीन प्रकार के होते हैं। एक जन्नत में और दो तरह के जहन्नम में जाते हैं। जन्नत में जानेवाला वह व्यक्ति है जिसने हक़ (सत्य) को पहचाना और उसके अनुसार फ़ैसला किया। और जिसने हक़ को जाना मगर अपने फ़ैसले में अन्याय का पक्ष लिया तो वह जहन्नम में जाएगा। और जो व्यक्ति अज्ञान के कारण हक़ को पहचानने में असमर्थ रहा और

उसने इसी दशा में लोगों के विवादों का फ़ैसला किया वह भी जहन्नम में जाएगा।" (हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि जब कोई न्यायाधीश मुक़द्दमे का फ़ैसला करता है तो वह मात्र मुक़द्दमे का ही फ़ैसला नहीं करता बल्कि इसके साथ ही वह ख़ुद अपने परिणाम का भी फ़ैसला कर रहा होता है, चाहे उसे इसका एहसास न हो। अगर वह हक़ को समझने और जानने की पूरी कोशिश करता है और फिर हक़ (सत्य) के अनुसार फ़ैसला करता है तो उसका ठिकाना जन्नत है। लेकिन अगर वह हक़ को जानते-बूझते फ़ैसला उसके विपरीत करता है तो वह जहन्नम में (नरक) अपना ठिकाना बनाता है। इसी तरह वह क़ाज़ी भी अपना घर जहन्नम को बनाता है जिसके फ़ैसले सत्य के प्रकाश में नहीं बल्कि अज्ञान के अंधकार में होते हैं। वह हक़ और नाहक़ को जानता नहीं, मात्र अपनी भावनाओं और मन की इच्छाओं के अन्तर्गत फ़ैसले करता है।

इसी प्रकार बिना ज्ञान के फ़तवा देना भी महान अपराध है। अतएव हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जिस किसी ने बिना ज्ञान के फ़तवा दिया उसका गुनाह फ़तवा देनेवाले पर होगा।" (हदीस : अबू-दाऊद)

क़सम (सौगन्ध)

(1) हज़रत अबू-उमामा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो कोई क़सम खाकर किसी मुस्लिम व्यक्ति का हक़ मारे तो अल्लाह ने उसके लिए जहन्नम अनिवार्य कर दिया और जन्नत उसपर हराम कर दी।" एक व्यक्ति ने आप (सल्ल॰) से कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, यद्यपि वह कोई साधारण वस्तु हो? आप (सल्ल॰) ने कहा, "यद्यपि वह पीलू के पेड़ का एक टुकड़ा (दातुन) ही क्यों न हो।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : मालूम हुआ कि जन्नत का पवित्र वातावरण उस व्यक्ति के लिए नहीं है जो दूसरे का हक़ मारता हो और इसके लिए झूठी क़सम खाने में भी उसे झिझक न हो। उसके लिए जहन्नम की आग ही उचित है। हक़ मारने के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसने किसी को असाधारण हानि पहुँचाई हो। बल्कि किसी मुस्लिम को साधारण हानि पहुँचाकर भी वह जन्नत से हाथ धो रहा होता है। यूँ तो किसी भी व्यक्ति को हानि पहुँचाना और उसका हक़ मारना वैध नहीं है, लेकिन जो इसका भी ध्यान न रखे कि वह जिसका हक़ मारने जा रहा है वह अपना ही मुसलमान भाई है तो उसके मानसिक विकार का अन्दाज़ा आप स्वयं कर सकते हैं, और किसी गन्दगी की जन्नत में गुंजाइश नहीं हो सकती।

हदीस में "जो कोई किसी मुस्लिम व्यक्ति का हक़ मारे" के शब्द आए हैं। इसका कारण यह नहीं है कि किसी ग़ैर-मुस्लिम का हक़ मारने में कोई बुराई नहीं है, बल्कि इसका कारण यह है कि जिस समाज में यह बात कही गई है वह मदीना का इस्लामी समाज था। उस समाज में सामान्यतः मुसलमानों ही के पारस्परिक मुक़द्दमे फ़ैसले के लिए आते थे। वरना झूठी क़सम खाकर किसी ग़ैर-मुस्लिम का हक़ मारना भी उसी प्रकार अवैध है जिस प्रकार किसी मुसलमान का हक़ मारना अवैध है।

(2) हज़रत इब्ने-मसऊद (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति किसी चीज़ पर प्रतिबंधित होकर क़सम खाए और वह अपनी क़सम में झूठा हो कि उसका उद्देश्य उस क़सम से किसी मुस्लिम व्यक्ति का माल हासिल करना होगा, वह क़ियामत के दिन अल्लाह से इस हाल में मिलेगा कि अल्लाह उसपर क्रोधित होगा।" अतएव इसकी पुष्टि में अल्लाह ने यह आयत उतारी है : "वे लोग जो अल्लाह की प्रतिज्ञा और अपनी क़समों का थोड़े मूल्य पर सौदा करते हैं उनका आख़िरत में कोई

हिस्सा नहीं, अल्लाह न तो उनसे बात करेगा और न क़ियामत के दिन वह उनकी ओर देखेगा, और न ही उन्हें उत्तमता और निखार प्रदान करेगा। उनके लिए तो दुखद यातना निश्चित है।"

(क़ुरआन, 3:77)। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् ऐसा दुराचारी व्यक्ति इसी का पात्र होगा कि वह अल्लाह के प्रकोप में ग्रस्त हो, इसकी पुष्टि क़ुरआन की उस आयत से होती है जो इस हदीस में उद्धृत की गई है। ऐसा व्यक्ति अल्लाह की दयालुता से दूर होगा। उसे अल्लाह से बात-चीत करने का श्रेय प्राप्त न हो सकेगा जो एक बड़ी चीज़ है। अल्लाह की कृपादृष्टि उसपर नहीं पड़ेगी। दुनिया में उसने जिस छोटेपन और निर्ममता का प्रदर्शन किया, इसके कारण वह इसके योग्य नहीं रहा कि उसका आदर हो और वह अल्लाह के अनुग्रह से लाभ उठा सके।

(3) हज़रत अबू-ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना, "जो व्यक्ति किसी ऐसी चीज़ का दावा करे जो उसकी न हो वह कदापि हममें से नहीं है। और उसे चाहिए कि अपना ठिकाना जहन्नम में बना ले।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : "वह हम में से नहीं है" अर्थात् उसका सम्बन्ध कदापि हमारी पवित्र आचरणवाली जमाअत से नहीं है। जो मार्ग उसने अपनाया है उसका अन्त जहन्नम पर होगा। उसे चाहिए कि जिस प्रकार वह इस पर राज़ी हो गया कि झूठा दावा करके किसी की चीज़ पर अधिकार जमा ले जो उसके लिए पूर्णतः हराम थी तो अब वह इसपर भी राज़ी हो जाए कि उसका अन्तिम ठिकाना जहन्नम हो।

गवाही

(1) हज़रत ख़ुज़ैम-बिन-फ़ातिक (रज़ि॰) कहते हैं कि (एक दिन) अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) जब सुबह की नमाज़ पढ़ चुके तो खड़े हुए और तीन बार कहा, "झूठी गवाही अल्लाह के साथ शिर्क के बराबर ठराई गई है।" फिर आप (सल्ल॰) ने (प्रमाण के रूप में) यह आयत पढ़ी : "बुतों की गन्दगी से बचो और बचो झूठी बात से, इस तरह कि अल्लाह की ओर के होकर रहो, उसके साथ किसी को साझेदार न बनाओ," (क़ुरआन, 22:30-31)।

(हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा, अहमद, तिरमिज़ी)

व्याख्या : अहमद और तिरमिज़ी ने इसे ऐमन-बिन-ख़ुज़ैम से रिवायत किया है। अर्थात् झूठी गवाही देनेवाला जिस चरित्र का प्रदर्शन करता है वही चरित्र और आचरण उस मुशरिक का भी होता है जो अल्लाह के साथ शिर्क करता है। शिर्क सम्बन्धी धारणाओं एवं कर्मों का आधार झूठ होता है, क्योंकि अल्लाह का कोई समकक्ष और साझेदार नहीं। वह अकेला और शिर्क से निर्लिप्त है। उसका किसी भी प्रकार के शिर्क से कोई सम्बन्ध नहीं है। एक बहुदेववादी जब शिर्क करता या अल्लाह का साझी ठहराता है तो वास्तव में एक बड़े झूठ और अन्याय का पक्षधर होता है। झूठा गवाह भी अपनी गवाही में झूठ बोलता और ज़ुल्म करता है। दोनों ही का चरित्र ऐसा है कि वे झूठ पर राज़ी होते हैं। इसी लिए झूठी गवाही और अल्लाह के साथ शिर्क को बराबर ठहराया गया।

इस हदीस में क़ुरआन की जिस आयत को उद्धृत किया गया है उसमें शिर्क सम्बन्धी कर्म और झूठे कथन को एक साथ बयान किया गया है जिससे मालूम होता है कि इन दोनों में गहरा सम्बन्ध और समानता पाई जाती है। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने अपनी बात की पुष्टि में उस आयत को पेश किया है। शिर्क यदि एक घिनौना कार्य है तो

झूठी गवाही भी किसी गन्दगी से कम नहीं है। इब्ने-माजा की रिवायत मे आयत के पढ़ने का उल्लेख नहीं है।

(2) हज़रत ज़ैद-बिन-ख़ालिद (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "क्या मैं तुम्हें सर्वोत्तम गवाहों की सूचना न दूँ? सर्वोत्तम गवाह वह है जो पूछने से पहले गवाही दे दे।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : बिना तलब के जो व्यक्ति गवाही देता और सत्य को व्यक्त करता है, वह वास्तव में इस बात का प्रमाण प्रस्तुत कर रहा होता है कि उसको इसका पूरा एहसास है कि सत्य की उद्घोषणा सत्य से अवगत व्यक्ति का एक बड़ा दायित्व है, जिसकी उपेक्षा किसी तरह नहीं की जा सकती। इसी लिए वह अपनी गवाही के लिए इसकी प्रतीक्षा नहीं करता कि उसे गवाही के लिए बुलाया जाए और उससे गवाही के लिए कहा जाए। ऐसा गवाह जिसको अपनी ज़िम्मेदारी का इतना अधिक एहसास हो उससे बेहतर दूसरा गवाह कौन हो सकता है।

(3) हज़रत अम्र-बिन-शुऐब अपने बाप से और वे अपने दादा से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "गवाह मुद्दई के ज़िम्मे और क़सम मुद्दआ अलैह के ज़िम्मे है।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

व्याख्या : अर्थात् यह मुद्दई की ज़िम्मेदारी होती है कि वह अपने दावे के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करे अगर मुद्दआ अलैह मुर्दइ के दावे को रद्द कर देता है और उसके दावे को ग़लत ठहराता है। अब अगर मुद्दई के पास अपने दावे के पक्ष में कोई प्रमाण और गवाह आदि नहीं है और मुद्दआ अलैह उसके दावे को रद्द कर रहा है तो मुद्दई उससे यह माँग कर सकता है कि वह क़सम खाए कि हमने उसके विरुद्ध जो दावा किया है वह ग़लत है। इस अवसर पर मुद्दआ अलैह को क़सम खाकर

अपने सच्चे होने को अदालत के सामने व्यक्त करना चाहिए ताकि वह नेसंकोच मुक़द्दमा ख़ारिज कर सके।

(4) हज़रत अम्र-बिन-शुऐब अपने पिता से और वे अपने दादा से रिवायत करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "न तो विश्वासघात करनेवाले पुरुष की गवाही ठीक है और न विश्वासघात करनेवाली किसी स्त्री की। न व्यभिचारी पुरुष की और न किसी व्यभिचारिणी की गवाही वैध है, और न वैर रखनेवाले की गवाही वैध है जो उसके भाई के विरुद्ध हो जिससे उसको वैर हो।" तद्धिक आप (सल्ल॰) ने उस व्यक्ति की गवाही को भी रद्द कर दिया जो एक घर के संरक्षण में था और उसने उस घरवालों के पक्ष में गवाही दी थी। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : गवाह यदि न्यायप्रिय हों तो अदालत को सही फ़ैसले तक पहुँचने में आसानी होती है। इस हदीस में जिन लोगों की गवाही को अस्वीकार्य ठहराया गया है वे या तो वे हैं जो न्याय की कसौटी पर पूरे नहीं उतरते या उनकी स्थिति ऐसी है कि उनके निस्स्वार्थ और निष्पक्ष होने के बारे में आशंका पाई जाती है।

विश्वासघात करनेवालों से अभिप्रेत वे हैं जो विश्वासघात बार-बार कर चुके हों, जिसके कारण लोगों की निगाह में वे भरोसे के योग्य नहीं हो सकते। कुछ विद्वानों के विचार में विश्वासघात से अभिप्रेत "फ़िस्क़" (अवज्ञा, गुनाह) है। अर्थात् जो बड़े गुनाहों में लिप्त हुए हों। या छोटे गुनाहों को छोड़ते न हों या धर्म में जिन चीज़ों को अनिवार्य और आवश्यक ठहराया गया है उनके अनुपालन की जिनको कोई परवाह न हो। क़ुरआन के दृष्टिकोण से दीनी मामलों में विमुखता की नीति अपनाना अल्लाह और उसके रसूल के साथ ख़ियानत (विश्वासघात) ही है। अतः क़ुरआन में आया है : "ऐ ईमानलानेवालो, जानते-बूझते तुम

अल्लाह और उसके रसूल के साथ विश्वासघात न करना और न अपनी अमानतों में ख़ियानत करना।" (क़ुरआन, 8:27)

इस हदीस में विश्वासघात के बाद व्यभिचार का उल्लेख किया गया है। यह उल्लेख वास्तव में सामान्यीकरण के रूप में किया गया है। एक रिवायत में आया है कि उस व्यक्ति की गवाही भी विश्वसनीय नही जिसको मिथ्यारोपण का दण्ड मिल चुका हो। अर्थात् उसने किसी पाक दामन व्यक्ति पर व्यभिचार का लाँछन लगाया हो और उसको दण्ड स्वरूप कोड़े की सज़ा दी गई हो तो उसकी गवाही भी स्वीकार न की जाएगी। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह०) के नज़दीक किसी पर व्यभिचार के लाँछन के दण्ड के अतिरिक्त दूसरे दण्डों में यह छूट है कि जिस व्यक्ति को दण्ड दिया गया हो वह यदि तौबा कर लेता है तो उसकी गवाही स्वीकार कर ली जाएगी। दूसरे इमामों की दृष्टि में यह छूट सभी दण्डो में मिलेगी यदि किसी पर 'हद' (हद से अभिप्रेत वह दण्ड है जिसका उल्लेख क़ुरआन में हुआ हो) जारी की गई हो तो तौबा के बाद उसकी गवाही क़बूल की जाएगी चाहे यह हद व्यभिचार का लाँछन लगाने के सिलसिले में जारी हुई हो या किसी दूसरे गुनाह जैसे व्यभिचार के जुर्म मे जारी की गई हो।

हदीस के अन्तिम भाग से मालूम हुआ कि जो लोग परस्पर एक-दूसरे से वैर रखते हों उनकी गवाही एक-दूसरे के विरुद्ध विश्वसनीय न होगी, चाहे वे आपस में सहोदर भाई हों या दीनी भाई हों। इसी प्रकार वह व्यक्ति जो किसी घर के संरक्षण में हो अर्थात् उसकी देख-रेख, लालन-पालन उस घर से सम्बन्धित हों, उसकी गवाही उस घरवालों के पक्ष में विश्वसनीय नहीं ठहरेगी। जिस प्रकार बेटे की गवाही अपने बाप के पक्ष में या बाप की गवाही बेटे के पक्ष में और पत्नी की पति के पक्ष में और पति की गवाही पत्नी के पक्ष में भरोसे के लायक़ नहीं होती।

सिफ़ारिश

(1) हज़रत अबू-उमामा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति किसी की सिफ़ारिश करे और वह जिसकी सिफ़ारिश की जा रही हो उसे उपहार भेजे और वह उसे स्वीकार कर ले तो उसने ब्याज के द्वारों में से एक बड़े द्वार में प्रवेश किया।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : यह उपहार यद्यपि एक प्रकार की रिश्वत है, लेकिन नबी (सल्ल॰) इसे ब्याज ठहरा रहे हैं। यह इसलिए कि यह उपहार सिफ़ारिश करनेवाले को बिना बदले के प्राप्त होता है। रिश्वत देनेवाला अपना मतलब हासिल करने के लिए उसे यह उपहार देने पर ठीक उसी तरह मजबूर होता है, जिस तरह कोई मजबूर व्यक्ति ऋण प्राप्त करने के लिए ब्याज देने पर मजबूर होता है और ब्याज खानेवाला मात्र उसकी मजबूरी का अनुचित लाभ उठाता है।

रिश्वत

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने रिश्वत देनेवाले और रिश्वत लेनेवाले दोनों पर लानत की है। (हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

व्याख्या : लानत वास्तव में अत्यधिक क्रोध और विरक्ति का प्रदर्शन है। जब लानत अल्लाह की ओर से किसी पर हो तो इसका अर्थ यह होता है कि अल्लाह ने उसे अपनी रहमतों से वंचित कर देने का फ़ैसला कर लिया, और अगर यह लानत अल्लाह के रसूल या फ़रिश्तों की ओर से हो तो इसका अर्थ उस व्यक्ति से अत्यन्त विमुखता और उसके धिक्कार योग्य होने की अभिव्यक्ति या यह बद्दुआ (श्राप) होती है कि अल्लाह उसे अपनी दयालुता से दूर कर दे। सर्वथा दयालुता की मूर्ति अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) द्वारा लानत करने का अर्थ यह है कि

रिश्वत लेने का अपराध अत्यन्त घोर अपराध है। रिश्वत लेनेवाल रिश्वत लेकर यह सिद्ध करता है कि उसके अन्दर मानवता और दर नाम की कोई चीज़ शेष नहीं है। एक मनुष्य अगर मानवता की उच्चत से गिरता है और उस महानता की उसे कोई चिन्ता नहीं होती जो प्र ने उसे प्रदान की थी तो उससे बढ़कर कृतघ्न दूसरा कौन होगा। जिसप अल्लाह का रसूल लानत करे उसके हतभाग होने पर जितना भी दुर प्रकट किया जाए कम है।

बैहक़ी की रिवायत में 'अर-राइश' के शब्द भी आए हैं, अर्थात् व व्यक्ति जो रिश्वत देने और रिश्वत लेनेवाले के बीच मध्यस्थ का का करता है अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने उसपर भी लानत की है। इस सन्देह नहीं कि यह एक घोर अपराध है कि कोई रिश्वत देकर हाकि को न्याय से रोक दे और रिश्वत के बल पर उससे अपने पक्ष में फ़ैसल करा ले जबकि न्याय की दृष्टि से फ़ैसला उसके पक्ष में न हो सकत हो।

सुलह (समझौता)

(1) हज़रत अम्र-बिन-औफ़ मुज़न्नी (रज़ि॰) से रिवायत है कि नब (सल्ल॰) ने कहा, "मुसलमानों के बीच सुलह जाइज़ है, लेकि ऐसी सुलह वैध नहीं है जो हलाल को हराम और हराम को हला कर देने का कारण हो। और मुसलमान अपनी शर्तों पर क़ाय रहते हैं। अलबत्ता उस शर्त की पाबन्दी वैध नहीं जो हलाल क हराम और हराम को हलाल करने का कारण हो।"

(हदीस : तिरमिज़ी, इब्ने-माजा, अबू-दाऊद

व्याख्या : घरेलू मामले हों या राजनीतिक एवं आर्थिक मामल समस्त मामलों में सुलह करने में भलाई है। सुलह द्वारा जटिल से जटि समस्याएँ भी भी हल हो जाती हैं। इससे मानसिक तनाव (Tension) दू होता है। पारस्परिक संघर्ष और टकराव से मुक्ति मिलती है। इस

लोगों में परस्पर सुखद सम्बन्ध बनते हैं और यदि सम्बन्ध पहले से अच्छे हैं तो उनको इससे और अधिक बल मिलता है। इसलिए क़ुरआन में भी कहा गया है—

"सुलह और मेल-मिलाप अच्छी चीज़ है।" (क़ुरआन, 4:128)

इस्लाम वास्तव में शान्तिप्रिय धर्म है। इसलिए सुलह, त्याग, उदारता, दानशीलता और अल्लाह के बन्दों के साथ सद्व्यवहार आदि की शिक्षाएँ इस्लाम के स्वभाव के प्रत्यक्ष अनुकूल हैं।

"मुसलमान अपनी शर्तों पर क़ायम रहते हैं" अर्थात् मुसलमान का चरित्र यह है कि वह सुलह हो या युद्ध या दूसरे मामले, वे जिन शर्तों पर संधि और सुलह करते हैं, उनका अनुपालन और पाबन्दी उनके लिए आवश्यक है। अलबत्ता उस शर्त की पाबन्दी जाइज़ न होगी जो हलाल को हराम या हराम को हलाल कर देने का कारण बने। उदाहरणतः किसी मामले में कोई इस शर्त पर सुलह करे कि वह अपनी पत्नी की उपस्थिति में उसकी बहन से भी शादी कर लेगा तो इस शर्त को पूरा करना वैध न होगा। क्योंकि यह एक ऐसी चीज़ को हलाल ठहराना है जो बिलकुल हराम है। इस्लामी शरीअत में यह वैध नहीं है कि दो बहनों से एक साथ निकाह किया जाए। अर्थात् पत्नी की मौजूदगी में उसकी बहन से निकाह किया जाए। इसी प्रकार यह शर्त भी दुरुस्त नहीं है कि कोई सुलह के लिए इस शर्त को स्वीकार कर ले कि वह अपनी पत्नी से सम्भोग नहीं करेगा। क्योंकि वह एक हलाल और जायज़ चीज़ को अपने लिए हराम ठहरा रहा है।

क़ानूनसाज़ी और इजतिहाद

(1) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) और हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰ से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जब कोई हाकिम हुक्म व फ़ैसला देने लगे तो इजतिहाद करे। अब अगर उसका फ़ैसला ठीक होगा तो उसे दोहरा प्रतिदान मिलेग और अगर वह हुक्म व फ़ैसला देने को हो और इजतिहाद क लेकिन सही फ़ैसले तक पहुँचने में उससे चूक हो गई तो उसे एव प्रतिदान मिलेगा।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इस्लाम में विधायन या क़ानून बनाने का मूलाधा कुरआन और नबी (सल्ल॰) के तरीक़े ही को निर्धारित किया गया है कुरआन और सुन्नत की शिक्षाओं की उपेक्षा करके कोई भी क़ानून नह बनाया जा सकता। विधायन और क़ानून बनाने की आवश्यकता उस समय होती है जब कोई ऐसा मामला सामने आ जाए जिसके विषय मं कुरआन और हदीस में कोई स्पष्ट आदेश न पाया जाता हो। अन्यथ कुरआन और हदीस के आदेश ही वास्तविक इस्लामी क़ानून की हैसियत रखते हैं। कुरआन और नबी (सल्ल॰) की हदीसों में तो हर प्रकार वे आदेश पाए जाते हैं, फिर भी कोई विवाद या मामला ऐसा सामने अ सकता है जिसके सम्बन्ध में कुरआन और हदीस में स्पष्ट रूप से को आदेश न पाया जाता हो। ऐसी स्थिति में इजतिहाद की ज़रूरत पड़त है। इजतिहाद करनेवाले विद्वान ऐसी स्थिति में कुरआन और हदीस क शिक्षाओं और प्रतिष्ठित सहाबा (रज़ि॰) के व्यवहार और शरीअत वे स्वभाव और उसकी मूलात्मा आदि को सामने रखते हुए पूरी तरह सोच-विचार और चिन्तन-मनन करके नए विवाद या समस्या के विषय मं शरीअत का आदेश या क़ानून मालूम करने का पूरा प्रयास करते हैं

उनका यही प्रयास इजतिहाद कहा जाता है। वे अपने इस इजतिहाद में पूरी निष्ठा और दियानतदारी से काम लेते हैं। वे जिस फ़ैसले पर पहुँचते हैं वह क़ानून का रूप धारण कर लेता है।

इजतिहाद करनेवाला भी एक मनुष्य ही होता है। पूरी कोशिश और चिन्तन-मनन के बाद भी ग़लती की सम्भावना रहती है। इजतिहाद करनेवाला अपने ज्ञान और अपनी सूझ-बूझ की हद तक ही ज़िम्मेदार है। अगर उससे ग़लती भी होती है तो इस रूप में भी वह एक बदले (नेकी) का हक़दार होता है क्योंकि उसने अपनी हद तक शरीअत का उद्देश्य जानने के लिए सोच-विचार में कोई कमी नहीं की। और अगर उसका फ़ैसला क़ुरआन और हदीस के उद्देश्य के अनुकूल हुआ तो उसे दो नेकियाँ मिलेंगी।

(2) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि ख़ंदक़ की लड़ाई के दिन अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "(तुममें से) प्रत्येक अस्र की नमाज़ बनी-क़ुरैज़ा (यहूदियों का एक कबीला) पहुँचकर पढ़े।" किन्तु अस्र की नमाज़ का समय रास्ते ही में आ गया। कुछ लोगों ने कहा कि हम तो वहीं पहुँचकर नमाज़ अदा करेंगे। कुछ लोगों ने कहा कि हम तो पढ़ लेते हैं क्योंकि नबी (सल्ल॰) का मतलब यह नहीं था कि हम नमाज़ क़ज़ा कर दें। जब इस घटना का उल्लेख नबी (सल्ल॰) के सामने किया गया तो आप (सल्ल॰) ने उनमें से किसी से कुछ नहीं कहा।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : यह हदीस इस बात का स्पष्ट उदाहरण और दृष्टांत है कि इजतिहाद के मामलों में नेक नीयती और सत्यनिष्ठा के बावजूद मतभेद हो सकता है और इस प्रकार का मतभेद वैध ही नहीं, उम्मत के लिए रहमत है। इससे पता चलता है कि शरीअत में संकीर्णता और तंगी की जगह बड़ी कुशादगी पाई जाती है। हर विद्वान और विचारक अपने ज्ञान और समझ के अनुसार आदेशों का पालन कर सकता है। इस

प्रकार के मतभेद उन मतभेदों के अन्तर्गत नहीं आते जिनकी क़ुरआन में निन्दा की गई है और जिन्हें एक घोर अपराध ठहराया गया है। इस प्रकार के मतभेद तो ज्ञानात्मक और वैचारिक विकास के प्राण होते हैं। इनके द्वारा जीवन की मूलात्मा की रक्षा होती है। और इस प्रकार के मतभेद इस बात के स्पष्ट प्रमाण होते हैं कि समाज बुद्धि और चेतना रखनेवाले लोगों से रिक्त नहीं है, बल्कि समाज में ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं जो सोच-विचार, शोध, विवेक और सूझ-बूझ से काम लेते हैं। जो मूल सिद्धान्त में एकमत होकर एक ओर तो अपनी एकता को सुदृढ़ रखते हैं और दूसरी ओर मर्यादाओं का पालन करते हुए खोज और इजतिहाद से काम लेकर उन्नति और ज्ञान एवं विकास के मार्ग को अवरुद्ध नहीं होने देते। यह न हो तो समाज जीवन्त नहीं रह सकता। किसी भी अमौलिक प्रकरण के सत्यापन में दो विद्वानों (आलिमों) के मध्य मतभेद हो सकता है। दोनों ही अपने-अपने तर्क प्रस्तुत करके सत्यापन का हक़ अदा करते हैं। फिर यह बात जनमत पर छोड़ देते हैं कि वे जिनको चाहें स्वीकार करें या दोनों को वैध रखें। समस्या यदि अदालत से सम्बन्धित है तो अन्तिम अदालत को यह हक़ पहुँचता है कि वह जिसको चाहे स्वीकार करे। समस्या यदि सामूहिक प्रकार की है तो यह सामाजिक व्यवस्था का काम है कि जिसको चाहे स्वीकार करे या दोनों ही को वैध रखे। इस प्रकार के मतभेदों से न तो कोई दीन से निष्कासित क़रार दिया जा सकता है और न उसे पथभ्रष्ट और प्रथभ्रष्टक कह सकते हैं। इसलिए कि वह इस समस्या को और इसमें अपने मत को धर्म का मूलाधार नहीं ठहराता और न उसे अस्वीकार करनेवालों को इस्लाम से निष्कासित समझता है।

धर्म में जो मतभेद निन्दनीय हैं वे ये हैं कि कोई धर्म के मूल सिद्धान्तों ही में मतभेद करने लग जाए या ऐसी समस्याओं को जिनको ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल॰) ने दीन की मौलिक समस्या नहीं घोषित किया है वह उनको और उनमें अपने मत को धर्म में मौलिक और

सैद्धांतिक समस्याएँ ठहराए। अपने समर्थकों को लेकर एक गरोह खड़ा करे और उन लोगों को जो उसके गरोह या उसके उस जत्थे में शामिल न हों उनके दीन और ईमान से रिक्त और जहन्नमी होने की घोषणा करने लग जाए। इस प्रकार का मतभेद और फ़िरक़ाबन्दी वह भारी अपराध है जो अक्षम्य है। इसकी क़ुरआन में जगह-जगह भर्त्सना की गई है।

(3) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति नबी (सल्ल.) की सेवा में उपस्थित हुआ और कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे यहाँ एक काला लड़का पैदा हुआ है (जिसको मैं अपना नहीं समझता)। आप (सल्ल.) ने कहा, "तुम्हारे पास ऊँट हैं?" उसने कहा कि हाँ। आपने पूछा, "उनका रंग कैसा है?" उसने कहा कि लाल है। आप (सल्ल.) ने पूछा, "उनमें कोई कुछ सियाही लिए हुए श्वेत भी है?" उसने कहा कि हाँ। आप (सल्ल.) ने कहा, "यह कहाँ से आया।" उसने कहा कि शायद किसी नाड़ी ने उसे खींचा हो। आपने कहा, "इसी प्रकार सम्भव है तेरे पुत्र के साथ भी ऐसा ही हुआ हो।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : इसलिए तुम्हारे लिए यह ठीक नहीं है कि तुम उस बच्चे को अपना बच्चा स्वीकार करने से इनकार करो। मनुष्यों में रंग के परिवर्तन को पशुओं में रंग के परिवर्तन पर क़ियास (अनुमान) किया। मालूम हुआ कि क़ियास और सोच-विचार को भी दीन में महत्त्व प्राप्त है। क़ियास और चिन्तन के बिना इजतिहाद सम्भव नहीं और इजतिहाद के बिना सामने आनेवाले मामलों में शरीअत के उद्देश्य को जानना सम्भव नहीं होता।

(4) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि.) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति नबी (सल्ल.) के पास आया और उसने कहा कि मेरी बहन ने हज करने की नज़्र (मन्नत) मानी थी, किन्तु वह मर गई। आप

(सल्ल॰) ने कहा, "अगर उसके ज़िम्मे कोई क़र्ज़ होता तो क्या तुम चुकाते?" उसने कहा कि हाँ। आप (सल्ल॰) ने कहा, "तो फिर अल्लाह का क़र्ज़ भी चुकाओ, क्योंकि उसका चुकाना अत्यन्त आवश्यक है।" (हदीस : बुखारी, मुस्लिम)

व्याख्या : इससे पहले जो हदीस गुज़री है उसमें आप देख चुके हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने मनुष्यों के रंग के परिवर्तन को जानवरों के रंग के परिवर्तन के सदृश समझा। इस हदीस में आप (सल्ल॰) अल्लाह के क़र्ज़ के चुकाने को इनसानों के क़र्ज़ के चुकाने पर क़ियास करते हुए कह रहे हैं कि जब किसी इनसान का क़र्ज़ चुकाना ज़रूरी है तो अल्लाह के क़र्ज़ और उसकी माँग को पूरी करना इससे बढ़कर आवश्यक होगा। इसी को क़ियास कहते हैं। इन हदीसों से क़ियास के वैध होने का प्रमाण मिलता है। कुछ एक के सिवा सभी इस्लामी क़ानून विद् जब ज़रूरत हो क़ियास के वैध होने पर सहमत हैं। सामान्य सहाबा और ताबिईन (वे मुस्लिम जिन्होंने सहाबा को देखा हो) से क़ियास करने का उल्लेख मिलता भी है। जिस क़ियास और मत को निन्दित ठहराया गया है वह वास्तव में विकृत क़ियास और मत है जिसका कोई आधार न हो। जिसके पीछे मात्र मनेच्छा ही काम कर रही हो।

आवश्यकता और निहित हित का लिहाज़

(1) हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि मुझसे अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "अगर तुम्हारी क़ौम का कुफ़्र (अधर्म) का ज़माना अभी जल्द ही न गुज़रा होता तो मैं काबा को तोड़कर इबराहीम (अलैहि॰) की बुनियाद पर उसका निर्माण करता, क्योंकि क़ुरैश ने जब काबा का निर्माण किया तो उसे छोटा कर दिया। मैं उसमें एक द्वार पीछे की ओर भी रखता।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : हतीम का टुकड़ा भी काबा ही का भाग था जिसको छोड़कर क़ुरैश ने काबा का निर्माण किया था। उल्लेखों से मालूम होता

है कि हतीम छह ज़िराअ काबा की ओर बैतुल्लाह में निर्विवाद सम्मिलित है। इससे अधिक में मतभेद पाया जाता है।

नबी (सल्ल॰) के कथन का अर्थ यह है कि क़ुरैशवालों को ईमान लाए अभी अधिक समय नहीं बीता है। कहीं ऐसा न हो कि काबा को तोड़कर फिर उसका निर्माण करने को वे पसन्द न करें और कोई उपद्रव खड़ा न हो जाए। इसलिए इस इच्छा के होते हुए कि काबा का निर्माण हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की असल बुनियाद पर हो और काबा का जो भाग काबा में शामिल होने से रह गया है उसे नव निर्माण में बैतुल्लाह में शामिल कर लिया जाए, आप (सल्ल॰) ने काबा में कोई परिवर्तन नहीं किया। उसे ज्यों का त्यों रहने दिया। नबी (सल्ल॰) की यह कार्य नीति इस बात का प्रमाण है कि किसी मामले को ज़रूरत और सार्वजनिक हित के अन्तर्गत छोड़ा या स्थगित किया जा सकता है, शर्त यह है कि उससे असल दीन (मूल धर्म) को कोई क्षति न पहुँचती हो। क्योंकि हतीम काबा ही का भाग है, इसलिए काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) हतीम के अन्दर से नहीं बल्कि उसके बाहर से किया जाता है।

(2) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "अगर यह ख़याल न होता कि उम्मत (मुस्लिम समुदाय) अधिक कठिनाई में पड़ जाएगी तो मैं लोगों को आदेश देता कि वे इशा की नमाज़ देर से पढ़ें और हर नमाज़ के लिए मिसवाक (दातुन) किया करें।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् मुझे इसका डर है कि मेरी उम्मत के लोग बड़ी कठिनाई में पड़ जाएँगे और उनपर यह बड़ा बोझ होगा। अगर यह भय और आशंका न होती तो मैं इसे अनिवार्य कर देता कि लोग इशा की नमाज़ देर से अदा करें। और हर नमाज़ के समय वुज़ू में मिसवाक करने को भी अनिवार्य कर देता। इस रिवायत से यह सिद्ध होता है कि पसन्दीदा बात यह है कि इशा की नमाज़ देर से पढ़ी जाए और हर नमाज़ के समय वुज़ू में मिसवाक भी की जाए।

दीन में सख़्ती (कठोरता) नहीं पाई जाती। नबी (सल्ल॰) का कथन है : "दीन आसान है।" इसी लिए इमाम सुफ़ियान सौरी (रह॰) ने कहा है कि "फ़क़ीह (धर्मशास्त्री) वह है जो आसानियाँ पैदा करे। सख़्त फ़तवा देना अत्यन्त सरल बात है।" फ़ुक़हा (धर्मशास्त्रियों) के यहाँ सार्विक सिद्धान्त है– "कठिनाई आसानी चाहती है।" इमाम शाफ़िई (रह॰) कहते हैं– "जब किसी मामले में तंगी पैदा हो जाए तो उसमें कुशादगी पैदा की जाती है।" दीन का स्वभाव आसानी पैदा करना है। इसी लिए इस्लाम को स्वाभाविक धर्म कहा जाता है। क़ुरआन में स्पष्ट शब्दों में उल्लिखित है– "अल्लाह तुम्हारे साथ आसानी चाहता है, वह तुम्हारे साथ सख़्ती और कठिनाई नहीं चाहता," (क़ुरआन, 2:185)। एक जगह उल्लिखित है– "अल्लाह किसी जीव पर बस उसकी सामर्थ्य और समाई के अनुसार ही दायित्व का भार डालता है।" (क़ुरआन, 2:286)

मुर्दार, सूअर का गोश्त और जिसपर अल्लाह के सिवा किसी और का नाम लिया गया हो उसका खाना इस्लाम में वर्जित है। किन्तु विवशता और अत्यन्त मजबूरी की दशा में खा सकते हैं। शर्त यह है कि सीमा का उल्लंघन न करे। (क़ुरआन, 2:173)

बीमार या मुसाफ़िर को इसकी अनुमति प्राप्त है कि वह बीमारी या सफ़र की हालत में रोज़ा न रखे। जितने रोज़े छूट जाएँ उनको बाद में पूरा कर ले। सफ़र में क़स्र (संक्षिप्त) नमाज़ की सुविधा भी दी गई है। चार रकअतों की जगह दो ही रकअत पढ़े। युद्ध अगर छिड़ जाए तो नमाज़ को स्थगित भी कर सकते हैं। ख़ंदक़ की लड़ाई में नबी (सल्ल॰) और सहाबा की लगातार चार वक़्त की नमाज़ क़ज़ा हो गई जो बाद में अदा की गई।

कोई बीमार अगर खड़ा होकर नमाज़ नहीं पढ़ सकता तो वह बैठकर नमाज़ पढ़े और अगर बैठने की भी शक्ति न हो तो करवट के बल लेटे-लेटे ही नमाज़ पढ़े। (हदीस : बुख़ारी, इमरान-बिन-हुसैन की

रिवायत)। इसी प्रकार अगर सर्दी अधिक हो या तेज़ हो या तेज़ बारिश हो रही हो तो मुअज़्ज़िन "हैय-य अलस्-सलाह" (नमाज़ के लिए आओ) पुकारने के बदले "सल्लू फ़ी रिहालिकुम" (तुम लोग अपने घरों में ही नमाज़ पढ़ लो) पुकार दे। (शरहुस्सुन्नह इब्ने-उमर से रिवायत)। आदेश है कि नमाज़ इतनी लम्बी न पढ़ी जाए कि मुक़्तदी (इमाम के पीछे नमाज़ पढ़नेवाले) उकता जाएँ। (बुख़ारी, मुस्लिम, अबू-दाऊद, नसई—जाबिर की रिवायत)। इमाम के लिए आवश्यक है कि वह कमज़ोर और बीमार मुक़्तदियों का ध्यान रखे (शरहुस्सुन्नह, अबू-हुरैरा से उल्लिखित)। अगर नमाज़ में औरतें भी शरीक हैं और वे अपने बच्चों को घर छोड़कर आई हों तो उनका ध्यान रखते हुए नमाज़ संक्षिप्त की जाए। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी—हज़रत अनस से रिवायत)

दीन में भावनाओं का भी पूरा ध्यान रखा गया है। अतएव अगर अकेले नमाज़ पढ़ रहे हों और क़ुरआन की किसी आयत में रूहानी कैफ़ (आत्मिक आह्लाद) पैदा हो रहा हो तो इसकी इजाज़त है कि जब तक दिल चाहे उसे दुहरा सकते हैं। (नसई, अबू-ज़र से उल्लिखित)

राज्याधिकारियों में अवज्ञा और शरीअत के विरुद्ध कोई बात दिखाई दे तो इसके बाद भी उनके विरुद्ध विद्रोह करने से रोका गया है। क्योंकि अधिक आशंका है कि इससे उपद्रव खड़ा होगा और रक्तपात होगा। इसी प्रकार शत्रु के अधिकार-क्षेत्र में किसी को दण्ड नहीं देंगे कि कहीं ऐसा न हो कि वह शैतानी उकसाहट से प्रभावित हो जाए और शत्रुओं से जा मिले। सामान्य स्थिति में जहाँ तक सम्भव होगा 'हद' (दण्ड) को टाला जाएगा। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह०) ने 'इस्तिहसान', इमाम मालिक (रह०) ने 'मसालेह मुर्सला' इमाम ग़ज़ाली (रह०) ने 'इस्तिसलाह' और कुछ शाफ़िई और हंबली मसलक के इमामों ने 'इस्तिसहाबुल-अहवाल' के जो पारिभाषिक शब्द सृजित किए हैं उन सभी में लगभग एक ही मूलात्मा काम कर रही है कि विधि-निर्माण के समय

जनसाधारण को अधिक से अधिक लाभ, सर्वहित व न्याय और सरलता एवं तत्त्वदर्शिता को प्राथमिकता प्राप्त होगी।

नवीन और जीवन के विविध मामलों में असंकीर्णता की नीति अपनाने की ज़रूरत होती है और असंकीर्णता और कुशादगी शरीअत के स्वभाव के सर्वथा अनुकूल है। लेकिन इस सिलसिले में क़दम बहुत कम आगे बढ़ाया गया है। गौण और अप्रधान विषयों पर आवश्यकता से अधिक बल दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि मौलिक सिद्धान्त उपेक्षित होकर रह गए। मूलात्मा और अर्थवत्ता पर दृष्टि स्थिर न रह सकी। दृष्टि अमौलिक बातों पर केन्द्रित होकर रह गई। परिणामतः विभिन्न सम्प्रदाय और फिर सम्प्रदाय के अन्दर सम्प्रदाय उत्पन्न हो गए।

(3) हज़रत बुरैदा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "मैंने तुम्हें क़ब्रों की ज़ियारत से रोका था, अब उनकी ज़ियारत करो, और मैंने तुम्हें रोका था तीन दिन के बाद क़ुरबानी का मांस खाने से, अब रखो क़ुरबानी का मांस जब तक रख सको। और मना किया था तुम्हें नबीज़ से लेकिन मश्क़ के भीतर की नबीज़ से नहीं रोका था, अब तुम जिस बरतन में चाहो पियो, लेकिन नशा लानेवाली चीज़ कदापि न पियो।"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : आरम्भ में नबी (सल्ल॰) ने लोगों को क़ब्रों पर जाने से रोका था। अज्ञानकाल को बीते अभी अधिक समय नहीं हुआ था। आशंका थी कि कहीं क़ब्रों पर जाकर लोग कोई अज्ञानपूर्ण कृत्य न करने लगें। लेकिन जब आप (सल्ल॰) ने देखा कि इस्लाम ने दिलों में जगह बना ली है और लोग इस्लाम के स्वभाव से परिचित हो गए हैं तो आप (सल्ल॰) ने इसकी अनुमति दे दी कि लोग क़ब्रों पर जा सकते हैं। क़ब्रों को देखने से संसार की अस्थिरता का एहसास उभरता है, अपनी मौत याद आती है और जो लोग संसार से जा चुके हैं उनके लिए

अल्लाह से दयालुता और क्षमायाचना का अवसर मिलता है। इसलिए क़ब्रों की ज़ियारत एक जाइज़ काम है।

स्त्रियों के लिए नबी (सल्ल॰) के रौज़े (क़ब्र) के अतिरिक्त दूसरी क़ब्रों पर जाना उचित नहीं। यद्यपि कुछ लोग उनके लिए भी क़ब्रों पर जाने को जाइज़ क़रार देते हैं।

इस्लाम के आरम्भ में मुसलमानों को दौलंत और संसाधन की सम्पन्नता प्राप्त न थी। अधिकतर लोग तंगदस्त थे। हर व्यक्ति को क़ुरबानी करने की सामर्थ्य प्राप्त न थी। इसलिए नबी (सल्ल॰) ने कहा था कि क़ुरबानी करनेवाले क़ुरबानी का गोश्त तीन दिन से अधिक रखकर न खाएँ, उसे अपने ग़रीब भाइयों में बाँट दिया करें। मगर जब परिस्थिति बदल गई और आर्थिक संसाधनों में वृद्धि हुई और लोग साधारणतया दूसरों की क़ुरबानी के गोश्त के मुहताज नहीं रहे तो फिर आप (सल्ल॰) ने इसकी अनुमति दे दी कि क़ुरबानी का गोश्त जितने दिन तक चाहें रखकर खा सकते हैं।

नबीज़ एक प्रकार का पेय पदार्थ है। खजूर या अंगूर को पानी में डालकर रख देते थे। कुछ थोड़े दिन तक पानी में रहने से एक स्वादिष्ट पेय तेयार हो जाता था। उसका पीना उस समय तक वैध है जब तक कि उसमें नशा न आ जाए। नबी (सल्ल॰) ने आरंभ में आदेश दिया था कि नबीज़ को मश्क में रखा जाए, क्योंकि मश्क पतली होती है जिसके कारण उसमें रखी हुई नबीज़ शीघ्र ही गरम होकर नशीली नहीं हो जाती। जब लोग शराब हराम होने के आदेश से अच्छी तरह परिचित हो गए, बल्कि शराब से उन्हें घृणा हो गई तो इसकी आशंका न रही कि लोग फिर नशे की ओर आकर्षित हो सकते हैं तो उनको इसकी अनुमति दे दी गई कि वे जिस बरतन में चाहें नबीज़ रख सकते हैं।

यह हदीस बताती है कि इस्लाम के आदेशों में कोई भी आदेश मात्र आदेश के लिए नहीं, बल्कि उसके पीछे कोई तत्त्वदर्शिता और

निहित हित पाया जाता है। चाहे हमारी दृष्टि उस तत्त्वदर्शिता और हित तक न पहुँच सके।

वैध चीज़ें

(1) हज़रत अबू-सालबा ख़ुशनी (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "निस्सन्देह अल्लाह ने तुमपर उन चीज़ों को अनिवार्य किया है जो अनिवार्य हैं। अतः उन्हें खो न देना। और उसने सीमाएँ निर्धारित की हैं तो उनका उल्लंघन न करना। उसने बहुत-सी चीज़ों को निषिद्ध किया है, तो उनके निकट न जाओ। और उसने बहुत-सी चीज़ों के विषय में तुमपर दया दर्शाने हेतु बिना भूल-चूक के मौन धारण किया है तो तुम उनमें कुरेद न करो।"
(हदीस : दार क़ुत्नी)

व्याख्या : अबू-सालबा ख़ुशनी के वास्तविक नाम के बारे में मतभेद पाया जाता है। कुछ ने जर्हम-बिन-साबित, किसी ने जरसूम-बिन-साबित और कुछ ने उमर-बिन-जरसूम लिखा है। ये अपनी कुन्नियत अबू-सालबा से मशहूर हैं। इनका सम्बन्ध क़बीला क़ुज़ाआ की एक शाखा ख़श्न से है। नबी (सल्ल॰) ने उन्हें इनके क़बीले की ओर धर्म-प्रचार के उद्देश्य से भेजा था। इनके धर्म-प्रचार के प्रयास स्वरूप इनका क़बीला मुस्लिम हो गया। अन्त में इन्होंने शाम (सीरिया) में अपना निवास स्थान बना लिया था।

इस हदीस में कई आदेश दिए गए हैं उनमें से एक यह आदेश है कि अनिवार्य कर्मों (उदाहरणार्थ नमाज़-रोज़ा) का अनुपालन करो, वे टूटने न पाएँ। इनके अदा करने में उनके आदाब व शर्तों का पूरा लिहाज़ रखो। इस सिलसिले में दिखावा और अपनी प्रसिद्धि आदि की इच्छा से तुम्हारे दिल मुक्त हों।

अर्थात क़िसास आदि जो भी हदें (दण्ड) मुक़र्रर करते हैं उनमें कोई कमी या ज़्यादती नहीं होनी चाहिए।

हराम चीज़ों से तुम्हें पूर्णतः दूर रहना चाहिए। इस सिलसिले में किसी प्रकार की कोताही नहीं होनी चाहिए।

इस हदीस में यह जो कहा गया है कि उसमें बहुत-सी चीज़ों के बारे में मौन धारण किया है तो यह ख़ामोशी रहमत है। इसमें उम्मत के लिए बड़ी कुशादगी है। यह ख़ामोशी किसी भूल-चूक या असावधानी के कारण नहीं है। अल्लाह के यहाँ भूल-चूक का प्रश्न ही नहीं उठता। वह सर्वज्ञ है। वह हर प्रकार की दुर्बलताओं और दोष से मुक्त है। उसने अपने इरादे से ख़ामोशी अपनाई है। इसलिए जिन चीज़ों के बारे में उसने ख़ामोशी अपनाई है, लोगों को चाहिए कि उनके सम्बन्ध में अनावश्यक रूप से वाद-विवाद में न पड़ें।

(2) हज़रत क़बीसा-बिन-हल्ब अपने बाप से रिवायत करते हैं कि उन्होंने कहा कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से सुना है। आप (सल्ल॰) से एक व्यक्ति ने पूछा कि खाने की चीज़ों में से कोई ऐसी चीज़ है जिससे मैं बचूँ? इसपर आप (सल्ल॰) ने कहा, "तुम्हारे मन में कोई ऐसा सन्देह नहीं होना चाहिए कि अपने को ईसाइयत (संन्यास) के क़रीब और उसके अनुरूप करो।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : हलाल से ज़्यादा हराम चीज़ों के जानने की चिन्ता और उत्सुकता को किसी स्वस्थ बुद्धि का लक्षण नहीं कहा जा सकता। ख़ुदा ने जिन चीज़ों के हराम होने को स्पष्ट कर दिया है उनके अतिरिक्त सारी पवित्र और लाभदायक चीज़ों को ख़ुदा ने अपने बन्दों के लिए वैध कर दिया है। पाक एवं पवित्र चीज़ों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। उन

पवित्र चीज़ों से उदासीनता या उनको अपने लिए अवैध कर लेना अल्लाह की नेमत का अपमान है।

इस हदीस से मालूम होता है कि अकारण हर चीज़ में सन्देह करना और अल्लाह की नेमतों को व्यवहार में लाने के बदले अधिक दिलचस्पी इसमें दिखाना कि कौन-सी चीज़ वर्जित और परहेज़ के योग्य हो सकती है। इसका इस्लाम से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह स्वभाव रहबानियत (संन्यास) का है जिसको इस हदीस में ईसाइयत से अभिहित किया गया है। रहबानी विचारधारा को ईसाइयत ने काफ़ी महत्त्व दिया है। किन्तु सत्य यह है कि यह एक मानसिक रोग है। स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए इस रोग का इलाज अत्यन्त आवश्यक है।

(3) हज़रत अनस (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि जब नबी (सल्ल॰) ने रोम के शासक को पत्र लिखना चाहा तो आप (सल्ल॰) से कहा गया कि वे लोग पत्र को नहीं पढ़ते जब तक कि उसपर मुहर न हो। अतः आप (सल्ल॰) ने चाँदी की एक अंगूठी बनवाई। मानो मैं अब भी उसकी चमक आपके हाथ में देख रहा हूँ। उसमें आप (सल्ल॰) ने 'मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' शब्द खुदवाए। (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : नबी (सल्ल॰) को जब मालूम हुआ कि पत्र पर भेजनेवाले की मुहर अगर नहीं लगी है तो शासक उसे प्रमाणित नहीं मानते और उसे कोई महत्त्व नहीं देते, तो आप (सल्ल॰) ने चाँदी की एक अंगूठी बनवाई और उसपर अपने नाम और पद कि आप अल्लाह के रसूल हैं दोनों खुदवाए और पत्र पर अपनी मुहर लगाकर उसे रोम के शासक क़ैसर के पास भेजा। वास्तव में वैध-चीज़ों और जाइज़ होने का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। जिस चीज़ से शरीअत ने स्पष्ट रूप से नहीं रोका है उसके वैध होने में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। बल्कि जिस काम के बिना कोई बड़ा नुक़सान हो रहा हो वह काम तो केवल वैध ही नहीं बल्कि अनिवार्य हो जाता है।

आलोचना का अधिकार

(1) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) या हज़रत अबू-सईद (रज़ि॰) (उल्लेखकर्त्ता हज़रत आमश को संदेह है) से रिवायत है कि जब तबूक की लड़ाई का समय आया तो लोग अत्यन्त भूख से दोचार हुए। उन्होंने निवेदन किया कि ऐ अल्लाह के रसूल, काश आप हमें इजाज़त देते तो हम अपने ऊँटों को जिनपर पानी लाते हैं ज़िबह कर डालते, फिर हम खाते और ताज़ादम हो जाते! अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "अच्छा ज़िबह करो।" रावी (उल्लेखकर्ता) कहते हैं कि इतने में हज़रत उमर (रज़ि॰) आ गए और उन्होंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, अगर ऐसा कीजिएगा तो सवारियों की कमी हो जाएगी। अलबत्ता सब लोगों को बुला भेजिए कि वे अपना बचा हुआ खाने का सामान लेकर आएँ। फिर अल्लाह से दुआ कीजिए कि उस खाने में बरकत दे। शायद अल्लाह इसमें कोई राह निकाल दे। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : हदीस से मालूम होता है कि नबी (सल्ल॰) ने हज़रत उमर (रज़ि॰) के प्रस्ताव पर अमल भी किया। जो कुछ लोगों के पास बचा हुआ था, वह लेकर आए। एक दस्तरख़ान पर सब इकट्ठा हुए। फिर आप (सल्ल॰) ने दुआ की और फिर सभी ने पेट भरकर खाया। कुछ बच भी गया। इस रिवायत से मालूम हुआ कि इस्लाम में इस बात की इजाज़त है कि अगर किसी को नायक एवं नेता के किसी फ़ैसले पर सन्तुष्टि न हो तो वह अपनी असन्तुष्टि को प्रकट कर सकता है। हाकिम नेता की भी ज़िम्मेदारी है कि वह उसे बुरा न माने, बल्कि अगर मतभेद करनेवाले का मतभेद उचित और तर्कपूर्ण हो तो वह अपने फ़ैसले को बदल दे।

इस प्रकार की एक दूसरी घटना भी विस्तार से सहीह मुस्लिम में वर्णित है। एक बार नबी (सल्ल॰) के पास हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰),

हज़रत उमर (रज़ि॰) और हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) मौजूद थे। नबी (सल्ल॰) उठे और बाहर गए। आपकी वापसी में देर हुई तो हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) को चिन्ता हुई, उन्हें आशंका हुई कि कहीं दुश्मन आपको तकलीफ़ न पहुँचाए। वे आपकी खोज में निकले। अन्ततः बनी-नज्जार के बाग़ में वे आप (सल्ल॰) से मिले। नबी (सल्ल॰) ने उन्हें अपनी दोनों जूतियाँ निशानी के तौर पर दीं और कहा कि जाओ ऐसा जो व्यक्ति इस बाग़ के पीछे मिले जो इसकी गवाही देता हो कि अल्लाह के सिवा कोई पूज्य-प्रभु नहीं और उसे उसपर दिल से पूर्ण विश्वास भी हो तो उसे जन्नत की शुभ-सूचना दे दो। संयोग से सबसे पहले जो व्यक्ति मिला वह हज़रत उमर थे। उन्होंने पूछा कि ये जूतियाँ कैसी हैं? हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) ने कहा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की जूतियाँ हैं। आप (सल्ल॰) ने इनको देकर मुझे भेजा है कि मैं जिससे मिलूँ, यदि वह 'ला इला-ह इल्लल्लाह' की गवाही दिल से देता हो तो मैं उसे जन्नत की ख़ुशख़बरी दे दूँ। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने उन्हें मारा और कहा कि अल्लाह के रसूल के पास लौट जाओ। हज़रत उमर भी उनके पीछे नबी (सल्ल॰) की सेवा में उपस्थित हुए। नबी (सल्ल॰) ने हज़रत उमर (रज़ि॰) से पूछा कि तुमने ऐसा क्यों किया? उन्होंने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल, आपपर मेरे माँ-बाप निछावर हों, आपने अबू-हुरैरा को अपनी जूतियाँ देकर भेजा था कि वह उस व्यक्ति को जो 'ला इला-ह इल्लल्लाह' पर दिल से यक़ीन रखता हो उसे जन्नत की ख़ुशख़बरी दे दें? आप (सल्ल॰) ने कहा, 'हाँ!' हज़रत उमर ने कहा कि आप (सल्ल॰) पर मेरे माँ-बाप निछावर हों, ऐसा न कीजिए क्योंकि मुझे डर है कि लोग इसी पर भरोसा करके बैठ रहेंगे, आप उन्हें अमल करने दें। आप (सल्ल॰) ने कहा, "अच्छा, उन्हें कर्म करने दो।"

इस हदीस से मालूम हुआ कि नायक के किसी फ़ैसले से मतभेद किया जा सकता है और उसके सामने अपने मतभेद को तर्कपूर्ण ढंग से रखा जा सकता है। हाकिम को भी इसपर विचार करना चाहिए कि

शायद मामले के कुछ पहलू उसकी निगाह से ओझल रहे हों। इस प्रकार यदि हाकिम ज़रूरत महसूस करेगा तो अपने फ़ैसलों या आदेशों में परिवर्तन कर सकता है। अतएव हम देखते हैं कि हज़रत उमर (रज़ि॰) की सलाह पर आप (सल्ल॰) ने अपने आदेश को वापस ले लिया कि कहीं सचमुच लोग ख़ुशख़बरी पाकर कलिम-ए-तैयिबा अर्थात एकेश्वरवाद और रिसालत पर विश्वास और ईमान ही को अपने लिए पर्याप्त समझ लें और जीवन में कर्म का जो महत्त्व है वह उनकी निगाह से हट जाए।

निरस्तीकरण का अधिकार

(1) हज़रत अबुल-अला-बिन-शिख़्ख़ीर से उल्लिखित है, वे कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) अपनी एक हदीस को दूसरी हदीस से निरस्त कर देते थे। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : शरीअत के क़ानून में क्रमशः विकास पाया जाता है। कुछ आदेशों में परिवर्तन के अध्ययन से भली-भाँति पता चलता है कि कुछ शरई क़ानूनों में क्रमशः विकास का सिद्धान्त भी क्रियान्वित रहा है। उदाहरणार्थ आरम्भ में नमाज़ की हालत में इसकी छूट थी कि नमाज़ी लोगों के सलाम का जवाब दे दिया करते थे। फिर इससे रोक दिया गया कि नमाज़ एक उच्च कोटि की व्यस्तता है। इसमें बन्दा अल्लाह की सेवा में उपस्थित होता है और उससे बातें कर रहा होता है। इसलिए नमाज़ में अल्लाह के सिवा किसी दूसरे से बातचीत वैध नहीं है।

बहुत-सी ऐसी हदीसें हैं, सनद के लिहाज़ से, जिनके सत्य होने में सन्देह नहीं किया जा सकता। लेकिन फिर नबी (सल्ल॰) ने अगर उसे अपने वचन या कर्म से निरस्त कर दिया हो तो फिर उसे किसी विषय में प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत करना दुरुस्त न होगा। दीन में जिनको गहरी समझ प्राप्त है उन्होंने तो यहाँ तक कहा है यह जो कहा जाता है कि इस्लामी शरीअत ने पिछली शरीअतों को निरस्त कर दिया है तो इसका

अर्थ भी यही होता है कि इस्लामी शरीअत वास्तव में पिछली शरीअतों का विकसित रूप है, उनका विरोध नहीं है।

नासिख़ व मनसूख़ (निरस्तकर्त्ता व निरस्त) हदीसों के बारे में इमामों ने अपनी किताबों में विचार-विमर्श किया है। प्रतिष्ठित सहाबा (रज़ि॰) भी नासिख़ व मनसूख़ हदीसों की ओर से असावधान न थे। हज़रत अली (रज़ि॰) और हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) के बारे में उल्लिखित है कि उनके विचार में नासिख़ व मनसूख़ हदीसों से अनभिज्ञ होना तबाही है। नस्ख़ (निरस्तीकरण) के विषय में जो ज्ञानपरक वार्त्ताएँ की गई हैं उनको देखने से भली-भाँति अन्दाज़ा होता है कि हमारे पूर्वजों का चिन्तन कितना वैज्ञानिक रहा है। उन्होंने निरस्तीकरण के विषय में हर पहलू से वार्त्ता की है। इस सम्बन्ध में इमाम हाफ़िज़ अबू-बक्र मुहम्मद-बिन-मूसा अल-हाज़िमी-अस्समदानी (मृत्यु 584 हिजरी) की "किताबुल-एतिबार फ़िन्नासिख़ वल-मनसूख़ मिनल-आसार" का अध्ययन लाभप्रद रहेगा।

अच्छी चीज़ों का संरक्षण

(1) हज़रत अबू-सलमा-बिन-अब्दुर्रहमान और सुलैमान-बिन-यसार नबी (सल्ल॰) के एक सहाबी से रिवायत करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने 'क़सामत' को उसी प्रकार बाक़ी रखा जैसे वह जाहिलियत के ज़माने में प्रचलित थी। इसी के अन्तर्गत अनसार के कुछ लोगों के बीच एक मक़तूल (मारा गया व्यक्ति) के सिलसिले में फ़ैसला किया, जिसके क़त्ल का उन्होंने ख़ैबर के यहूदियों पर दावा किया था। (हदीस : मुस्लिम, नसई)

व्याख्या : इस हदीस में क़सामत का उल्लेख किया गया है। क़सामत क़सम या सौगन्ध खाने के अर्थ में आता है। शरीअत की परिभाषा में क़सामत से तात्पर्य यह है कि किसी आबादी या मुहल्ले या उससे निकट किसी का क़त्ल हो जाए और क़ातिल का पता न चल सके

तो हुकूमत का कर्त्तव्य है कि वह छानबीन करे कि क़ातिल कौन है? अगर क़ातिल का पता न चल सके तो उस आबादी या मुहल्ले के निवासियों से जहाँ क़त्ल हुआ है पचास आदमियों से क़सम ली जाएगी। उनमें से प्रत्येक यह क़सम खाएगा कि अल्लाह की क़सम, मैंने क़त्ल नहीं किया है और न क़ातिल के बारे में मुझे कोई जानकारी है। क़सम न खाने की स्थिति में उनपर 'दियत' अनिवार्य होगी। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह०) का यही मत है। इसका आधार यह मशहूर हदीस है : "गवाह मुद्दई के ज़िम्मे और क़सम मुद्दआ अलैह के ज़िम्मे है।"

क़सामत का तरीक़ा इस्लाम से पहले अज्ञानकाल में प्रचलित रहा है। इस्लाम ने इसे लाभदयाक समझते हुए समाप्त नहीं किया, बल्कि इसे बाक़ी रखा। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि अगर कोई चीज़ लाभदायक और लोगों के लिए उपयोगी हो और उसमें शरीअत की दृष्टि से कोई दोष न हो तो उसे इस्लाम समाप्त करना नहीं चाहता। बल्कि लोगों की भलाई की दृष्टि से वह उसे बाक़ी रखेगा। इसका एक स्पष्ट उदाहरण क़सामत है। क़सामत के अलावा और भी कुछ दूसरी चीज़ों को इस्लाम ने बाक़ी रखा है।

इससे यह भी मालूम हुआ कि अगर लोगों के लिए कोई व्यक्ति कोई लाभदायक और भलाई की चीज़ आविष्कृत करता है तो अगर उसमें कोई ऐसी बात नहीं पाई जाती जो शरीअत में हराम है तो उसे अपनाने और उससे लाभान्वित होने में कोई दोष नहीं है। उसे अपनाने में इस्लाम कदापि कोई रुकावट नहीं डालता।

इमाम शाफ़िई (रह०) और इमाम अहमद (रह०) के मतानुसार जिस आबादी या मुहल्ले या उसके निकट लाश पाई गई हो यदि उसके निवासियों और मक़तूल के बीच शत्रुता रही हो या ऐसा कोई लक्षण पाया जाए जिससे यह दृढ़ अनुमान हो कि उसे इस आबादी या मुहल्ले के लोगों ने क़त्ल किया है तो मक़तूल के वारिसों से क़सम ली जाएगी

कि उसे इस आबादी या मुहल्ले के लोगों ने क़त्ल किया है। अगर मारे गए व्यक्ति के वारिसों ने क़सम खाने से इनकार किया तो फिर उन लोगों से क़सम ली जाएगी जिनपर क़त्ल करने का सन्देह है। क़सामत में दियत वाजिब होती है, क़िसास वाजिब नहीं होता। लेकिन इमाम मालिक (रह०) के मतानुसार यदि दावा इरादतन (जान-बूझकर) क़त्ल करने का हो तो क़िसास का आदेश लागू करना चाहिए।

दण्ड विधान

शरीअत में दण्ड तीन प्रकार के हैं—

(1) वे दण्ड जिन्हें अल्लाह ने निश्चित किया है, लेकिन उनको लागू करना बन्दों पर छोड़ दिया है। शरीअत ने उसे 'कफ़्फ़ारा' (प्रायश्चित) का नाम दिया है। उदाहरणार्थ क़सम का उल्लंघन, बिना मजबूरी के रमज़ान में रोज़ा छोड़ देना।

(2) दूसरे प्रकार के दण्ड वे हैं जो अल्लाह की किताब और रसूल की सुन्नत से साबित और निश्चित हैं और उन्हें लागू करने का अधिकार हुकूमत को दिया गया है। इस प्रकार के दण्ड को 'हद' कहते हैं। जैसे—चोरी और ज़िना (व्यभिचार) के दण्ड।

(3) तीसरे प्रकार के दण्ड वे हैं जो किताब और सुन्नत में निश्चित नहीं लेकिन उन कर्मों को अपराध ठहराया गया है जिनके ये दण्ड हैं। इस प्रकार के दण्ड के निर्धारण और निश्चित करने के मामले को हुकूमत को सौंप दिया गया है कि वह अवसर और स्थान, स्थितियों और आवश्यकता को देखते हुए स्वयं दण्ड निश्चित करे। इस प्रकार के दण्ड को 'ताज़ीर' कहते हैं।

'हद' में कमी-बेशी करने का अधिकार किसी को नहीं है। अलबत्ता 'ताज़ीर' में समय का हाकिम या शासक अवसर और स्थान को देखते हुए दण्ड में कमी, वृद्धि या परिवर्तन कर सकता है। बल्कि कोई निहित हित हो तो वह अपराधी को क्षमा भी कर सकता है।

इस सम्बन्ध में एक मामला क़िसास का भी है। क़िसास का अर्थ है सज़ा में क़ातिल की जान लेना। अर्थात् किसी ने यदि किसी व्यक्ति को अनाधिकार क़त्ल किया है तो उसे मारे गए व्यक्ति के बदले में क़त्ल करना। 'क़स्स' या 'क़सस' के अर्थ हैं— किसी के पीछे-पीछे जाना। चूँकि मक़तूल का वली क़ातिल का पीछा करता है ताकि उसे मक़तूल के बदले में क़त्ल कराए, इसलिए क़ातिल की जान लेने को क़िसास कहते हैं। क़िसास का अर्थ होता है— समानता या बराबरी। क़िसास में चूँकि क़ातिल के साथी वही व्यवहार करते हैं जो उसने मक़तूल (निहत) के साथ किया था, इसलिए इसमें समानता का भाव भी पाया जाता है।

क़िसास अल्लाह की ओर से निश्चित किया हुआ दण्ड है लेकिन मक़तूल के वारिसों को यह अधिकार प्राप्त है कि वे उसे क्षमा कर दें। इसलिए क़िसास की गणना 'हद' में नहीं होती। कुछ इस्लामी धर्म-शास्त्री इसे हद और ताज़ीर दोनों नाम देते हैं।

(1) हज़रत अबू-सिरमा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति किसी को हानि पहुँचाएगा तो अल्लाह उसे हानि पहुँचाएगा और जो किसी से दुश्मनी करेगा तो अल्लाह भी उससे दुश्मनी करेगा।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : शरीअत में अपराधी को दण्ड देने का विधान भी है और यह विधान इसलिए है कि शरीअत की दृष्टि में कोई भी अपराधात्मक क्रिया-कलाप, जैसे किसी को नुक़सान या किसी प्रकार की क्षति पहुँचाना, कोई साधारण बात नहीं है। यदि कोई व्यक्ति किसी को क्षति पहुँचाता है तो उसे जान लेना चाहिए कि उसे उसकी इस अपराधात्मक कृति का दण्ड अवश्य मिलकर रहेगा। अल्लाह अकारण यूँ ही किसी को दण्ड नहीं देता। अगर कोई व्यक्ति किसी से अनाधिकृत और अकारण शत्रुता रखता है तो वह सीधे रास्ते से भटका हुआ है। उसकी यह शत्रुता जीवन-व्यवस्था और प्राकृतिक क़ानून का उल्लंघन है जिसके तहत

स्वयं उसको यह अस्तित्त्व और जीवन प्राप्त है। उसकी यह शत्रुता वास्तव में व्यक्ति-विशेष से शत्रुता नहीं बल्कि उसके सृष्टि-कर्त्ता अल्लाह से शत्रुता है। ऐसे व्यक्ति की हैसियत अल्लाह की दृष्टि में सत्य के शत्रु के सिवा और कुछ नहीं हो सकती।

(2) हज़रत आइशा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जहाँ तक तुमसे सम्भव हो मुसलमानों से शरई हदों को लागू करने को टालते रहो। अगर कुछ भी गुंजाइश नज़र आए तो आरोपी का रास्ता छोड़ दो, क्योंकि हाकिम का अपराधी को छोड़ देने में ग़लती कर जाना इससे अच्छा है कि वह सज़ा देने में ग़लती कर जाए।" (हदीस : तिरमिज़ी)

व्याख्या : इस हदीस में हाकिम को यह आदेश दिया जा रहा है कि उसके पास अगर कोई मुक़द्दमा आए तो वह आरोपी को दण्ड देने में जल्दी न करे। जहाँ तक सम्भव हो वह मुसलमान को हद से बचाने की कोशिश करे। मामले में यदि कोई सन्देह का पहलू निकलता हो तो उसका लाभ आरोपी को मिलना चाहिए। क्योंकि हाकिम के ग़लत फ़ैसले से अगर आरोपी बरी हो जाता है और उसे सज़ा नहीं मिलती तो यह ग़लती उस ग़लती से बेहतर है कि हाकिम अपने ग़लत फ़ैसले से किसी निर्दोष को सज़ा दे दे। इसलिए अगर सुबूत में थोड़ा भी सन्देह रह जाए तो आरोपी को छोड़ देना चाहिए। इस हदीस से यह भी मालूम होता है कि किसी को बिना मुक़द्दमा चलाए क़ैद रखना और उसपर किसी प्रकार की पाबन्दी लागू करना न्याय के विरुद्ध है। इस्लामी शरीअत की वास्तविक रुचि किसी को दण्ड देने में नहीं है। दण्ड का फ़ैसला तो बस उस समय किया जाए जबकि आरोपी को दण्ड से बचाने का कोई उपाय न रह जाए।

(3) हज़रत अम्र-बिन-शुऐब अपने पिता से और वे अपने दादा हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "तुम आपस में हदों को क्षमा कर दिया

करो, यदि घटना मुझ तक पहुँच जाएगी तो हद लागू करना अनिवार्य हो जाएगा।" (हदीस : अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : अर्थात् किसी से कोई गुनाह या अपराध हो जाता है तो अच्छा यही है और शरीअत की दृष्टि में भी यही अच्छी बात है कि उसे नज़र-अन्दाज़ किया जाए। यह झगड़ा हाकिम के पास न ले जाया जाए। मामला अगर हाकिम के पास पहुँच जाता है तो हाकिम के लिए यह वैध न होगा कि उसे क्षमा कर दे। क्योंकि वे शरीअत के क़ानूनों को लागू करने के लिए नियुक्त किए गए हैं। अतः जहाँ तक सम्भव हो लोगों को चाहिए कि वे एक-दूसरे को क्षमा कर दें।

(4) हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "अल्लाह की हदों में से किसी हद का जारी करना अल्लाह के भूभाग में चालीस रात तक बारिश बरसने से उत्तम है।" (हदीस : इब्ने-माजा, नसई)

व्याख्या : हद को जारी करने और सज़ाओं को लागू करने से गुनाह और क़ानून की अवहेलना करना आसान नहीं रहता। फिर न लोग आसानी से चोरी कर सकते हैं और न किसी की जान लेना उनके लिए आसान रहता है। ज़िना (व्यभिचार) और अश्लीलता के द्वार भी बन्द हो जाते हैं, जिसके कारण धरती से हर प्रकार के उपद्रव और बिगाड़ समाप्त हो जाते हैं। फिर लोगों के हक़ अदा करने की राह सुगम होती जाती है। यह शान्ति, निर्भयता और निश्चिन्तता जल-वर्षा की बरकतों से कहीं अधिक महत्त्व रखती है। इसके अतिरिक्त जब धरती में लोग बिगाड़ नहीं फैलाते और हाकिम हदों को जारी करने में सुस्ती नहीं दिखाता और समाज में गुनाह और अपराध के अवसर कम से कम उपलब्ध होते हैं तो लोग निश्चिन्तता और शान्ति के वातावरण में हलाल रोज़ी की तलाश में लग जाते हैं और अल्लाह की मदद उन्हें प्राप्त होती है। जब लोग अल्लाह के आदेशानुपालन में लगे होते हैं और उसकी

प्रसन्नता को दुनिया की सारी नेमतों से बढ़कर प्रिय समझते हैं तो आकाश से बरकतों का अवतरण आरम्भ होता है। अल्लाह अपने सृष्ट-जन को अकाल और विभिन्न प्रकार की महामारियों से सुरक्षित रखता है।

(5) हज़रत अनस-बिन-मालिक से उल्लिखित है। वे बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को देखा कि जब भी कोई मुक़द्दमा आप (सल्ल॰) के पास ऐसा आता जिसमें क़िसास अनिवार्य होता तो आप (सल्ल॰) क्षमा से काम लेने के लिए प्रेरित करते।

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् नबी की कोशिश होती कि लोग क्षमाशीलता से काम लें और एक-दूसरे को क्षमा कर दें ताकि क़िसास की स्थिति न आए।

(6) हज़रत आइशा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "लड़नेवालों के लिए अनिवार्य है कि बचें। पहले जो अधिक निकट है वह क्षमा करे फिर जो उसके बाद है, यद्यपि वह स्त्री हो।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् जहाँ तक सम्भव हो क्षमा की नीति अपनाएँ ताकि शत्रुता की आग न भड़कने पाए। जहाँ तक सम्भव हो क़िसास न लें। हदीस में शब्द 'यनूहजिज़ू' आया है। इमाम अबू-दाऊद की दृष्टि में इसका अर्थ है "क़िसास से रुक जाएँ।"

स्त्री को भी यदि वह मारे जानेवाले की वारिस है, यह अधिकार प्राप्त है कि वह क़िसास क्षमा कर दे।

(7) हज़रत अबू-बुरदा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) कहते थे, "दस कोड़ों से अधिक न मारा जाए सिवाय उन हदों के जो अल्लाह ने निश्चित कर दी हैं।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : यह हदीस बताती है कि ताज़ीर के तौर पर किसी को दस कोड़ों से अधिक न मारा जाए। लेकिन उलमा ने इस हदीस को मनसूख ठहराया है। इस विषय में अनेक मत हैं कि ताज़ीर के तौर पर कितने कोड़ों की सज़ा दी जा सकती है। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) और इमाम मुहम्मद (रह॰) के मतानुसार 39 कोड़ों से अधिक न मारा जाए। इमाम अबू-यूसुफ़ *(रह॰)* के मतानुसार अधिक से अधिक 75 कोड़े मारे जा सकते हैं। अलबत्ता इसपर सब एकमत हैं कि कम से कम तीन कोड़े मारे जाएँ। इसपर भी सब सहमत हैं कि ताज़ीर में कोड़ों की संख्या हद में मारे जानेवाले कोड़ों की संख्या तक न पहुँचने पाए। लेकिन कठोरता और तीव्रता उससे बढ़कर हो सकती है।

(8) हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि एक यहूदी ने कुछ चाँदी के टुकड़ों के लिए एक लड़की को मारा, उसने उसे पत्थर से मारा। वह रसूल (सल्ल॰) के पास लाई गई। अभी उसमें कुछ जान बाक़ी थी। आप (सल्ल॰) ने पूछा : तुझे अमुक व्यक्ति ने मारा है? उसने सिर से संकेत किया कि नहीं। फिर पुनः कहा कि क्या तुझे अमुक व्यक्ति ने मारा है? उसने सिर से संकेत किया कि नहीं। आप (सल्ल॰) ने तीसरी बार पूछा तो उसने कहा कि हाँ और अपने सिर से संकेत किया। आप (सल्ल॰) ने उस यहूदी को बुलवाया। (उसने स्वीकार किया) तब आप (सल्ल॰) ने उसे दो पत्थरों से कुचलकर क़त्ल करा दिया। (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : शरीअत में क़त्ल की सज़ा क़त्ल है। यदि कोई स्त्री किसी पुरुष को क़त्ल कर देती है तो मारे गए पुरुष के बदले में उस स्त्री को क़त्ल करेंगे। इसी प्रकार मक़तूल अगर स्त्री है और उसका क़ातिल पुरुष है तो उस पुरुष हत्यारे को क़त्ल किया जाएगा।

(9) हज़रत इमरान-बिन-हुसैन (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि याला बिन-मुनया या याला-बिन-उमैया एक व्यक्ति से लड़ पड़े। फिर

एक ने दूसरे के हाथ को दाँत से दबाया। उसने अपना हाथ खींचा तो उसके मुँह से उसके दाँत निकल आए। फिर दोनों झगड़ते हुए अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के पास आए। आप (सल्ल.) ने कहा, "तुममें से एक इस तरह काटता है कि जैसे ऊँट काटता है, दियत नहीं मिलेगी।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् जिसके दाँत निकल गए थे वह दियत माँगने लगा। लेकिन अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने उसे दियत नहीं दिलाई, क्योंकि दूसरे व्यक्ति ने अपने हाथ को उससे बचाने के लिए खींचा था। अब यदि झटके में दूसरे का दाँत टूटकर बाहर निकल आया तो इसमें हाथ खींचनेवाले का क्या दोष हो सकता है! आत्मरक्षा का अधिकर प्रत्येक को प्राप्त है। अब यदि इस अधिकार की प्राप्ति में दूसरे को कोई हानि पहुँचती है तो इस हानि का तावान (जुर्माना) अनिवार्य नहीं होता।

(10) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) से उल्लिखित है कि हुज़ैल की दो स्त्रियों में से एक ने दूसरे को पत्थर फेंककर मारा जिससे उसके पेट का बच्चा गिर गया। तो अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने एक ग़ुलाम या लौंडी तावान देने का फ़ैसला किया। (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : यह हत्या इरादतन की गई हत्या की क़िस्म से न थी बल्कि इरादतन हत्या के सदृश थी। इसी लिए इसके लिए दियत का फ़ैसला किया गया। क़िसास का फ़ैसला नहीं किया गया।

(11) हज़रत अली (रज़ि.) से उल्लिखित है कि एक यहूदी स्त्री नबी (सल्ल.) को बुरा कहती और आपकी निन्दा करती थी। इसपर एक व्यक्ति ने उसका गला घोंटा यहाँ तक कि वह मर गई। अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने उसके ख़ून को व्यर्थ ठहराया।

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : अर्थात् उसका बदला क़िसास या दियत के रूप में लेने का आदेश नहीं दिया।

(12) हज़रत अम्र-बिन-शुऐब अपने बाप से और उसने दादा से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने ख़ता की दियत में फ़ैसला किया सौ ऊँट पर तीस ऊँटनी, एक वर्ष की अवस्था की और तीस ऊँटनियाँ दो वर्ष की अवस्थावाली और तीन ऊँटनियाँ तीन वर्ष की जो चौथे वर्ष में लगी हों और दस ऊँट नर दो-दो वर्ष के जो तीसरे में लगे हों। (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : हत्या के सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि हत्या या तो इरादे से की गई हो या इरादतन हत्या के सदृश हो यह हत्या होगी या यह हत्या ख़ता या चूक से हुई होगी। इरादतन क़त्ल का मतलब यह है कि किसी को जान बूझकर क़त्ल के इरादे से किसी व्यक्ति को लोहे के हथियार, लाठी या पत्थर से मारे या उसे ऊपर से फेंक दे, पानी में डुबो दे, आग में जलाए, ज़हर दे दे या उसका गला घोंट दे और वह मर जाए या उसके अंग भंग कर दे या उसके शरीर के किसी अंग को घायल कर दे। इसमें क़िसास अनिवार्य है। क़ुरआन में है : "और हमने उसमें उनके लिए लिख दिया था कि प्राण प्राण के बराबर है, आँख आँख के बराबर है, नाक नाक के बराबर, कान कान के बराबर है, दाँत दाँत के बराबर, और सब ज़ख्मों का इसी प्रकार बराबर का बदला है।"

(क़ुरआन, 5:45)

इरादतन क़त्ल के सदृश का अर्थ यह है कि मुजरिम ने किसी को सिर्फ़ सज़ा देने का इरादा किया था, क़त्ल करना या घायल करना उसका उद्देश्य न था, लेकिन संयोग से वह मर गया। उसमें क़िसास नहीं, दियत है।

ख़ता के क़त्ल में इरादा शामिल नहीं होता। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति तीर-अन्दाज़ी या शिकार कर रहा है। ग़लती से या निशाने के चूक जाने से किसी का क़त्ल हो जाए या कोई घायल हो जाए तो इसमें दियत बहुत कम है जबकि इरादतन क़त्ल के सदृश क़त्ल में भारी दियत है।

अबू-दाऊद की एक रिवायत से मालूम होता है कि नबी (सल्ल॰) के समय में दियत (के ऊँटों) का मूल्य आठ सौ दीनार या आठ हज़ार दिरहम था और अहलुल-कताब (अर्थात् ज़िम्मी या जिससे कोई संधि या समझौता हुआ हो) की दियत मुसलमानों से आधी थी। इसी पर अमल होता रहा यहाँ तक कि जब हज़रत उमर (रज़ि॰) ने अपनी ख़िलाफ़त के समय में कहा कि निर्धारित ऊँटों का मूल्य अधिक हो गया है। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने दियत एक हज़ार दीनार या बारह हज़ार दिरहम निश्चित कर दी, लेकिन कुछ रिवायतों से मालूम होता है कि स्वयं नबी (सल्ल॰) ने क़त्ल की दियत बारह हज़ार दिरहम बताई है।

(हदीस : नसई, इब्ने-माजा, तिरमिज़ी, अबू-दाऊद)

(13) हज़रत अम्र-बिन-शुऐब अपने बाप से और वे दादा से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति किसी का इरादतन क़त्ल कर दे तो उसे मृतक के वरिसों के हवाले कर दिया जाएगा। अब वे चाहें तो उसको क़त्ल कर दें या चाहें तो ख़ूँ-बहा (अर्थदण्ड) ले लें, और क़त्ल का ख़ूँ-बहा सौ ऊँटनियाँ हैं जिनमें तीस ऊँटनियाँ वे होंगी जो चौथे साल में दाख़िल हों और तीस वह जो पाँचवें साल में दाख़िल हों और चालीस ऊँटनियाँ गर्भवती हों और इसके अतिरिक्त जिस चीज़ पर समझौता हो जाए वे उसके हक़दार होंगे।" (हदीस : तिरमिज़ी)

व्याख्या : क़िसास के लिए एक शर्त यह है कि क़ातिल बुद्धि रखता हो और वयस्क हो। यदि वह अवयस्क है या पागल है तो चूँकि वह असमर्थ है इसलिए उसका क़िसास लागू न होगा। क्योंकि नबी (सल्ल॰)

ने अवयस्क, पागल और नींद में सोए हुए व्यक्ति को क़ानून की पकड़ से बरी क़रार दिया है। (हदीस : इब्ने-माजा)

क़िसास के लिए एक महत्वपूर्ण शर्त यह भी है कि क़ातिल मक़तूल का पिता या माँ या दादा-दादी न हो। क्योंकि नबी (सल्ल॰) ने कहा है, "पिता को उसकी सन्तान के बदले में क़त्ल न किया जाए।"

(हदीस : मुसनद अहमद, तिरमिज़ी)

यदि मक़तूल (निहत) के वारिस ख़ूँ-बहा (अर्थदण्ड) लेने पर राज़ी हो जाते हैं तो क़ातिल को छोड़ दिया जाएगा। उसे क़त्ल नहीं किया जाएगा।

इस सिलसिले में यह भी ध्यान रहे कि यदि निहत के वारिस इस पर सहमत हैं कि क़िसास लिया जाए, लेकिन उनमें से एक ने क़ातिल को क्षमा कर दिया तो क़िसास नहीं लेंगे।

जिस किसी ने किसी को इरादतन क़त्ल किया है तो दियत उसके माल में से दिलाएँगे। और अगर क़त्ल इरादतन के सदृश है या ग़लती से हो तो दियत 'आक़िला' पर है। ग़लती से होनेवाले क़त्ल पर नबी (सल्ल॰) ने क़त्ल करनेवाले की आक़िला पर दियत का फ़ैसला किया है। आक़िला उस जमाअत को कहेंगे जिसके सदस्य उसकी ओर से दियत अदा करेंगे। इसमें उसके बाप, दादा, भाई, भतीजे और चचा व चचेरा भाई शामिल हैं। प्रत्येक अपनी हैसियत के अनुसार अदा करेगा। तीन वर्ष की अवधि में दियत की क़िस्तें अदा करनी होंगी। प्रति वर्ष दियत का एक तिहाई अदा करेंगे। यह अलग बात है कि एक साथ ही पूरी दियत एक बार में अदा कर दी जाए।

(14) हज़रत अली (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "क़िसास और दियत में सब मुसलमान बराबर हैं। और एक साधारण मुसलमान भी अमान दे सकता है और दूरवाला मुस्लिम

भी हक़ रखता है और सारे मुसलमान अपने ग़ैर के मुक़ाबले में एक हाथ की तरह हैं। सावधान! किसी ग़ैर-मुस्लिम के बदले में मुसलमान को क़त्ल न किया जाए और न उसको जिससे संधि और समझौता हो, जब तक कि वह संधि का पालन कर रहा हो।" (हदीस : अबू-दाऊद, नसई, इब्ने-माजा)

व्याख्या : "सब मुसलमान बराबर हैं" मतलब यह है कि क़िसास और अर्थदण्ड लेने-देने में सब मुसलमान बराबर हैं। इसमें उच्च और निम्न, विद्वान और अविद्वान, धनी और निर्धन या पुरुष और स्त्री में कोई अन्तर नहीं किया जाएगा। ऐसा नहीं किया जाएगा कि उच्च श्रेणी के व्यक्ति को निम्न श्रेणी के व्यक्ति के बदले में क़त्ल न किया जाए और न कम हैसियत के व्यक्ति के ख़ूँ-बहा (अर्थदण्ड) की मात्रा इसलिए कम की जाएगी कि वह बड़ी हैसियत नहीं रखता।

मुसलमानों में से कोई व्यक्ति चाहे वह ग़ुलाम हो या वह स्त्री ही क्यों न हो, अगर वह किसी ग़ैर-मुस्लिम को अमान दे दे तो सारे ही मुसलमान उसको मान्यता देंगे।

(15) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति लोगों के बीच पथराव या कोड़ों और लाठियों की अन्धाधुन्ध मार में मारा जाए (और क़ातिल का पता न चल सके) तो उसकी गणना क़त्ले-ख़ता (ग़लती से की गई हत्या) में की जाएगी और इसका अर्थदण्ड क़त्ले-ख़ता का अर्थदण्ड ही लिया जाएगा, और जो व्यक्ति इरादतन क़त्ल किया गया तो उसका क़िसास देना अनिवार्य है। और जो व्यक्ति क़िसास लेने में रुकावट खड़ी करे उसपर अल्लाह की लानत और उसका प्रकोप है। न उसकी तौबा (प्रायश्चित) क़बूल होगी और न फ़िदया क़बूल होगा।" (हदीस : अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : मतलब यह है कि अगर दो विरोधी गरोह परस्पर लड़ रहे हैं और दोनों ही ओर से पथराव हो रहा है। एक व्यक्ति ऐसी जगह घिर जाता है और अचानक उसे पत्थर लगता है और उसकी मृत्यु हो जाती है तो इसकी गणना क़त्ले-ख़ता में होगी। इसमें क़िसास की जगह दियत अनिवार्य होगी और दियत भी वह जो क़त्ले-ख़ता में वाजिब होती है।

(16) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "(दियत की दृष्टि से) सारी उँगलियाँ बराबर हैं और दाँत-दाँत के बराबर हैं और आगे के दाँत और दाढ़ें बराबर हैं। और (अँगूठे और छोटी उँगली की ओर संकेत करके कहा) ये और ये बराबर हैं।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : क़त्ल की दियत एक सौ ऊँट या एक हज़ार मिसक़ाल सोना या बारह हज़ार दिरहम चाँदी होगी या दो सौ गाय या दो हज़ार भेड़-बकरियाँ। और अगर क़त्ल इरादतन क़त्ल के सदृश है तो दियत मुग़ल्लज़ा (भारी) होगी अर्थात् सौ ऊँट जिनमें चालीस गर्भवती ऊँटनियाँ भी होंगी। क़त्ले-ख़ता हो तो उसकी दियत भारी नहीं बल्कि दियते-नख़्स है। अर्थात् एक सौ ऊँट, उनमें से चालीस पाँच से नवें साल तक की गर्भवती ऊँटनियाँ शामिल होंगी।

इस हदीस में अंगों की दियत का वर्णन किया गया है। उल्लेखों से मालूम होता है कि नाक अगर पूरी कट गई तो दियत पूरी देनी होगी। इसी प्रकार जीभ और होंठों, अंडकोश और जनांग (लिंग) में पूरी दियत है। पीठ और दोनों आँखों में भी दियत पूरी है। एक आँख, एक कान, एक हाथ, एक पाँव, एक होंठ और एक अंडकोश पर आधी दियत है। एक उँगली के कटने में दस ऊँट दियत है। तिरमिज़ी में है : "हाथों और पाँवों की उँगलियों की दियत बराबर है, हर उँगली के लिए दस ऊँट।" प्रत्येक दाँत की दियत पाँच ऊँट हैं।" (अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, नसई)। हड्डी प्रकट हो जानेवाले घावों की दियत पाँच ऊँट हैं।

(अबू-दाऊद, तिरमिज़ी, नसई) हड्डी तोड़नेवाले ज़ख्म में नबी (सल्ल०) ने दियत दस ऊँट वाजिब किए हैं। अन्य विवरणों के लिए हदीसों और फ़िक़ह की किताबों का अध्ययन करें।

(17) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि०) से उल्लिखित है, वे बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना कि "जो व्यक्ति अपने माल की रक्षा करते हुए मारा जाए वह शहीद है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

(18) हज़रत सईद-बिन-ज़ैद (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जो व्यक्ति अपने दीन की रक्षा करता हुआ मारा जाए वह शहीद है, जो व्यक्ति अपने प्राण की रक्षा करता हुआ मारा जाए वह भी शहीद है, जो अपने माल की रक्षा में मारा जाए वह भी शहीद है और जो व्यक्ति अपने परिजनों की रक्षा करता हुआ मारा जाए वह भी शहीद है।"

(हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, नसई)

व्याख्या : मालूम हुआ कि सिर्फ़ दीन और ईमान ही की रक्षा के लिए लड़ना आवश्यक नहीं है बल्कि अपने प्राण या अपने धन या अपने परिजनों को कोई ख़तरा पेश आ गया हो तो इस सिलसिले में भी शत्रु से मुक़ाबला करना ज़रूरी है। इस मुक़ाबले में अगर कोई व्यक्ति मारा जाता है तो ख़ुदा के यहाँ उसकी गणना शहीदों में होगी।

(19) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "किसी को आग की यातना देने का अधिकार केवल अल्लाह ही को है।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् दण्ड के रूप में किसी को आग में जलाना वैध नहीं है। आग की यातना देने का अधिकार केवल अल्लाह ही को प्राप्त है। वही काफ़िरों और अपने विद्रोही और उद्दण्ड लोगों को आग की यातना देगा।

(20) हज़रत इमरान-बिन-हुसैन (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) सदक़ा (देने) की हमें प्रेरणा देते थे और मुसला से हमें रोकते थे। (हदीस : अबू दाऊद, नसई)

व्याख्या : अर्थात् सदक़े की प्रेरणा के साथ-साथ नबी (सल्ल०) इससे रोकते थे कि दुश्मन का मुसला (मृतक का अंग-भंग) किया जाए। मालूम हुआ कि मारे गए शत्रु की नाक या कान आदि अंगों को काटकर उसका चेहरा बिगाड़ना वैध नहीं है। यह एक अमानवीय और अप्रिय कृत्य है जो किसी सभ्य जाति को शोभा नहीं देता।

(21) हज़रत उसामा-बिन-शरीक (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "जो व्यक्ति समय के इमाम (शासक) के विरुद्ध विद्रोह करे ताकि इस प्रकार वह मेरी उम्मत में फूट डाले तो उसकी गरदन उड़ा दो।" (हदीस : नसई)

व्याख्या : इमाम अर्थात् शासक वास्तव में मुस्लिम समुदाय की एकता और संगठन का मूल अंग होता है। इसलिए उसके विरुद्ध विद्रोह करना समुदाय में फूट डालने के सदृश है। इमाम और शासक अगर इस्लामी शिक्षाओं की अपेक्षाएँ पूरी करता है और समस्त मुसलमान उसके नेतृत्व में संगठित रहते हैं तो वे विरोधी और इस्लाम की शत्रु शक्तियों का आसानी से मुक़ाबला कर सकते हैं। इस प्रकार इस्लाम का गौरव उनके द्वारा क़ायम रहता है। अब अगर कोई अनाधिकृत रूप से विद्रोह करता है तो वास्तव में वह सबसे पहले समुदाय की एकता को क्षति पहुँचाता और अम्न व शान्ति की जगह अशान्ति और बिगाड़ पैदा करना चाहता है। इसलिए यदि कोई विद्रोह या उद्दण्डता की नीति अपनाता है और कोशिश के बावजूद वह अपनी इस हरकत से बाज़ नहीं आता और उसको राह पर लाने के सारे ही प्रयास असफल रहते हैं तो फिर उसकी गरदन मार दी जाएगी। इसलिए कि उसका अस्तित्व

अब मात्र बुराई होकर रह गया है, जिसके जीवित रहने का औचित्य किसी प्रकार शेष नहीं रहा।

(22) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) बयान करते हैं कि मैंने अबुल-क़ासिम (नबी सल्ल.) को यह कहते हुए सुना : "जो व्यक्ति अपने ग़ुलाम पर व्यभिचार का दोषरोपण करे और वह निर्दोष हो तो क़ियामत के दिन उस व्यक्ति को कोड़े लगाए जाएँगे सिवाय इसके कि वह ग़ुलाम ऐसा ही हो जैसा कि कहा गया।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

व्याख्या : किसी पर व्यभिचार का दोषारोपण करना 'क़ज़फ़' कहलाता है। यह बड़े गुनाहों में से है कि किसी को बिना प्रमाण के व्यभिचार या बदकारी का आरोपी ठहराया जाए। क़ुरआन में है कि "जो लोग पाकदामन स्त्रियों पर लाँछन लगाएँ, फिर चार गवाहों को न लाएँ तो उन्हें अस्सी कोड़े मारो और कभी भी उनकी गवाही स्वीकार न करो। वही हैं जो अवज्ञाकारी हैं।" (क़ुरआन, 24:4)

इस आयत से सिद्ध है कि क़ज़फ़ की हद (दण्ड) अस्सी कोड़े हैं। मुसलमानों की इज़्ज़त और प्रतिष्ठा की रक्षा आवश्यक है। समाज में अश्लीलता को बढ़ावा न मिले। मुस्लिम समाज हर प्रकार की अश्लीलता से मुक्त हो। इसलिए व्यभिचार के आरोप को अत्यन्त भारी बात ठहराया गया ताकि कोई क़ज़फ़ को साधारण बात न समझे और बिना सुबूत और गवाहों के कदापि किसी पर व्यभिचार का मिथ्यारोपण न करे।

क़ुरआन ने व्यभिचार को अश्लीलता और बुरी राह ठहराया है और व्यभिचारी और व्यभिचारिणी में से प्रत्येक को सौ कोड़े मारने का आदेश दिया है (क़ुरआन, 24:2)। इस्लामी समाज की पवित्रता की रक्षा और मुसलमानों के शरीर और आत्मा की पवित्रता और उनकी प्रतिष्ठा इस्लामी क़ानूनों के मूल उद्देश्यों में से है। इसके अतिरिक्त वंश को

संदिग्ध होने से बचाने के लिए भी यह आवश्यक था कि व्यभिचार को एक जघन्य अपराध ठहराया जाए।

ग़ुलाम और लौंडी यदि व्यभिचार के दोषी होते हैं तो उन्हें भी कोड़ों की सज़ा दी जाएगी। लेकिन उन्हें केवल पचास कोड़ों की सज़ा दी जाएगी। क़ुरआन में है : "जो सज़ा स्वतन्त्र स्त्रियों के लिए है उसकी आधी उनके लिए होगी" (4:25)। समाज में स्वतन्त्र स्त्रियों और पुरुषों को जो पारिवारिक और सामाजिक सुरक्षा और सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं वे लौंडी और ग़ुलाम को प्राप्त नहीं होतीं। इसलिए अल्लाह ने उनकी सज़ा स्वतन्त्र की अपेक्षा आधी रखी है।

(23) हज़रत वायल-बिन-हुज्र (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) के समय में एक स्त्री के साथ ज़बरदस्ती की गई (अर्थात उसके साथ बलात्कार किया गया) तो आप (सल्ल॰) ने उस स्त्री को हद से मुक्त कर दिया लेकिन उस व्यभिचारी व्यक्ति पर हद जारी की। रावी ने इसका उल्लेख नहीं किया कि आपने उसे महर भी दिलवाया। (हदीस : तिरमिज़ी)

व्याख्या : स्त्री के साथ चूँकि ज़बरदस्ती की गई थी, इसलिए उसे सज़ा से मुक्त कर दिया गया। और व्यभिचारी पर हद जारी की गई। महर का उल्लेख न करने से यह अनिवार्य नहीं होता कि इस स्थिति में महर वाजिब नहीं। दूसरी हदीसों से मालूम होता है कि जिस स्त्री के साथ बलात्कार किया गया हो उसे महर मिलना चाहिए। इस हदीस में शब्द "महर" से तात्पर्य 'उक्र' है। बलात्कार की स्थिति में जो धनराशि स्त्री को दिलाई जाती है उसे उक्र कहते हैं। उक्र की राशि औरत के महरे-मिस्ल (पुरुष के ददिहाल में उसकी फूफी या उसकी चचेरी बहनों का जो महर प्रचलित हो उसे महरे-मिस्ल कहते हैं) के बराबर क़रार देते हैं।

(24) हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह अनसारी (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि असलम क़बीले का एक व्यक्ति अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के पास आया और उसने बयान किया कि उसने व्यभिचार किया है और अपने-आप पर चार गवाहियाँ दीं (अर्थात् चार बार अपने गुनाह को स्वीकार किया)। उसे अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने संगसार करने (पत्थर मारकर मार डालने) का आदेश दिया। अतएव वह संगसार कर दिया गया। वह व्यक्ति विवाहित था।

(हदीस : बुख़ारी)

(25) हज़रत ख़ालिद हज़रत शैबानी से रिवायत करते हैं। वे बयान करते हैं कि मैंने अब्दुल्लाह-बिन-औफ़ा से पूछा कि क्या अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने रज्म (संगसार करने) की सज़ा दी है? उन्होंने कहा कि हाँ। मैंने पूछा कि सूरा नूर के उतरने से पहले या उसके पश्चात्? उन्होंने कहा कि मैं नहीं जानता। (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अधिकांश विद्वानों के मतानुसार सूरा नूर की आयत में कोड़े की जो सज़ा बयान हुई है वह वास्तव में अविवाहित व्यभिचारी या व्यभिचारिणी की सज़ा है। यह दण्ड विवाह के बाद व्यभिचार करनेवाले की सज़ा नहीं है, जो इस्लामी क़ानून की निगाह में घोर अपराध है। सूरा नूर की आयत में जो आदेश उल्लिखित है वह वास्तव में उस वादे के तहत बयान हुआ है जो वादा सूरा निसा, आयत 15 में किया गया था, अर्थात् अविवाहित लोगों के व्यभिचार करने पर सज़ा का निर्धारण। रहा यह प्रश्न कि विवाहित लोगों के व्यभिचार करने पर इस्लाम में क्या सज़ा है? तो इसका ज्ञान क़ुरआन से नहीं हदीस से हासिल होता है कि विवाह के बाद व्यभिचार करने की सज़ा रज्म अर्थात् संगसार करना है। नबी (सल्ल॰) ने स्वयं यह सज़ा दी है और ख़ुलफ़ाए-राशिदीन ने भी इसे क़ानूनी सज़ा ठहराया है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार संगसार की सज़ा की क़ानूनी बुनियाद स्वयं क़ुरआन में मौजूद है। क़ुरआन में है : "जो लोग अल्लाह और उसके रसूल से लड़ते हैं और धरती में बिगाड़ पैदा करने के लिए दौड़-धूप करते हैं, उनका बदला बस यही है कि बुरी तरह क़त्ल किए जाएँ या सूली पर चढ़ाए जाएँ या उनके हाथ और उनके पाँव विपरीत दिशाओं से काट डाले जाएँ या उन्हें देश से निकाल दिया जाए।"

(क़ुरआन, 5:3)

धरती में बिगाड़ का मतलब है शान्ति और व्यवस्था को भंग करना। इसमें क़त्ल, डकैती, अपहरण और व्यभिचार आदि सम्मिलित हैं। इस प्रकार के घोर अपराधों से निबटने के लिए हुकूमत अपराधियों को सख़्त और शिक्षाप्रद दण्ड देने का अधिकार रखती है। रज्म अर्थात् संगसार करना भी क़त्ल करने के अर्थ में शामिल है।

कुछ विद्वानों की दृष्टि में रज्म (संगसार करने) की हैसियत हद की नहीं बल्कि ताज़ीर की है। उनके मतानुसार हर प्रकार के व्यभिचार की हद तो वही है जो क़ुरआन में बयान हुई है। अलबत्ता इस्लामी शासन व्यभिचार करने पर रज्म की सज़ा ताज़ीर के तौर पर दे सकता है।

(26) हज़रत राफ़ेअ-बिन-ख़दीज (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) से बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "पेड़ पर लगे हुए फलों और खजूर के सफ़ेद गाभे की चोरी में हाथ नहीं काटा जाएगा।"

(हदीस : मालिक, तिरमिज़ी, अबू-दाऊद, नसई, इब्ने-माजा)

व्याख्या : चोरी गुनाहे-कबीरा (बड़ा गुनाह) है। क़ुरआन में है : "और चोर चाहे पुरुष हो या स्त्री दोनों के हाथ काट दो। यह उनकी कमाई का बदला है और अल्लाह की ओर से शिक्षाप्रद दण्ड। अल्लाह प्रभुत्वशाली, अत्यन्त तत्त्वदर्शी है।" (क़ुरआन, 5:38)

नबी (सल्ल०) कहते हैं, "उस सत्ता की क़सम, जिसके हाथ में मेरे प्राण हैं, यदि मुहम्मद की बेटी फ़ातिमा भी चोरी करती तो मैं उसका हाथ काट देता।" (हदीस : मुस्लिम)

असुरक्षित माल उठाने पर हाथ नहीं काटा जाएगा। जिस माल का मूल्य चौथाई दीनार से कम हो उसमें भी हाथ काटने का दण्ड नहीं है। वृक्ष के फल और खजूर के ख़ुरमा में भी हाथ काटने की सज़ा नहीं है। अगर खाने के अतिरिक्त कोई अपने साथ ले जाता है तो फल की दो गुनी क़ीमत उससे वुसूल करेंगे और शिष्टाचार सिखाने के लिए उसे मारा भी जाएगा। अतः हदीस में है : "जो व्यक्ति फल खा लेता है और उठाकर नहीं ले जाता तो उसपर कुछ नहीं और जो साथ ले जाए उसे दुगुनी क़ीमत अदा करनी होगी। और सबक़ सिखाने के लिए उसकी पिटाई करेंगे और जो फल को सुरक्षित स्थान से उठाता है, उसका हाथ काटा जाएगा, अगर उसकी क़ीमत ढाल की क़ीमत के बराबर हो।"

(हदीस : अहमद, नसई, इब्ने-माज़ा तिरमिज़ी)

हनफ़ी उलमा ने ढाल की क़ीमत दस दिरहम निर्धारित की है। उनका मत यह है कि हाथ काटने की सज़ा उसी पर लागू की जाएगी जिसने कम से कम दस दिरहम मूल्य के माल की चोरी की हो। बुख़ारी व मुस्लिम की एक रिवायत में ढाल की क़ीमत तीन दिरहम बताई गई है। इसके विषय में हनफ़ी उलमा का कहना यह है कि वास्तव में यह हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि०) का क़ियास है। कुछ दूसरी रिवायतों में ढाल की क़ीमत का उल्लेख दस दिरहम किया गया है।

यहाँ यह बात भी सामने रहे कि अगर मालवाला व्यक्ति मामला हाकिम के पास ले जाने से पहले चोर को क्षमा कर देता है तो फिर उसका हाथ नहीं काटा जाएगा। किन्तु हाकिम के पास मामला पेश हो जाने के बाद कोई सिफ़ारिश लाभदायक नहीं हो सकती।

(27) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि.) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) के पास एक व्यक्ति को लाया गया जिसने शराब पी थी। आप (सल्ल.) ने कहा, "इसे मारो।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : शराब कम हो या अधिक, उसका पीना हराम है। इस्लामी शरीअत की दृष्टि में दीन और धर्म ही नहीं, बुद्धि और विवेक, शरीर और धन प्रत्येक चीज़ मूल्य रखती है। शराब को हराम ठहराने से इन सबकी सुरक्षा होती है। क़ुरआन में है, "ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! यह मदिरा और जुआ और देवस्थान और पाँसे तो गन्दे शैतानी काम हैं। अतः तुम इनसे अलग रहो ताकि तुम सफल हो। शैतान तो बस यही चाहता है कि मदिरा और जुए के द्वारा तुम्हारे बीच शत्रुता और द्वेष पैदा कर दे और तुम्हें अल्लाह की याद और नमाज़ से रोक दे! तो क्या तुम बाज़ न आ जाओगे?" (क़ुरआन, 5:90,91)

मालूम हुआ कि मदिरा और जुए आदि से लोक और परलोक दोनों की हानि है। नमाज़ और ईश-स्तुति के आनन्द से भी इनसान वंचित हो जाता है और उससे सामाजिक बुराइयाँ अलग उत्पन्न होकर रहती हैं।

शराब (मदिरा) की हद को लागू करने के लिए आवश्यक है कि शराब पीनेवाला मुसलमान हो, वयस्क हो, बुद्धि और अधिकार रखता हो। वह बीमार भी न हो। दण्ड देते समय मौसम सख़्त न हो, बल्कि संतुलित हो। कोड़े इस तरह मारे जाएँ कि शरीर के विभिन्न भागों पर चोट आए। शरीर के किसी एक ही भाग पर कोड़े न मारें। जो नशा हद को वाजिब करता है वह यह है कि आदमी धरती और आकाश के बीच अन्तर न कर सके। इमाम अबू-युसूफ़ (रह.) और इमाम मुहम्मद (रह.) के मतानुसार नशे से अभिप्रेत यह है कि आदमी नशे की हालत में उल्टा-सीधा और औल-फौल बकने लग जाए। हनफ़ी उलमा का फ़तवा इसी पर है।

(28) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "जब तुममें से कोई व्यक्ति (किसी अपराधी को सज़ा के तौर पर) मारे तो उसको चाहिए कि वह उसके मुँह को बचाए।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : चेहरा बहुत ही नाज़ुक अंग होता है। इसलिए चेहरे पर मारने से रोका जा रहा है। चेहरे पर चोट लगाने से चेहरा घायल हो सकता है और इसकी अधिक सम्भावना है कि वह कुरूप हो जाए। फिर तो यह एक प्रकार से मुसला करना हुआ जो किसी प्रकार वैध नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त मनुष्य का आदर यथासम्भव अनिवार्य होता है और हम जानते हैं कि मनुष्य के व्यक्तित्व का दर्पण उसका चेहरा ही होता है। एक रिवायत में है कि अल्लाह ने इनसान को अपने स्वरूप पर पैदा किया है। इसलिए अगर किसी को मारना हो तो उसके मुँह पर न मारो। इनसान किसी महान सत्ता के मुखारबिन्द का मात्र प्रतिबिम्ब है। इस सत्य को सदैव ध्यान में रखना चाहिए।

(29) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "मस्जिदों में हदें (सज़ाएँ) जारी न की जाएँ और न औलाद के (क़त्ल के) बदले में बाप को क़त्ल किया जाए।"

(हदीस : तिरमिज़ी, दारमी)

व्याख्या : अर्थात् मस्जिदें नमाज़ और अल्लाह की याद आदि के लिए हैं। मस्जिदों में न तो किसी को कोई दण्ड दिया जाए और न क़िसास के तौर पर किसी को क़त्ल किया जाए।

माँ-बाप अगर अपनी सन्तान को क़त्ल कर दें तो क़िसास के तौर पर उनको क़त्ल नहीं किया जाएगा। इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰), इमाम शाफ़िई (रह॰) और इमाम अहमद (रह॰) का मत यही है। इस सिलसिले में इमाम मालिक (रह॰) का कथन यह है कि अगर बाप ने बेटे को

तलवार से क़त्ल किया है तो उससे क़िसास न लिया जाएगा लेकिन अगर बाप ने बेटे को ज़िबह किया है तो इस स्थिति में क़िसास के तौर पर बाप को क़त्ल किया जा सकता है। यहाँ यह ध्यान रहे कि इस सिलसिले में माँ के सम्बन्ध में भी अदेश वही है जो बाप के सम्बन्ध में है। दादा, दादी और नानी भी माता-पिता के अन्तर्गत आते हैं।

अपनी ही सन्तान को क़त्ल करना एक प्रकार से स्वयं अपने आपको क़त्ल करना है। सन्तान को क़त्ल करके आदमी ख़ुद अपने को ही महान क्षति पहुँचाता है। यह क्षति स्वयं एक बड़ा दण्ड है। इसलिए अगर वह अपनी सन्तान को क़त्ल करता है तो उससे दियत या माली मुआवज़ा ले लेंगे, उसे क़त्ल नहीं करेंगे।

अध्याय - 3

धर्म की स्थापना

धर्म की स्थापना

इस्लाम एक पूर्ण धर्म है जिसे मानवता के मार्गदर्शन के लिए जगत्-सृष्टा ने निर्धारित किया है। यह धर्म (दीन) चूँकि पूर्ण है, इसलिए मानव के सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्ध रखता है। जीवन के किसी विभाग में भी वह इनसानों को मार्गदर्शन से वंचित नहीं करता। विचार एवं धारणा का विषय हो या पूजा और आराधना का, या इनसान की आर्थिक व राजनीतिक समस्याएँ हों या सामाजिक न्याय की समस्या हो, वह जीवन के प्रत्येक विभाग में हमारा सही मार्गदर्शन करता है। इस्लाम वास्तव में दीन के पूर्ण अर्थों में दीन (धर्म) है। इसे हम मात्र पूजा-पाठ का दीन नहीं कह सकते। इसकी अपनी सामाजिक व्यवस्था भी है और आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था भी। तथ्य यह है कि मानव-जीवन एक पूर्ण इकाई की हैसियत रखता है। इसके सारे ही विभाग परस्पर एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। उनमें से किसी एक को भी अलग नहीं किया जा सकता। इस्लाम अल्लाह की पूर्ण आज्ञाकारिता और बन्दगी का नाम है। यह आज्ञाकारिता और बन्दगी जीवन के प्रत्येक मामले में अपेक्षित है। हम उस व्यक्ति को ख़ुदा का आज्ञाकारी नहीं कह सकते जो अल्लाह पर ईमान तो रखता है, उसके आगे अपना सिर भी झुकाता है, लेकिन जीवन के मामलों में चाहे वह लेन-देन और व्यापार का मामला हो या रहन-सहन और एक-दूसरे के अधिकारों के मामले हों, या शासन-व्यवस्था की समस्याएँ हों, वह उन सारे मामलों में अपने को आज़ाद समझता है। उसे कदापि अल्लाह का वफ़ादार और आज्ञाकारी बन्दा नहीं कहा जा सकता। अल्लाह का आज्ञाकारी बन्दा तो वही होगा जो जीवन के हर क्षेत्र में और जीवन के सभी मामलों में अल्लाह के

आदेश का पाबन्द हो। अल्लाह ने चूँकि जीवन के सभी मामलों में वह्य के द्वारा हमारा मार्गदर्शन किया है, इसलिए जीवन के किसी क्षेत्र में अगर इनसान उसकी अवज्ञा करता है तो अल्लाह के यहाँ उसकी गणना उसके अवज्ञाकारियों और विद्रोहियों में होगी।

अल्लाह ने अपना दीन यूँ ही निरुद्देश्य नहीं उतारा है। उसने तो इसे इसलिए उतारा है कि लोग उसका पालन करके दुनिया को शान्तिमय बना दें। कहीं भी और किसी भी विभाग में अन्याय शेष न रहे। अल्लाह के न्याय पर आधारित जीवन-प्रणाली को अपनाएँ और इसे अपना परम कर्तव्य समझें।

क़ुरआन पूर्णतः अल्लाह के दीन ही को प्रस्तुत करता है। इसलिए हम देखते हैं कि क़ुरआन से मनुष्य को केवल यही नहीं कि उसे अपने स्रष्टा या जगत्-प्रभु का ज्ञान प्राप्त होता है, बल्कि उसके व्यावहारिक जीवन के लिए भी यह एक मार्गदर्शक ग्रंथ है। वह बताता है कि जीवन-पद्धति क्या है? न्याय व इनसाफ़ किसे कहते हैं? वह कौन-सी नीति है जो अल्लाह की दृष्टि में पथभ्रष्टता, उद्दण्डता और सर्वथा अन्याय और बिगाड़ है। अल्लाह को उपद्रव और बिगाड़ तथा अन्याय की नीति कदापि पसन्द नहीं। वह स्वयं न्यायप्रिय है। न्याय को पसन्द करता है। अन्याय और अत्याचार को सहन नहीं कर सकता।

अल्लाह मनुष्य को नैतिकता, चारित्र्य और आध्यात्मिकता के शिखर पर देखना चाहता है, उस उच्चता पर जिससे बढ़कर हम किसी उच्चता की कल्पना भी नहीं कर सकते। वह हमारे हृदयों को हर प्रकार की गन्दगी से मुक्त और उत्तम भावनाओं और अनुभूतियों से सुसज्जित देखना चाहता है। ख़ुदा ख़ुद दानशील है। वह चाहता है कि मनुष्य दानशीलता और उदारता की अपनी पहचान बनाए। अल्लाह के नाम व गुण जिनका उललेख क़ुरआन में विस्तार से किया गया है, मानव-जीवन के लिए दर्पण हैं। अल्लाह अपने गुणों की प्रतिछाया मानव-जीवन में

देखना चाहता है। अपने और अल्लाह के बीच अनुकूलता पैदा करना और इस अनुकूलता को स्थिर रखना ही सर्वोतम और शुभ जीवन प्रणाली है, जिसमें भलाई भी है और सौन्दर्य का सम्बन्ध भी उसी से है, और अमृत्व भी इसी से प्राप्त हो सकता है। शान्ति और हृदयानन्द का रहस्य भी इसी में निहित है। एक मौलिक विश्वव्यापी सिद्धान्त (Universal settled order) की तलाश में दुनिया के बड़े-बड़े विद्वान और चिन्तक भटकते रहे हैं चाहे उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हुई हो या न हुई हो। भारत के ऋषियों ने इसे ऋतम की संज्ञा से अभिहित किया। चीन के लाउत्से ने इसको ताओ (Tao) कहा। कभी यहाँ अल्लाह के और अपने मध्य समानता (Similarity) पैदा करने की बात कही गई। लेकिन सत्य और हर प्रकार की अतिशयता व संकीर्णता से मुक्त धारणा अनुकूलता की धारणा है। अर्थात् अपने और अल्लाह के मध्य ऐसी अनुकूलता बनाना जिसमें किसी प्रकार की विषमता, टकराव और संघर्ष की कोई गुंजाइश बाक़ी न रहे। बन्दों का जीवन ईश्वरेच्छा के साँचे में बिलकुल ढल जाए। क़ुरआन में है—

> "कह दो, मैं तो बस उसी का अनुसरण करता हूँ जो मेरे रब की ओर से मेरी ओर प्रकाशना की जाती है, यह तुम्हारे रब की ओर से अन्तर्दृष्टियों का प्रकाशपुंज है और ईमान लानेवालों के लिए मार्गदर्शन और दयालुता है।"
>
> (क़ुरआन, 7:203)

मतलब यह है कि क़ुरआन केवल ज्ञान एवं चिन्तन की समस्याओं ही में तुम्हारा मार्गदर्शन नहीं करता बल्कि वह व्यवहार-नीति की भी शिक्षा देता है। और इसका परिणाम सर्वथा दयालुता है।

फिर क़ुरआन अपने अनुयायियों को जिस पद पर देखना चाहता है वह यह है कि "ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, अल्लाह के लिए गवाही देते हुए दृढ़तापूर्वक न्याय पर जमे रहो।" (क़ुरआन, 4:135)

एक अन्य जगह कहा, "और इसी प्रकार हमने तुम्हें एक दरमियानी उम्मत समुदाय बनाया है ताकि तुम समस्त मनुष्यों पर गवाह हो, और रसूल तुमपर गवाह हो।" (क़ुरआन 2:143)

समस्त मनुष्यों को सत्य से परिचित करना क़ुरआन के अनुयायियों का पदीय उत्तरदायित्व है। क़ुरआन की हैसियत "सम्पूर्ण मानव-जाति के लिए मार्गदर्शक" की है। उसे किसी एक भू-भाग या किसी विशेष जाति की चीज़ समझना ग़लत है। वह सम्पूर्ण जगत् पर जीवन का रहस्य खोलना चाहता है, वह सम्पूर्ण संसार को मर्मज्ञ और अभिज्ञ देखना चाहता है।

वह चाहता है कि मनुष्य जान ले कि उसका भाग्य क्या है? उसका स्थान और उसकी वास्तविक मंज़िल क्या है? वह जान ले कि शाश्वत जीवन, जिसकी कामना प्रत्येक दिल में रखी गई है, किस प्रकार प्राप्त होता है। मंनुष्य के लिए महाविनाश और घाटा किसमें है और उसके कल्याण और उसकी सफलता का वास्तविक अर्थ क्या होता है।

क़ुरआन बताता है कि सत्य और न्याय के पास अगर शक्ति और सत्ता नहीं तो अत्याचारी कभी भी सत्य के दीप को प्रज्वलित नहीं देख सकते। उनका प्रयास यही होगा कि जिस प्रकार भी सम्भव हो दीपक जलने न पाए और यदि कहीं जलने लगा हो तो उसे जिस प्रकार भी सम्भव हो बुझा दिया जाए। फिर न्याय और सत्य के पास यदि सत्ता और शक्ति नहीं तो सही अर्थों में वह मानवता की सेवा नहीं कर सकता। दुनिया में शक्ति और सत्ता का अधिकारी यदि कोई हो सकता है तो वह सत्य और न्याय-व्यवस्था ही हो सकती है। सत्ता अगर किसी के हाथ सौंपी जा सकती है तो वे वही लोग हो सकते हैं जो अज्ञान के स्थान पर ज्ञान और अन्याय एवं उद्दण्डता के बजाय सत्य, न्याय और इनसाफ़ के ध्वजावाहक हों। अत्याचारी और उद्दण्ड लोग जो ज़ुल्म और बिगाड़ पैदा करने के सिवा और कुछ भी नहीं जानते, जो मानवता के

अर्थ से अपरिचित हैं और जो सामान्य पशुओं के स्तर से भी नीचे गिरे हुए हैं, तत्काल लाभ, भौतिकवाद और भोग-विलास को जो जीवन की पराकाष्ठा समझते हैं, जिनके दिल इतने तंग और संकुचित हैं कि वे स्वयं अपने निकट सम्बन्धियों के साथ भी न्याय नहीं कर सकते, वे मानवता के मार्गदर्शक और सेवक कैसे बन सकते हैं? ऐसे लोगों के हाथ में यदि सत्ता और शक्ति है तो दुनिया में कभी भी सुख-शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती। क्या इसके साक्ष्य के लिए स्वयं वर्तमान युग पर्याप्त नहीं है?

सत्य धर्म अपने स्वभाव और प्रकृति की दृष्टि से पराभूत नहीं, प्रभुत्त्वशाली रहना चाहता है। सत्य यह है कि प्रभुता यदि उसकी प्रकृति न हो तो वह सत्य-धर्म ही नहीं है। आप स्वयं विचार कीजिए कि वह संगीत ही क्या है तरन्नुम से जिसे वैर हो, जिसे यह भय लगा हुआ हो कि कहीं कोई कान उसे सुन न ले और कहीं कोई व्यक्ति उसे पाकर गा न उठे। वह क़ानून वास्तव में क़ानून ही नहीं है जो लागू होना न चाहता हो। ठीक इसी प्रकार वह व्यक्ति सम्पूर्ण मानवता का हितैषी नहीं हो सकता जो सार्वभौमिक चिन्तन और दृष्टिकोण का वाहक न हो। मानवता का सम्बन्ध किसी क्षेत्र-विशेष और भू-भाग से नहीं है और न मानवता किसी विशिष्ट जाति, क़बीला या वंश का नाम है। न मानवता का सम्बन्ध किसी विशिष्ट भाषा के बोलनेवालों से है और न मानवता गोरे और काले का नाम है। जब तक हमारे चिन्तन में व्यापकता न आ जाए और वह सार्वभौमिक न हो जाए धरती से अन्याय, ज़ुल्म और फ़साद का उन्मूलन सम्भव नहीं है।

इस्लाम चूँकि अल्लाह का उतारा हुआ एक ऐसा धर्म है जो हर प्रकार के दोष से मुक्त है, जो सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। जिसकी शिक्षा न्याय है, अन्याय नहीं। जो त्याग और उत्सर्ग को पसन्द करता है। स्वार्थपरता, अहंकार और अभिमान को पसन्द नहीं करता। ईश-पूजा

के अतिरिक्त वह किसी भी प्रकार की पूजा को वैध नहीं ठहराता। अन्धी देशभक्ति और राष्ट्र-भक्ति ने दुनिया को जिस अन्याय, दमन और उग्रवाद से भर दिया है उससे कौन अपरिचित हो सकता है! इसलिए सत्यानुकूल और न्याय पर आधारित विचार और कर्म की प्रणाली वही हो सकती है जो हर प्रकार की संकीर्णता, अंधविश्वास और अज्ञान से हमें बचा सके। जो हमें एक ऐसे वातावरण में साँस लेना सिखा सके जहाँ अज्ञानपूर्ण पक्षपात न हो, संकीर्णता, अनुचित दबाव और अन्याय न हो, जहाँ आज़ादी पर ताले न डाले जाते हों। जहाँ किसी के साथ भी अन्याय न हो। जहाँ उन्नति के द्वार प्रत्येक के लिए खुले हों। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को सोचने, समझने और चिन्तन-मनन करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो। जहाँ आदमी इसके लिए स्वतंत्र हो कि यदि वह अविश्वास और नास्तिकता का जीवन त्यागकर आस्तिकता और ईश-भक्ति का जीवन व्यतीत करना चाहता हो तो उसकी राह में कोई रुकावट खड़ी करनेवाला न हो और स्वयं उसकी उच्च और पवित्र दृष्टि से लाभान्वित होने में लोगों के लिए कोई कठिनाई और बाधा न हो। किसी की नैसर्गिक स्वतंत्रता को छीन लेने का दुस्साहस कोई न कर सके। लोग सच्चाई को ख़ुली आँखों से देख सकें। कोई व्यक्ति भी अपने न्यायपरक निर्णय के कारण सताया न जा सके। अपने निजी व्यक्तित्व की हद तक तो आदमी स्वतंत्र हो कि यदि वह नरक में जाना चाहता हो तो नरक में जाने की उसकी स्वतंत्रता भी न छीनी जाए, लेकिन ज़बरदस्ती किसी को नरक की ओर ले जाने का अधिकार किसी को प्राप्त न हो।

ऊपर जो कुछ कहा गया वह यह समझने के लिए काफ़ी है कि धर्म की स्थापना और सत्य-धर्म का प्रभुत्व क्यों आवश्यक है और उसे शासक के रूप में देखने की इच्छा का औचित्य क्या है। यहाँ यह जान लेना भी आवश्यक है कि धर्म की स्थापना के लिए कोई ऐसा तरीक़ा अपनाया नहीं जा सकता जिसे अन्याय या अत्याचार कहा जा सके या

जो न्याय के विरुद्ध हो। जब सत्य स्वयं ही शान्ति व सुरक्षा का आवाहक है तो वह कोई ऐसा मार्ग नहीं अपना सकता जो खुद उसकी अपनी प्रकृति और स्वभाव के विपरीत हो। धर्म की स्थापना की स्वाभाविक और उचित कार्य-प्रणाली आमंत्रण और धर्म का प्रचार-प्रसार है। लोगों के ग़लत और अज्ञान पर आधारित विचार और धारणाओं को बदलने का प्रयास किया जाएगा और उन्हें बताया जाएगा कि अल्लाह के प्रिय बन्दे कैसे होते हैं? उनका व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन कैसा होता है? वे कितने शुभचिन्तक होते हैं? ऐसे लोगों का जीवन ही वास्तविक सौन्दर्य का दर्पण हो सकता है। और आख़िरत (परलोक) के अक्षय और आनन्दमय जीवन के वही अधिकारी होंगे। प्रभु की अवज्ञा का परिणाम कभी शुभ नहीं हो सकता। वह वास्तव में प्रभु के अवज्ञाकारियों का ठिकाना है जिसको जहन्नम या नरक से अभिहित किया जाता है। सत्य का सन्देश जिनके दिलों में उतर जाएगा, उनका जीवन बदल जाएगा। वे स्वयं सत्य के आवाहक बनकर जीना पसन्द करेंगे ताकि वे अल्लाह के बन्दों तक अल्लाह का सन्देश पहुँचाने का सौभाग्य प्राप्त कर सकें। फिर ऐसे सत्यप्रिय लोग यह भी नहीं पसन्द कर सकते कि वे अपनी धरती पर सत्य के स्थान पर असत्य का प्रभुत्व देखें। उनका समाज बिलकुल बदल जाएगा। यह एक ऐसा समाज होगा जहाँ अंधेरा टिक नहीं सकता। यह समाज जीवन की पूरी व्यवस्था को स्वयं बदल कर उसे सत्य धर्म के अनुकूल कर देगा। यह समाज कभी भी इसपर राज़ी नहीं हो सकता कि जीवन के किसी विभाग में अल्लाह के आदेशों की उपेक्षा की गई हो और प्रभु के आदेशों का उल्लंघन किया जा रहा हो।

मानवों के कल्याण और भलाई के लिए प्रयास और धर्म के लिए कार्यरत रहना ये दो बातें नहीं है। बल्कि दोनों एक हैं। मानव की सफलता प्रभु द्वारा प्रेषित दीन (धर्म) ही से जुड़ी हुई है। और उसकी असफलता और हानि अल्लाह के दीन से अपरिचित रहने में है। दीन के

प्रचार-प्रसार का अर्थ इसके सिवा और कुछ नहीं कि मानवों को वैचारिक और व्यावहारिक पथभ्रष्टता और लोक-परलोक के विनाश से बचा लिया जाए। वास्तव में वे सफल हों और जीवन के वास्तविक सौन्दर्य और आनन्द से वे परिचित हो सकें। यदि प्रभु की धरती में यह प्रयास किया जा रहा है तो समझिए कि प्रभु का धर्म स्थापित और जीवन्त है। हदीस से मालूम होता है कि ईमानवालों की एक जमाअत (समूह) इसके लिए सदैव प्रयास करती रहेगी यहाँ तक कि क़ियामत आ जाएगी। यदि लड़ना पड़ा तो वह जमाअत इससे पीछे न हटेगी। बुराई, अन्याय और बिगाड़ को मिटाने की शक्ति यदि प्राप्त है तो इस शुभ उद्देश्य के लिए शक्ति का प्रयोग ग़लत न होगा। क़ुरआन में है : "तुम्हें क्या हुआ है कि अल्लाह के मार्ग में और उन कमज़ोर पुरुषों, नारियों और बच्चों के लिए युद्ध न करो जो प्रार्थनाएँ करते हैं कि ऐ हमारे पालनहार, हमें इस बस्ती से निकाल जिसके लोग अत्याचारी हैं और हमारे लिए अपनी ओर से तू कोई समर्थक नियुक्त कर और हमारे लिए अपनी ओर से तू कोई सहायक नियुक्त कर।" (क़ुरआन, 4:75)

प्रत्येक युद्ध और लड़ाई को अनुचित नहीं कहा जा सकता। जो लड़ाई अन्याय को बढ़ावा देने के लिए नहीं बल्कि अन्याय को मिटाने के लिए हो और जो इसलिए हो कि सत्य के मार्ग की बाधाओं को दूर कर दिया जाए ताकि प्रभु का अनुसरण और उसकी बन्दगी की राह पर चलना लोगों के लिए आसान हो सके और कोई व्यक्ति इसलिए न सताया जाए कि वह प्रभु से विद्रोह की राह को छोड़कर प्रभु की प्रसन्नता की चाहत में जीवन व्यतीत करना चाहता है और उसके अपने मन में लोगों के प्रति शुभेच्छा के अतिरिक्त और कोई भावना नहीं पाई जाती।

धर्म का संस्थापन

(1) हज़रत अबू-मालिक अशअरी (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "निस्सन्देह अल्लाह ने तुम्हें तीन आपदाओं से बचा रखा है : यह कि तुम्हारा नबी तुमपर बद-दुआ नहीं करेगा कि तुम सब विनष्ट होकर रह जाओ और यह कि असत्यवादी कभी सत्यवादियों पर प्रभावी न होंगे और यह कि ऐसा न होगा कि तुम सब पथभ्रष्ट हो जाओ।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : सत्य धर्म को ईश्वर ने इसलिए अवतरित किया है ताकि इसके बाद दुनिया यह उज़्र न कर सके कि हमें तो सत्य का ज्ञान दिया ही नहीं गया, ईश्वर ने पैदा करके भटकने के लिए छोड़ दिया है। इनसान चैतन्य ही नहीं है बल्कि उसे चेतना के उच्च स्तर पर रखा गया है। उसे आत्म-प्रज्ञा (Self Consciousness) प्राप्त है। वह जानता है कि विश्व की सृष्टि और सृष्टि के उद्देश्य के विषय में उसके मन में विभिन्न प्रकार के प्रश्न उत्पन्न होते हैं जो अपना उत्तर चाहते हैं। ये प्रश्न ऐसे हैं जो सामान्य पशुओं के मन में नहीं उत्पन्न होते। सामान्य पशुओं की हैसियत जीवित मशीन की होती है। कल्पना एवं विचार की सूक्ष्मतम चेतना उनमें नहीं पाई जाती। वे जीते हैं और मर जाते हैं। न वे व्यक्तित्त्व की कोई धारणा रखते हैं और न उन्हें किसी स्रष्टा या वास्तविक सत्ता की कोई खोज है जिसके आगे वे आभार व्यक्त कर सकें और जिसकी चाहत और प्रेम उनके जीवन को लौकिक और भौतिक स्तर से ऊपर उठाकर उन्हें उच्चता के शिखर पर पहुँचा सके।

समान्य पशुओं की तरह मनुष्य के लिए केवल मूल प्रवृत्तीय मार्गदर्शन पर्याप्त नहीं है। मनुष्य को चेतना के स्तर पर स्पष्ट मार्गदर्शन की आवश्यकता है। दुनिया में इनसान की शारीरिक और भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो व्यवस्था पाई जाती है, वह

असाधारण है। फिर उसके वैचारिक और व्यावहारिक जीवन के लिए मार्गदर्शन की व्यवस्था क्यों न हो, जिससे इस जीवन को चार चाँद लग जाते हैं और उसे अपने उन सारे ही प्रश्नों के उत्तर सन्तोषजनक रूप में मिल जाते हैं जो जीवन और जगत् के सम्बन्ध में उसके मन में पैदा हो सकते हैं। अपने पैग़म्बरों के द्वारा अल्लाह चेतना के स्तर पर इनसानों का मार्गदर्शन करता रहा है। इस मार्गदर्शन के लिए उसने नबियों को भेजा और उनपर अपनी किताबें अवतरित कीं ताकि चेतना के स्तर पर मनुष्य के मार्गदर्शन की व्यवस्था हो सके और उसे सोचने-समझने और निर्णय करने का पूरा अवसर प्राप्त हो। फिर स्वेच्छापूर्वक वह चाहे तो उस मार्गदर्शन को स्वीकार कर ले और चाहे तो अस्वीकार कर दे। इसमें उसकी पात्रता और गुणग्राहकता की परीक्षा भी है।

प्रस्तुत हदीस में दी गई तीनों ही सूचनाएँ मौलिक महत्त्व रखती हैं। इन तीनों में से यदि एक असत्य हो तो फिर दुनियावालों पर हक़ की हुज्जत क़ायम न हो सकेगी अर्थात् उनके लिए उज्र करने का अवसर शेष रहेगा। सत्य धर्म के प्रतिनिधि ही अगर सब के सब विनष्ट हो जाएँ या सब के सब विनष्ट तो न हों किन्तु सत्य धर्म से उनका कोई नाता शेष न रहे या स्वयं सत्य धर्म किसी चरण में असत्य धर्म का मुक़ाबला करने से असमर्थ हो जाए, न उसके पास असत्य के मुक़ाबले में तर्क-शक्ति शेष रहे और न मानव-प्रकृति को सन्तुष्ट करने की उसमें क्षमता रह जाए और न वह अपने अनुयायियों को उच्चता और प्रभुत्व का मार्ग दिखा सके तो इस दशा में मानव के भटकने और सीधे मार्ग से दूर जा पड़ने को महा अपराध कहना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए हदीस में दी गई शुभ-सूचना अत्यन्त अर्थपूर्ण है। हदीस का आशय यह है कि सत्य के अनुयायियों को दुनिया से कोई क़ौम मिटा नहीं सकती। सत्य का दीपक हमेशा जलता रहेगा। यह लोगों का अपना दोष होगा कि प्रकाश के होते हुए अन्धेरों में भटकते रहने को अपने लिए पसन्द करें और परिणामस्वरूप घाटा और यातना उनका भाग्य बन जाए। हाँ,

तो सत्य का दीप हमेशा जलता रहेगा। यह रौशनी कभी बुझ नहीं सकती। लाभान्वित होनेवाले इस रौशनी से लाभान्वित होते रहेंगे। ऐसा नहीं हो सकता कि दुनिया में सत्य गुम होकर रह जाए। यही वास्तविक अर्थ है दीन के क़ायम रहने का कि उसके लिए एक गरोह सदैव रहती दुनिया तक कार्यरत और संघर्षशील रहेगा।

(2) हज़रत सौबान (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "मैं अन्तिम नबी हूँ। मेरे पश्चात कोई नबी नहीं है। और मेरी उम्मत में से एक गरोह हमेशा सत्य पर क़ायम रहेगा, उनका विरोधी उन्हें हानि न पहुँचा सकेगा, यहाँ तक कि अल्लाह तआला का आदेश (क़ियामत का समय) आ जाएगा।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : यह वही शुभ सूचना है जो इससे पहले की हदीस में भी दी गई है। अर्थात सम्पूर्ण मुस्लिम समुदाय पथभ्रष्ट हो जाए और वह अपने पदीय कर्त्तव्यों को भूल बैठे, ऐसा नहीं होगा। एक गरोह अनिवार्यतः प्रत्येक क्षेत्र में सत्य का प्रतिनिधित्व करता रहेगा। उस गरोह का विरोध भी होगा। लेकिन कोई विरोध उस गरोह को उसके अपने पदीय कर्त्तव्य को पूरा करने से रोक न सकेगा। यहाँ तक कि संसार के अन्त का समय आ जाएगा।

(3) हज़रत जाबिर-बिन-समुरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "यह दीन निरन्तर क़ायम रहेगा। इसपर मुसलामनों की एक जमाअत लड़ती रहेगी, यहाँ तक कि क़ियामत आ जाएगी।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : इस हदीस से मालूम होता है कि दीन के क़ायम रहने और उसके क़ायम करने का वास्तविक अर्थ क्या होता है। दीन के क़ायम करने से अभिप्रेत दीन का आदर और प्रत्येक स्थिति में उसका

अनुपालन है। हदीस से मालूम होता है सत्य-धर्म हमेशा क़ायम रहेगा। इसमें कोई विघ्न न पड़ेगा। इसलिए कि एक गरोह हमेशा सत्य के प्रतिनिधित्व के लिए मौजूद होगा और वह दीन की सुरक्षा और उसकी उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहेगा। इसके लिए अगर उसे युद्ध के मैदान में उतरना पड़ा तो वह उससे भी पीछे न हटेगा। उसके प्राण और उसका माल सब कुछ सत्य-धर्म के स्थायित्व के लिए अर्पित होगा। यहाँ यह बात भी सामने रहे कि इस्लाम में नेतृत्व और शासन के मध्य कोई दूरी नहीं पाई जाती। किन्तु नेतृत्व सत्ता पर कदापि निर्भर नहीं करता कि सत्ता के बिना नेतृत्व और इमामत के दायित्व को पूरा ही नहीं किया जा सके। हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को अल्लाह ने सम्पूर्ण संसार के मानवों का इमाम ठहराया है, हालाँकि सत्ता और शासन उनके हाथ में न था।

जिहाद (धर्मयुद्ध)

(1) हज़रत अबू-मूसा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि एक व्यक्ति के सम्बन्ध में अल्लाह के रसूल से पूछा गया कि "जो बहादुरी दिखाने के लिए लड़ता है या राष्ट्र या परिवार के पक्ष में लड़ता है या नाम व दिखावे के लिए लड़ता हैं तो किस लड़ाई की गणना अल्लाह के मार्ग में की जाएगी? अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति इसलिए लड़े कि अल्लाह की बात ऊँची हो, वह अल्लाह के मार्ग में है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : सहीह बुख़ारी में है कि "एक व्यक्ति नबी (सल्ल॰) के पास आया और कहा कि कोई व्यक्ति ग़नीमत (युद्ध में प्राप्त धन) के लिए लड़ता है, कोई अपने नाम के लिए जिहाद करता है और कोई है जो अपने स्थान और दर्जे को दिखाने के लिए लड़ता है तो वास्तव में अल्लाह की राह में जिहाद करनेवाला कौन है? आप (सल्ल॰) ने कहा, "जो इसलिए लड़े कि अल्लाह का बोल-बाला हो, वही वास्तव में अल्लाह की राह में जिहाद करनेवाला है।"

इस हदीस से मालूम हुआ कि जो लड़ाई इसलिए लड़ी जाए कि अल्लाह का बोल-बाला हो, सत्य और अल्लाह का धर्म पद-दलित न हो बल्कि उसे प्रभुत्व प्राप्त हो तो उस लड़ाई को अल्लाह के मार्ग में जिहाद कहेंगे। यूँ तो युद्ध और लड़ाइयाँ होती रहती हैं और उन लड़ाइयों के विभिन्न प्रेरक तत्त्व होते हैं। हर लड़ाई या युद्ध को अल्लाह के मार्ग में जिहाद का नाम नहीं दिया जा सकता।

(2) हज़रत उक़बा-बिन-आमिर (रज़ि॰) से उल्लिखित है, वे कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल *(सल्ल॰)* को यह कहते हुए सुना कि "जल्द ही कई देश तुम्हारे हाथों विजित होंगे। अल्लाह तुम्हारे लिए पर्याप्त है। तुममें से कोई अपने तीर का खेल (अभ्यास) न त्यागे (अर्थात् उसे धनुष-विद्या का अभ्यास करते रहना चाहिए।)"

(हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् अस्तित्व और स्थायित्व के लिए शक्ति और बल की प्राप्ति अत्यन्त आवश्यक है। और इसके लिए युद्ध अभ्यास और प्रशिक्षण सतत होते रहना चाहिए। आधुनिक युग ने लड़ाई के लिए जो शस्त्र आविष्कृत किए हों उनकी उपेक्षा ठीक नहीं है। किन्तु वास्तविक भरोसा अल्लाह पर होना चाहिए। इस हदीस में जो भविष्यवाणी की गई है वह अक्षरशः पूरी हुई। समय के नेत्रों ने देखा कि किस प्रकार अत्यन्त तीव्र गति से इस्लाम दुनिया के बड़े भाग पर छा गया और क़ैसर और किसरा (रूम और ईरान के शासक) के राज्य इस्लाम के अधीन होकर रहे।

(3) हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "जो व्यक्ति भी जन्नत में प्रवेश करेगा वह पुनः दुनिया में आने को पसन्द न करेगा, यद्यपि उसे धरती की समस्त चीज़ें मिल रही हों, अलबत्ता शहीद की बात और है क्योंकि वह (दुनिया में पुनः) आने की और दस बार (अल्लाह की मार्ग में)

क़त्ल होने की कामना करेगा, क्योंकि वह शहीद की प्रतिष्ठा को देख रहा होगा।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : वास्तव में वर्तमान संसार का आकर्षण हमें अपनी ओर इसलिए खींचता है कि हम आगे आनेवाले जीवन के सौन्दर्य और वैभव से अपरिचित हैं। अल्लाह के यहाँ आकर्षण की जो चीज़ें और आनन्द है उसके अनुभव में आने के पश्चात् इस उपद्रव भरी दुनिया की ओर कौन उन्मुख होगा। किन्तु शहीदों का मामला इससे भिन्न है। जिन्हें अल्लाह की राह में अपने प्राण न्योछावर करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे चाहेंगे कि काश दुनिया में बार-बार जाने और ख़ुदा की राह में अपनी जान क़ुरबान करने का सौभाग्य प्राप्त होता! इसलिए कि उनपर यह रहस्य खुल चुका होगा कि मनुष्य के मरतबे व पद को सबसे ऊँचा करनेवाली और उसकी प्रतिष्ठा और गौरव को बढ़ानेवाली चीज़ अल्लाह के मार्ग में क़ुरबान हो जाने से बढ़कर कोई और नहीं हो सकती।

(4) हज़रत ज़ैद-बिन-ख़ालिद जुहनी (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि जिसने किसी जिहाद करनेवाले के लिए सामग्री जुटाई उसने भी जिहाद किया और जिसने किसी जिहाद करनेवाले के घरवालों की देख-रेख की उसने भी जिहाद किया।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अर्थात् अल्लाह के मार्ग में लड़नेवालों के साथ सहयोग करनेवाला भी जिहाद में सम्मिलित समझा जाएगा, क्योंकि इस महान कार्य में परोक्ष रूप से वह भी शामिल है। इसलिए अल्लाह के मार्ग में जिहाद के पुण्य और प्रतिफल से वह वंचित नहीं रह सकता।

(5) हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "अल्लाह ने ज़िम्मा ले लिया है कि जो व्यक्ति अल्लाह की राह में जिहाद करेगा और जिसको अल्लाह के मार्ग में जिहाद के उद्देश्य और अल्लाह की बातों की पुष्टि के अतिरिक्त किसी और चीज़ ने घर से नहीं निकाला तो अल्लाह उसे जन्नत

में प्रविष्ट करेगा, या उसे उसके आवास की ओर जहाँ से वह निकला था पुण्य एवं कर्मफल और माले-ग़नीमत (विजय-धन) के साथ लौटाएगा।" (हदीस : बुख़ारी)

व्याख्या : अर्थात् अगर कोई व्यक्ति घर से केवल अल्लाह के मार्ग में जिहाद के ध्येय से और ख़ुदा की बातों और उसके वादों पर विश्वास रखते हुए निकलता है, नाम और दिखावा या इसी प्रकार का दूसरा कोई उद्देश्य उसके सामने नहीं होता तो अल्लाह इसका ज़िम्मा लेता है कि अगर वह युद्ध में शहीद हो गया तो उसे जन्नत में स्थान देगा या फिर वह विजयी होकर युद्ध में मिले हुए धन के साथ अपने घर लौटेगा। दोनों ही रूप में वह सफल है, असफलता उसके हिस्से में कदापि नहीं आ सकती। एक हदीस में तो यहाँ तक कहा गया है कि "जान लो, जन्नत तलवारों की छाया में है" (बुख़ारी, मुस्लिम)। अर्थात् अल्लाह की राह में जिहाद करने से बन्दा जन्नत का हक़दार हो जाता है।

(6) हज़रत अनस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा : "अल्लाह के मार्ग में प्रातः या संध्या को चलना दुनिया और जो कुछ उसमें है उससे उत्तम है।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : "मालूम हुआ कि ख़ुदा की राह में निकलना असाधारण कर्म है। चाहे यह निकलना प्रातः को हो या संध्या को। शर्त यह है कि यह निकलना ख़ुदा की राह में हो, अर्थात् जिहाद के लिए हो या अल्लाह के दीन के प्रचार-प्रसार, उसके विस्तार एवं प्रभुत्व की कोशिश में यह दौड़-धूप हो रही हो। अल्लाह की राह में निकलना ऐसा सुन्दर मनोहर और अल्लाह की दृष्टि में प्रिय कर्म है कि दुनिया और दुनिया में जो नेमतें भी मौजूद हैं वे उसका मुक़ाबला नहीं कर सकतीं।

(7) हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-अल-आस (रज़ि०) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा, "अल्लाह शहीद का हर गुनाह क्षमा कर देगा, ऋण के अतिरिक्त।" (हदीस : मुस्लिम)

व्याख्या : अल्लाह की राह में अपने प्राण न्योछावर करना विश्वास और ईमान और वफ़ादारी का ऐसा प्रदर्शन है कि इसके कारण अल्लाह अपने बन्दे के सारे गुनाह क्षमा कर देता है। जीवन में जो भी कोताहियाँ हुई हों, शहादत या प्राण की आहुति से सबकी क्षतिपूर्ति हो जाती है। अलबत्ता बन्दों के कुछ हक़ अगर किसी के ज़िम्मे हैं तो वे शेष रहेंगे। इसलिए बन्दों के हक़ के सम्बन्ध में सदैव सतर्क रहना चाहिए। इसमें लापरवाही घोर अपराध है।

युद्ध के नियम

(1) हज़रत अनस-बिन-मालिक (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "(जिहाद के लिए) अल्लाह के नाम और अल्लाह की सहायता के साथ और अल्लाह के रसूल की मिल्लत (दीन) पर क़ायम रहते हुए निकल खड़े हो। (लेकिन युद्ध में) अत्यन्त वृद्ध व्यक्ति को क़त्ल न करना, न छोटे बच्चे को और न स्त्री को क़त्ल करना, न ग़नीमत (युद्ध में मिले हुए धन) में से ख़ियानत करना, युद्ध में जो कुछ तुम्हारे हाथ आए उसे (सेनाध्यक्ष के पास लाकर) जमा करना। नेकी और अच्छी नीति अपनाना। इसमें सन्देह नहीं कि अल्लाह उत्तम कर्म करनेवालों को पसन्द करता है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : इस हदीस में युद्ध और जिहाद के सम्बन्ध में नैतिक निर्देश दिए गए हैं। बताया गया कि युद्ध उन ही से करना चाहिए जो तुमसे लड़ें। दूसरों पर हाथ उठाना वैध नहीं, जो तुम्हारे मुक़ाबले में मैदान में नहीं उतरते। निर्दोष बच्चों और स्त्रियों को क़त्ल करना वैध नहीं और न बड़ी उम्र के बूढ़ों को क़त्ल करना वैध है जो तुमसे लड़ते नहीं हैं।

(2) हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि॰) अबू-तालिब की बेटी के माध्यम से रिवायत करते हैं कि मक्का-विजय के दिन

उन्होंने (हज़रत उम्मे-हानी ने) एक मुशरिक (बहुदेववादी) को पनाह दे दी, फिर इसका ज़िक्र उन्होंने नबी (सल्ल॰) के पास किया तो आप (सल्ल॰) ने कहा, "उसे हमने शरण दी जिसको तुमने शरण दी और उसे हमने अमून दिया जिसे तुमने अमून दिया।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : हज़रत उम्मे-हानी (रज़ि॰) ने अपने पति के नातेदार को शरण दे दी थी। हज़रत अली (रज़ि॰) ने उसे क़त्ल करने का इरादा किया तो इसका ज़िक्र उन्होंने नबी (सल्ल॰) से किया। इस अवसर पर नबी (सल्ल॰) ने वह बात कही जिसका उल्लेख इस हदीस में किया गया है। यह हदीस बताती है कि स्त्री भी अगर किसी को अमान दे दे तो इस्लामी हुकूमत उसका भी आदर करेगी।

(3) हज़रत अम्र-बिन-अबूसा (रज़ि॰) से उल्लिखित है, वे बयान करते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को यह कहते हुए सुना है कि "जिसका किसी क़ौम के साथ समझौता हो तो उसको भंग न करे और न उसमें कोई परिवर्तन करे जब तक कि समझौते की अवधि समाप्त न हो जाए या फिर बराबरी को ध्यान में रखते हुए उनका समझौता उनकी ओर फेंक दे।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : यदि किसी जाति से संधि या समझौता हुआ है तो उस समझौते का आदर करना अत्यन्त आवश्यक है। अगर किसी व्यक्ति या गरोह से जिसके साथ हमारा कोई समझौता है, हमें शिकायत भी हो और हम यह देखते हों कि उसे अपने समझौते की पाबन्दी का ध्यान नहीं है, कोई आश्चर्य नहीं कि वह ग़द्दारी कर जाए फिर भी हमारे लिए यह वैध नहीं कि हम अपनी जगह अपने तौर पर समझौते को समाप्त कर लें और उसके साथ ऐसी नीति अपनाएँ मानो कि हमारे और उनके मध्य कोई समझौता हुआ ही नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि दूसरे पक्ष पर यह स्पष्ट कर दें कि हम समझौता समाप्त करते हैं। समझौता

समाप्ति की सूचना से दूसरे पक्ष को अवगत कराए बिना उसके विरुद्ध कोई कार्रवाई करनी वैध नहीं है। क़ुरआन में भी है–

> "और यदि किसी क़ौम से तुम्हें विश्वासघात की आशंका हो तो तुम भी उसी प्रकार ऐसे लोगों के साथ हुई संधि को खुल्लम-खुल्ला उनके आगे फेंक दो, निश्चय ही अल्लाह को विश्वासघात करनेवाले प्रिय नहीं।" (क़ुरआन, 8:58)

क़ैदी

(1) हज़रत मुसअब-बिन-उमैर के भाई हज़रत अबू-अज़ीज़-बिन- उमैर से रिवायत है। वे बयान करते हैं कि मैं बद्र की लड़ाई के क़ैदियों में शामिल था। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा, "क़ैदियों के साथ अच्छा व्यवहार करो।" मैं अनसार के कुछ लोगों के वहाँ था। वे जब सुबह और शाम का खाना निकालते तो स्वयं तो खजूर खाते और मुझे रोटी खिलाते। ऐसा वे अल्लाह के रसूल की ताकीद के कारण करते थे। (हदीस : तबरानी : मोअ्जम सग़ीर)

व्याख्या : क़ैदी मजबूर और बेबस होते हैं। उनकी विवशता इस बात की अपेक्षा करती है कि उनके साथ हमारा व्यवहार अत्यन्त दया का हो। क़ैदी चाहे काफ़िरों में से कट्टर दुश्मन हो, फिर भी वह इसी का हक़दार है कि उसके साथ यथासम्भव अच्छा व्यवहार किया जाए। इस्लाम मजबूरों और कमज़ोरों का यह अधिकार स्वीकार करता है कि उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाए। एक हदीस में है कि "अल्लाह किसी ऐसे समुदाय को पवित्रता नहीं प्रदान करता जिसके लोगों में कमज़ोरों और असहायों को उनका हक़ न दिलाया जाए" (शरहुस्सुन्नह)। अर्थात् जिनमें कमज़ोरों के अधिकारों को सुरक्षा प्राप्त न हो।

क्षमादान

(1) हज़रत आइशा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा, "हैसियत रखनेवालों की ख़ताएँ माफ़ करो, अलबत्ता (ख़ुदा की निर्धारित की हुई) हदों की बात और है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

व्याख्या : हैसियत से तात्पर्य यहाँ वास्तव में वह प्रतिष्ठा और मर्तबा है जो किसी व्यक्ति को उसकी महान क़ुरबानियों और अपनी सेवाओं के कारण प्राप्त होता है। ऐसे व्यक्ति से यदि कोई ग़लती हो जाती है तो उसे अनदेखा कर देना ही अधिक उचित होगा। अतएव हम देखते हैं कि हज़रत हातिब (रज़ि॰) से एक ग़लती हो गई थी, उन्होंने अपने कुछ निजी हितों के चलते नबी (सल्ल॰) का एक रहस्य मक्कावालों पर ज़ाहिर करना चाहा था। लेकिन उनका यह घोर अपराध नबी- (सल्ल॰) ने क्षमा कर दिया, इसलिए कि वे बद्र के युद्ध में भाग लेनेवाले सहाबा में से थे, जो बद्र की लड़ाई में धर्म-शत्रुओं के मुक़ाबले में अपनी जान की बाज़ी लगाने में ज़रा भी पीछे नहीं हटे थे।

इस्लाम में जहाँ अपराधी को दण्ड देने का आदेश पाया जाता है वहीं इसकी भी गुंजाइश रखी गई है कि अपराध को क्षमा भी किया जा सकता है, बल्कि दीन के बड़े से बड़े दुश्मनों को भी क्षमा करने और उसे छोड़ देने में कोई बड़ा हित हो तो उसे छोड़ा और क्षमा किया जा सकता है। इसके बहुत-से उदाहरण नबी (सल्ल॰) के आदर्श व्यवहार में मिलते हैं। इसका एक स्पष्ट उदाहरण क़बीला बनी-हनीफ़ा के सरदार सुमामा-बिन-असाल का है। उसे गिरफ़्तार करके लाया गया था। वह अपनी रिहाई के लिए बहुत-सा धन देने को तैयार था। किन्तु नबी (सल्ल॰) ने बिना कुछ लिए उसे रिहा कर दिया। वह मुसलमान हो गया और नबी (सल्ल॰) से कहा कि अल्लाह की क़सम आपके दीन से अधिक घृणित दीन मेरी दृष्टि में कोई दूसरा दीन न था। लेकिन अब आपके दीन से बढ़कर प्रिय दीन मेरी दृष्टि में कोई दीन नहीं है।

ध्यान रहे कि अल्लाह की हदों अर्थात शरीअत की हदों (सज़ाओं) को लागू करना यदि किसी पर अनिवार्य हो गया हो तो उसे टाला नहीं जा सकता।